SURESH GYAN VIHAR UNIVERSITY

Accredited by NAAC with 'A+' Grade

Master of Arts

(Hindi)

प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन काव्य (HNL-501)

Semester-I

Author- Nirmla Parewa

SURESH GYAN VIHAR UNIVERSITY

Centre for Distance and Online Education

Mahal, Jagatpura, Jaipur-302025

EDITORIAL BOARD (CDOE, SGVU)

Dr (Prof.) T.K. Jain
Director, CDOE, SGVU

Ms. Hemlalata Dharendra
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Ms. Kapila Bishnoi
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Mr. Ashphaq Ahmad
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Dr. Manish Dwivedi
Associate Professor & Dy, Director, CDOE, SGVU

Mr. Manvendra Narayan Mishra
Assistant Professor (Deptt. of Mathematics) SGVU

Published by:

S. B. Prakashan Pvt. Ltd.

WZ-6, Lajwanti Garden, New Delhi: 110046

Tel.: (011) 28520627 | Ph.: 9205476295

Email: info@sbprakashan.com | Web.: www.sbprakashan.com

© SGVU

All rights reserved.

No part of this book may be reproduced or copied in any form or by any means (graphic, electronic or mechanical, including photocopying, recording, taping, or information retrieval system) or reproduced on any disc, tape, perforated media or other information storage device, etc., without the written permission of the publishers.

Every effort has been made to avoid errors or omissions in the publication. In spite of this, some errors might have crept in. Any mistake, error or discrepancy noted may be brought to our notice and it shall be taken care of in the next edition. It is notified that neither the publishers nor the author or seller will be responsible for any damage or loss of any kind, in any manner, therefrom.

For binding mistakes, misprints or for missing pages, etc., the publishers' liability is limited to replacement within one month of purchase by similar edition. All expenses in this connection are to be borne by the purchaser.

Designed & Graphic by : S. B. Prakashan Pvt. Ltd.

Printed at :

विषय-सूची

इकाई 1

चंदबरदाई पद्मावती समय 5

इकाई 2

कबीर ग्रन्थावली 23

इकाई 3

मलिक मुहम्मद जायसी: पद्मावत 46

इकाई 4

मलिक भ्रमरगीत: सूरदास 66

इकाई 5

तुलसीदास: रामचरितमानस (उत्तरकांड) 87

vf/kxe ifj.kke Learning out comes

fo|kFkhZ le>uk esa l{ke gksxk

bdkbZ &1

- fo|kfFk;k dk ikpkhu dk0; ls ifjfpr djokuk blls mue dYiuk 'kfDr dk fodkl gksxkA
- o vkfndkyhu jklksdk0; ls ifjfpr gks ldsxk
- fo|kFkh vkfndkyhu dfo pUncjnkbZ d dk0; dh fo'k'krkvk d ckj e tku ldx

bdkbZ &2

- fo|kFkh e/;dkyhu dfo ,o mudh dk0;&fo'k'krkvk d ckj e tku ldx
- fo|kFkh e/;dkyhu dfo dchj d dk0; ls ifjfpr gk ldx
- o HkfDrdkyhu dfo dchj d dk0; e fufgr ey Hkkok dk e tku ldx

bdkbZ &3

- fo|kFkh e/;dkyhu dfo efyd ekgEen tk;lh d dk0;&lkUn;Z dk v/;;u dj ldx
- fo|kFkh e/;dkyhu lQh dfo efyd ekgEen tk;lh d dk0; inekor ls ifjfpr gkx
- fo|kFkh tk;lh d dk0; inekor e of.kr ukxefr &fo;kx [k.M dk v/;;u dj ldx

bdkbZ &4

- fo|kFkh HkfDrdkyhu d'.kdk0;/kkjk d dfo ljnkl th dk v/;;u dj ldx
- mudk dk0; e fufgr ey Hkkok ls ifjfpr djokukA
- o Hkejxhr lkj dk v/;;u dj ldx

bdkbZ &5

- fo|kFkh HkfDrdkyhu jkedk0;/kkjk d dfo rylhnkl th dk v/;;u dj ldx
- fo|kFkh jkepfjr ekul d v/;k; mRrjdk.M dk v/;;u dj ldx
- o Jhjke d pfj= dk vkRelkr dj ldx

प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन काव्य

पाठ्यक्रम

इकाई 1

चंदबरदायी पद्यमावती समय

चंदबरदायी – पद्यमावती समय, सपादित हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं नामवर सिंह।

इकाई 2

कबीर ग्रन्थावाली

कबीर – कबीर ग्रन्थावाली – संपादक, डॉ. श्याम सुन्दर दास–50 संख्या पारम्भिक

इकाई 3

मलिक मुहम्मद जायसी: पद्मावत

मलिक मुहम्मद जायसी – पद्मावत–संपादिक–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागमती वियोग खंड।

इकाई 4

मलिक भ्रमरगीत: सूरदास

सूरदास – भ्रमरगीत सार–संपादक–आचार्च राम चन्द्र शुक्ल 7, 8, 23, 30, 41, 42, 52, 57, 64, 69, 70, 85, 90, 94, 97, 101, 104, 105, 116, 134, 143, 155, 166, 186, 194, 210, 220, 221

इकाई 5

तुलसीदास: रामचरित मानस (उत्तरकांड)

तुलसीदास – रामचरित मानस, गीता प्रेस (उत्तराकांड के आरम्भिक 40 दोहे)

इकाई 1

चंदबरदाई पद्मावती समय

संरचना

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 चंदबरदाई: जीवन परिचय
1.4 हिन्दी के पहले कवि
1.5 गोरी के वध में सहायता
1.6 पृथ्वीगज रासो
1.7 पृथ्वीराज रासो की कथा
1.8 पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता
1.9 पृथ्वीराज रासो: काव्यगत विशेषताएँ
1.10 पृथ्वीराज का चरित्र चित्रण
1.11 अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई इस पाठ्यक्रम की प्रथम इकाई है। इस इकाई में चंदबरदाई की कृति पद्मावती समय एवं कबीर ग्रन्थावली की प्रारम्भिक 50 साखियों अध्ययन यहां पर प्रस्तुत है। इस इकाई को पढ़ने के बाद छात्र–

1. चंदबरदाई के व्यक्ति एवं कृतित्व के बारे में जान सकेंगे।
2. चंदबरदाई की कृति पद्मावती समय की विशेषताओं को जान सकेंगे।
3. कबीर ग्रंथावली के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
4. कबीर ग्रंथावली की प्रारम्भिक 50 साखियों से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

चंदबरदाई को हिंदी का पहला कवि और उनकी रचना पृथ्वीराज रासों को हिंदी की पहली रचना होने का सम्मान प्राप्त है। पृथ्वीराज रासो हिंदी का सबसे बड़ा काव्य–ग्रंथ है। इसमें 10,000 से अधिक छंद हैं और तत्कालीन प्रचलित 6 भाषाओं का प्रयोग किया गया है। इस ग्रंथ में उत्तर भारतीय क्षत्रिय समाज व उनकी परंपराओं के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है, इस कारण ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसका बहुत महत्व है। वे भारत के अंतिम हिंदू सम्राट प्रथ्वीराज चौहान तृतीय के मित्र तथा राजकवि थे।

डॉ० श्यामसुन्दर दास द्वारा संकलित कबीर ग्रन्थावली में 'गुरुदेव को अंग' में गुरु महिमा से संबंधित साखियाँ संकलित हैं। भारत में गुरु को विशेष महिमा प्राप्त है। ऋषियों–मुनियों, कवियों आदि ने भाँति–भाँति से गुरु की महत्ता का निरूपण किया है। महिमा–वर्णन की यह परम्परा कबीर से पहले भी मिलती है और कबीर के बाद भी विद्यमान है, लेकिन सन्त कबीर ने गुरु की महिमा की जो प्रतिष्ठा की है यह अन्यत्र दुर्लभ है।

1.3 चंदबरदाई: जीवन परिचय

चंदबरदाई का जन्म संवत् 1205 तदनुसार 1148 ई० लाहौर वर्तमान पाकिस्तान में हुआ। वे हिन्दी साहित्य के आदिकालीन कवि तथा पृथ्वीराज चौहान के मित्र थे। उन्होंने पृथ्वीराज रासो नामक प्रसिद्ध हिन्दी ग्रन्थ की रचना की। चंदबरदाई का जन्म लाहौर में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। बाद में वह अजमेर–दिल्ली के सुविख्यात हिंदू नरेश पृथ्वीराज का सम्माननीय सखा, राजकवि सहयोगी हो गए थे। इससे उसका अधिकांश जीवन महाराजा पृथ्वीराज चौहान के साथ दिल्ली था। वह राजधानी और युद्ध क्षेत्र सब जगह पृथ्वीराज के साथ रहे थे। उसकी विद्यामानता का काल 13वीं सदी है। चंदबरदाई का प्रसिद्ध ग्रंथ "पृथ्वीराजरासो" है। इसकी भाषा को भाषा–शास्त्रियों ने पिंगल कहा है, जो राजस्थान में ब्रजभाषा का पर्याय है। इसलिए चंदबरदाई को ब्रजभाषा हिन्दी का प्रथम महाकवि माना जाता है। 'रासो' की रचना महाराज पृथ्वीराज के युद्ध–वर्णन के लिए हुई है। इसमें उनके वीरतापूर्ण युद्धों और प्रेम–प्रसंगों का कथन है। अत: इसमें वीर और शृंगार दो ही रस हैं। चंदबरदाई ने इस ग्रंथ की रचना प्रत्यक्षदर्शी की भाँति की है लेकिन शिलालेख प्रमाण से ये स्पष्ट होता है कि इस रचना को पूर्ण करने वाला कोई अज्ञात कवि है जो चंद और पृथ्वीराज के अन्तिम क्षण का वर्णन कर इस रचना को पूर्ण करता है। चंदबरदाई का देहावसान संवत् 1249 तदनुसार 1192 ई० गजनी में हुआ।

1.4 हिन्दी के पहले कवि

चंदबरदाई को हिंदी का पहला कवि और उनकी रचना पृथ्वीराज रासो को हिंदी की पहली रचना होने

का सम्मान प्राप्त है। पृथ्वीराज रासो हिंदी का सबसे बड़ा काव्य- ग्रंथ है। इसमें 10,000 से अधिक छंद हैं और तत्कालीन प्रचलित 6 भाषाओं का प्रयोग किया है। इस ग्रंथ में उत्तर भारतीय क्षत्रिय समाज व उनकी परंपराओं के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है, इस कारण ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसका बहुत महत्व है। वे भारत के अंतिम हिंदू सम्राट पृथ्वीराज चौहान तृतीय के मित्र राजकवि थे। पृथ्वीराज ने 1165 से 1192 तक अजमेर व दिल्ली पर राज किया। यही चंदबरदाई का रचनाकाल भी था।

1.5 गोरी के वध में सहायता

इनका जीवन पृथ्वीराज के जीवन के साथ ऐसा मिला हुआ था कि अलग नहीं किया जा सकता। युद्ध में, आखेट में, सभा में, यात्रा में, सदा महाराज के साथ रहते थे और जहाँ जो बातें होती थीं, सब में सम्मिलित रहते थे। पृथ्वीराज चौहान ने चंदबरदाई को कई बार लाख पसाव, करोड़ पसाव, अरब पसाव, देकर सम्मानित किया था, यहाँ तक कि मुहम्मद गोरी के द्वारा जब पृथ्वीराज चौहान को परास्त करके एवं उन्हे बंदी बना करके गजनी ले जाया गया तो ये भी स्वयं को वंश में नहीं कर सके एवं गजनी चले गये। ऐसा माना जाता है कि कैद में बंद पृथ्वीराज को जब अन्धा कर दिया गया तो उन्हें इस अवस्था में देख कर इनका हृदय द्रवित हो गया एवं इन्होंने गोरी के वध की योजना बनायी। उक्त योजना के अंतर्गत इन्होंने पहले तो गोरी का हृदय जीता एवं फिर गोरी को यह बताया कि पृथ्वीराज शब्दभेदी बाण चला सकता है। इससे प्रभावित होकर मोहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज की इस कला को देखने की इच्छा प्रकट की। प्रदर्शन के दिन चंदबरदाई गोरी के साथ ही मंच पर बैठे। अंधे पृथ्वीराज को मैदान में लाया गया एवं उनसे अपनी कला का प्रदर्शन को कहा गया। पृथ्वीराज के द्वारा जैसे ही एक घण्टे के ऊपर बाण चलाया गया गोरी के मुँह के अकस्मात ही "वाह! वाह!!" शब्द निकल पड़ा बस फिर क्या था चंदबरदायी ने तत्काल एक दोहे में पृथ्वीराज को यह बता दिया कि गोरी कहाँ पर एवं कितनी ऊँचाई पर बैठा हुआ है। वह प्रकार था–

चार बाँस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमान।
ता ऊपर सुल्तान है, मत चूके चौहान॥

इस प्रकार चंदबरदाई की सहायता से पृथ्वीराज के द्वारा गोरी का वध कर दिया गया। इनके रासो रचित पृथ्वीराज रासो हिंदी भाषा का पहला प्रामाणिक काव्य माना जाता है।

चंदबरदाई हिंदी के प्रथम महाकवि और इनका 'पृथ्वीराज रासो' हिंदी का प्रथम महाकाव्य है। जिसमें कवि ने दिल्ली नरेश राजा पृथ्वीराज के जीवन-चरित्र को अभिव्यक्त किया है। आदिकालीन समय में आये दिन युद्ध हुआ करते थे। इसके मुख्य कारण थे- राजाओं की आपसी दुश्मनी, राजकुमारियों के अपहरण और राज्य की सीमा-वृद्धि। यही कारण है कि 'पद्मावती समय' जो रासो का बीसवाँ समय है, में कवि चंदबरदाई ने श्रृंगार, वीर, रौद्र, वीभत्स एवम् भयानक रसों का सजीव व यथार्थ अंकन किया हैं कवि चंद सिर्फ कलम के धनी ही नहीं थे। वे समय आने पर तलवार भी ग्रहण करते थे। यही कारण है कि 'पृथ्वीराज रासो' में चंद ने जो युद्ध-वर्णन किए हैं वह हिंदी साहित्य में अनन्य हैं।

चन्दबरदाई तथा उनकी अमर कृति 'पृथ्वीराज रासो' से लेकर सबसे अधिक वाद-विवाद हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों तथा विद्वान आलोचकों के बीच हुआ है तथा आज भी सर्वमान्य एवं प्रमाणिक रूप से इनके सम्बन्ध में कोई स्थापना सम्भव नहीं है। फिर भी हिन्दी के महाकाव्यों की कोई सूची बनायी जाय तो उसमें प्रथम स्थान पर 'पृथ्वीराज रासो' का नाम लिया जाता है। इसलिए पक्ष-प्रतिपक्ष के तमाम तर्कों के बावजूद चन्दबरदाई हिन्दी के पहले महाकवि हैं तथा महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों के आधार पर उनके द्वारा रचित 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी साहित्य का पहला महाकाव्य है। महाकवि चन्द

टिप्पणी

के जीवन-वृत तथा उनके कवि-कर्म के सम्बन्ध में जानकारी का सबसे प्रमुख स्त्रोत 'पृथ्वीराज रासो' ही है। रासो द्वारा एक संकेत तो यह मिलता है कि चन्द तथा उनके चरित्र नायक पृथ्वीराज चौहान का जन्म-कर्म-मरण सब एक साथ हुआ। ऐसी ही जनश्रुति भी प्रचलित रही है। इस आधार पर रासों द्वारा संकेतिक पृथ्वीराज का जन्म वर्ष संवत् 1114 वि० ही महाकवि चन्द का भी जन्म समय ठहरता है। रासो के ही हवाले से कुछ लोक संवत् 1206 मानते हैं। रासों में ही एक असंग में यह कहा गया है कि पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर ने अपने श्वसुर अंनगपाल के यहाँ जन्मे पुत्र को सुरक्षित अजमेर लाने के लिए अपने विश्वासपात्र लोहाना और चन्द को भेजा।

1.6 पृथ्वीराज रासो

रासो परंपरा का एक काव्य है। जैसा इसके नाम से ही प्रकट है, दिल्ली के अंतिम हिंदू सम्राट पृथ्वीराज के जीवन की घटनाओं को लेकर लिखा गया हिंदी का एक ग्रंथ जो राव चंदबरदाई भट्ट का लिखा माना जाता रहा है। पहले इस काव्य के एक ही रूप से हिंदी जगत चरिचित था, जो संयोग से रचना का सबसे अधिक विशाल रूप था। इसमें लगभग ग्यारह हजार रूपक आते थे। उसके बाद रचना का एक उससे छोटा रूप कुछ प्रतियों में मिला, जिसमें लगभग साढ़े तीन हजार रूपक थे। उसके भी बाद एक रूप कुछ प्रतियों में प्राप्त हुआ जिसमें कुल रूपक संख्या बारह सौ से अधिक नहीं थी। तदनंतर दो प्रतियाँ उसकी ऐसी भी प्राप्त हुई जिनमें क्रमशः चार सौ और साढ़े पाँच सौ रूपक ही थे। ये सभी प्रतियाँ रचना के विभिन्न पूर्ण रूप प्रस्तुत करती थीं। रचना के कुछ खंडों की प्रतियाँ भी प्राप्त हुई हैं, जिनका संबंध उपर्युक्त प्रथम दो रूपों से रहा है। अतः स्वभावतः यह विवाद उठा कि उपर्युक्त विभिन्न पूर्ण रूपों का विकास किस प्रकार हुआ। कुछ विद्वानों ने इससे सर्वथा भिन्न मत प्रकट किया। उन्होंने कहा कि सबसे बड़ा रूप ही रचना का मूल रूप रहा होगा और उसी से उत्तरोत्तर अधिकाधिक छोटे रूप संक्षेपों के रूप में बनाकर प्रस्तुत किए गए होंगे। इन्होंने इसका प्रमाण यह दिया कि रचना का कोई रूप, यहाँ तक कि सबसे छोटा रूप भी, अनैतिहासिकता से मुक्त नहीं है। किंतु इस विवाद को फिर यहीं पर छोड़ दिया गया और इसको हल करने का कोई प्रयास बहुत दिनों तक नहीं किया गया। इसका प्रथम उल्लेखनीय प्रयास 1955 में हुआ। जब एक विद्वान ने पृथ्वीराज रासो के तीन पाठों का आकार संबंध (हिंदी अनुशीलन, जलन-मार्च 1955) शीर्षक लेख लिखकर यह दिखाया कि पृथ्वीराज और उसके विषक्ष के बलाबल को सूचित करने वाली जो संख्याएँ रचना के तीन विभिन्न पाठों : सबसे बड़े (बृहत्), उससे छोटे (मध्यम) और उससे भी छोटे (लघु) में मिलती हैं उनमें समानता नहीं है और यदि समग्र रूप से देखा जाय तो इन संख्याओं के संबंध में अत्युक्ति की मात्रा भी उपर्युक्त कर्म में ही उत्तरोत्तर कम मिलती है। यदि ये पाठ बृहत्मध्यमलघुलघुतम क्रम में विकसित हुए होते, तो संक्षेप क्रिया के कारण बलाबल सूचक संख्याओं में कोई अंतर न मिलता। इसलिये यह प्रकट है कि प्राप्त रूपों के विकास का क्रम लघुतमलघुमध्यमबृहत् है। प्रबंध की दृष्टि से यदि हम रचना की उक्ति श्रंखलाओं और छंद श्रंखलाओं तथा प्रसंग श्रंखलाओं पर ध्यान दें तो वहाँ भी देखेंगे कि ये श्रंखलाएं लघुतमलघुमध्यमबृहत् क्रम में ही उत्तरोत्तर अधिकाधिक टूटी हैं और बीच बीच में इसी क्रम से अधि काधिक छंद और प्रसंग प्रक्षेपकर्ताओं के द्वारा रखे गए हैं। कितु रचना का प्राप्त सबसे छोटा (लघुतम) रूप भी इन श्रंखलात्रुटियों से सर्वथा मुक्त नहीं है, इसलिये स्पष्ट ज्ञात होता है कि रासो का मूल रूप प्राप्त लघुतम रूप से भी छोटा रहा होगा।

1.7 पृथ्वीराज रासो की कथा

पृथ्वीराज रासो की कथा संक्षेप में इस प्रकार है: पृथ्वीराज जिस समय दिल्ली के सिंहासन पर था,

कन्नौज के राजा ने राजसूय यज्ञ करने का निश्चय किया और इसी अवसर पर उसने अपनी कन्या संयोगिता का स्वयंवर भी करने का संकल्प किया। राजसूय का निमंत्रण उसने दूर-दूर तक के राजाओं को भेजा और पृथ्वीराज को भी उसमें सम्मिलित होने के लिये आमंत्रित किया। पृथ्वीराज और उसके सामंतों को यह बात खली कि बहुवचनों के होते हुए भी कोई अन्य राजसूय यज्ञ करे और पृथ्वीराज ने जयचंद का निमंत्रण अस्वीकार कर दिया। जयचंद ने फिर भी राजसूय यज्ञ करना ठानकर यज्ञमंडप के द्वारपाल के रूप में पृथ्वीराज की एक प्रतिमा स्थापित कर दी। पृथ्वीराज स्वभावतः इस घटना से अपमान समझकर क्षुब्ध हुआ। इसी बीच उसे यह भी समाचार मिला कि जयचंद की कन्या संयोगिता ने पिता के वचनों की उपेक्षा कर पृथ्वीराज को ही पति रूप में वरण करने का संकल्प किया है और जयचंद ने इस पर कुद्ध होकर उसे अलग गंगातटवर्ती एक आवास में भिजवा दिया है।

इन समाचारों से संतृप्त होकर वह राजधानी के बाहर आखेट में अपना समय किसी प्रकार बिता रहा था कि उसकी अनुपस्थिति से लाभ उठाकर उसके मंत्री कैवास ने उसकी एक करनाटी दासी से अनुचित संबंध कर लिया और एक दिन रात को उसके कक्ष में प्रविष्ट हो गया। पट्टराज्ञी को जब यह बात ज्ञात हुई, उसने पृथ्वीराज को तत्काल बुलवा भ्रेजा और पृथ्वीराज रात को ही दो घड़ियों में राजभवन में आ गया। जब उसे उक्त दासी के कक्ष में कैवास को दिखाया गया, उसने रात्रि के अंधकार में ही उन्हें लक्ष्य करके बाण छोड़े। पहला बाण तो चूक गया किंतु दूसरे बाण के लगते ही कैवास धराशायी हो गया। रातो रात दोनों को एक गड्ढे में गड़वाकर पृथ्वीराज आखेट पर चला गया, फिर दूसरे दिन राजधानी को लौटा।

कैवास की स्त्री ने चंद से अपने मृत पति का शव दिलाने की प्रार्थना की तो चंद ने पृथ्वीराज से यह निवेदन किया। पृथ्वीराज ने चंद का यह अनुरोध इस शर्त पर स्वीकार किया कि वह उसे अपने साथ ले जाकर कन्नौज दिखाएगा। दोनों मित्र कसकर गले मिले और रोए। पृथ्वीराज ने कहा कि इस अपमानपूर्ण जीवन से मरण अच्छा था और उसके कतिमित्र ने उसकी इस भावना का अनुमोदन किया। कैवास का शव लेकर उसकी विधवा सती हो गई।

चंद के साथ थवाइत्त (तांबूलपात्रवाहक) के शेष में पृथ्वीराज ने कन्नौज के लिए प्रयाण था। साथ में सौ वीर राजपूत सामंतों सैनिकों को भी उसने ले लिया। कन्नौज पहुँचकर जयचंद के बार में गया। जयचंद ने उसका बहुत सत्कार किया और उससे पृथ्वीराज के वय, रूप आदि के में पूछा। चंद ने उसका जैसा कुछ विवरण दिया, वह उसके अनुचर थवाइत्त में देखकर कुछ सशंकित हुआ। शंकानिवारणार्थ उसने कवि को पान अर्पित कराने के बहाने अन्य दासियों के साथ एक दासी को बुलाया जो पहले पृथ्वीराज की सेवा में रह चुकी थी। उसने पृथ्वीराज को थवाइत्त के वेष में देखकर सिर ढँक लिया। किंतु किसी ने कहा कि चंद पृथ्वीराज का अभिन्न सखा था इसलिये दासी ने उसे देख सिर ढँक लिया और बात वहीं पर समाप्त हो गई। किंतु दूसरे दिन प्रातः काल जब जयचंद चंद के डेरे पर उससे मिलने गया, थवाइत्त को सिंहासन पर बैठा देखकर उसेद पुनः शंका हुई। चंद ने बहाने करके उसकी शंका का निवारण करना चाहा और थवाइत्त ने उसे पान अर्पित करने को कहा। पान देने हुए थवाइत्त वेशी पृथ्वीराज ने जो वक्र दृष्टि फेंकी, उससे जयचंद को भली भाँति निश्चय हो गया कि यह स्वयं पृथ्वीराज है और उसने पृथ्वीराज का सामना डटकर करने का आदेश निकाला। इधर पृथ्वीराज नगर की परिक्रमा के लिये निकला। जब वह गंगा में मछलियों को मोती चुगा रहा था, संयोगिता ने एक दासी को उसको ठीक ठीक पहचानने तथा उसके पृथ्वीराज होने पर अपना (संयोगिता का) प्रेमनिवेदन करने के लिये भेजा। दासी ने जब यह निश्चिय कर लिया कि वह पृथ्वीराज ही है, उसने संयोगिता का प्रणयनिवेदन किया। पृथ्वीराज तदनंतर संयोगिता से मिला और दोनों का उस गंगातटवर्ती आवास में

टिप्पणी

पाणिग्रहण हुआ। उस समय वह वहाँ से चला आया किंतु अपने सामंतों के कहने पर वह पुनः जानकर संयोगिता को साथ लिवा लाया। जब उसने इस प्रकार संयोगिता का अपहरण किया, चंद ने ललकार कर जयचंद से कहा कि उसका शत्रु पृथ्वीराज उसकी कन्या का वरण कर अब उससे दायज के रूप में युद्ध माँग रहा था। परिणामतः दोनों पक्षों में संघर्ष प्रारंभ हो गया।

दो दिनों के युद्ध में जब पृथ्वीराज के अनेक योद्धा मारे गए, सामंतों ने उसे युद्ध की विधा बदलने की सलाह दी। उन्होंने सुझाया कि वह संयोगिता को लेकर दिल्ली की ओर बढ़े और वे जयचंद की सेना को दिल्ली के मार्ग में आगे बढ़ने से रोकते रहें जब तक वह संयोगिता को लेकर दिल्ली न पहुँच जाए। पृथ्वीराज ने इसे स्वीकार कर लिया और अनेक सामंतों तथा शूर वीरों योद्धाओं की बलि ने अनंतर संयोगिता को लेकर दिल्ली गया। जयचंद अपनी सेना के साथ कन्नौज लौट गया। दिल्ली पहुँचकर पृथ्वीराज संयोगिता के साथ, विलासमग्न हो गया। छह महीने तक आवास से बाहर निकला ही नहीं, जिसके परिणामस्वरूप उसके गुरु, बांधव, भत्य तथा लोक में उसके प्रति असंतोष उत्पन्न हो गया। प्रजा ने राजगुरु से कष्ट का निवेदन किया तो राजगुरु चंद को लेकर संयोगिता आवास पर गया। दोनों ने मिलकर पृथ्वीराज को गोरी के आक्रमण की सूचिका पत्रिका भेजी और संदेशवाहिका दासी से कहला भेजा– "गोरी रत्तुअधरा तू गोरी अनुरत्त!" राजा की विलासनिद्रा भंग हुई और वह संयोगिता से विदा होकर युद्ध के लिये निकल पड़ा।

शहाबुद्दीन इस बार बड़ी भारी सेना लेकर आया हुआ था। पृथ्वीराज के अनेक शूर योद्धा और सामंत कन्नौज युद्ध में ही मारे जा चुके थे। परिणामतः पृथ्वीराज की सेना रणक्षेत्र से लौट पड़ी और शहाबुद्दीन विजयी हुआ। पृथ्वीराज बंदी किया गया और गजनी ले जाया गया। वहाँ पर कुछ दिनों बाद शहाबुद्दीन ने उसकी आँखे निकलवा लीं। जब चंद को पृथ्वीराज के कष्टों का समाचार मिला, वह गजनी अपने मित्र तथा स्वामी के उद्धार के लिये अवधूत के वेष में चल पड़ा। वह शहाबुद्दीन से मिला। वहाँ जाने का कारण पूछने पर उसने बताया कि अब वह बदरिकाश्रम जाकर तप करना चाहता था किंतु एक साध उसके जी में शेष थी, इसलिये वह अभी वहाँ नहीं गया था। उसने पृथ्वीराज के साथ जन्म ग्रहण किया था और वे बचपन में साथ साथ ही खेले कूदे थे। उसी समय पृथ्वीराज ने उससे कहा कि वह सिंगिनी के द्वारा बिना फल के बाध से ही सात घड़ियालों को एक साथ बेध सकता था। उसका यह कौशल वह नहीं देख सका था और अब देखकर अपनी वह साथ पूरी करना चाहता था। गोरी ने कहा कि वह तो अंधा किया जा चुका है। चंद ने कहा कि वह फिर भी वैसा संधानकौशल दिखा सकता है, उसे यह विश्वास था। शहाबुद्दीन ने उसकी यह माँग स्वीकार कर ली और तत्संबंधी सारा आयोजन कराया। चंद के प्रोत्साहित करने पर जीवन से निराश पृथ्वीराज ने भी अपना संधान कौशल दिखाने के बहाने शत्रु के वध करने का उसका आग्रह स्वीकार कर लिया। पृथ्वीराज से स्वीकृति लेकर चंद शहाबुद्दीन के पास गया और कहा कि वह लक्ष्यवेध तभी करने को तैयार हुआ है जब वह (शहाबुद्दीन) स्वयं अपने मुख से उसे तीन बार लक्ष्यवेध करने का आह्वान करे। शहाबुद्दीन ने इसे भी स्वीकार कर लिया। शाह ने दो फरमान दिए, फिर तीसरा उसने ज्यों ही दिया पृथ्वीराज के बाण से विद्ध होकर वह धराशायी हुआ। पृथ्वीराज का भी अंत हुआ। देवताओं ने उस पर पुष्पवृष्टि की और पृथ्वी ने म्लेच्छा गोरी से त्राण पाकर हर्ष प्रकट किया। यहाँ पर पृथ्वीराज रासो की कथा समाप्त होती है।

1.8 पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता

पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता को लेकर, विशेष रूप से जब से प्रसिद्ध विद्वान और पुरातत्वज्ञ व्यूलर को पृथ्वीराज विजय नामक संस्कृत काव्य की खंडित प्रति मिली, बड़ा विवाद चला है। यह विवाद

टिप्पणी

उसके बृहत् पाठ को लेकर चला है, किंतु रचना का लघुतम पाठ तक ऐसा नहीं है जो अनैतिहासिकता से सर्वथा मुक्त हो। उदाहरणार्थ जयचंद के द्वारा डाहल के कर्ण को दो बार पराजित और बंदी किए जाने का उल्लेख मिलता है, किंतु वह जयचंद से लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व हुआ था। जयचंद से हुए पृथ्वीराज के युद्ध के संबंध में कोई निश्चित ऐतिहासिक समर्थन अभी तक नहीं प्राप्त हो सका है।

पृथ्वीराज अजमेर का शासक था; दिल्ली का शासक कोई गोविंदराय या खंडेराय था जो पृथ्वीराज की ओर से दोनों युद्धों में लड़ा था और दूसरे युद्ध में मारा गया था। मुसलमान इतिहासकारों के अनुसार गोरी से पृथ्वीराज के केवल दो युद्ध हुए थे, रासो के अनुसार कम से कम चार युद्ध हुए थे जिनमें से तीन में शहाबुद्दीन पराजित हुआ था और बंदी किया गया था। मुसलमान इतिहासकारों के अनुसार पृथ्वीराज पराजित होने के अनंतर सरस्वती के निकट पकड़ा गया और मारा गया था, जबकि रासो के अनुसार वह शहाबुद्दीन को गजनी में उपर्युक्त प्रकार से मारकर मरा था। ये अनैतिहासिक उल्लेख और विवरण पृथ्वीराज रासो के समस्त रूपों में पाए जाते हैं और इनमें से अधिकतर उसके ताने बाने के हैं, इसलिये उसके किसी भी पुनर्निमित रूप में भी पाए जाएँगे। इसलिये यह मानना ही पड़ेगा कि उसका कोई भी रूप पृथ्वीराज की समकालीन रचना नहीं हो सकता है।

प्रश्न यह है कि रासो किस समय की रचना मानी जा सकती है। कुछ समय हुआ, प्रसिद्ध अन्वेषी विद्वान को जैन भडारों में दो जैन प्रबंध संग्रहों की एक एक प्रति मिली, जिनमें पृथ्वीराज प्रबंध और जयचंद प्रबंध सकलित थे। इन प्रबंधों में जो छंद उद्धत थे उनमें से कुछ पृथ्वीराज रासो में भी मिले, यद्यपि इन उद्धरणों की भाषा में रासो की भाषा की अपेक्षा प्राचीनता अधिक सुरक्षित थी। दोनों प्रतियों में पृथ्वीराज प्रबंध प्राय: अभिन्न था और एक प्रबंधसंग्रह की प्रति सं० 1528 की थी। इनसे मुनिजी यह परिणाम निकाला कि चंद अवश्य ही पृथ्वीराज का समकालीन और उसका ने राजकवि था। किंतु इतने से ही यह परिणाम निकालना तर्कसंमत न होगा। इन तथ्यों के आधार पर हम इतना ही कह सकते हैं कि चंद को रचना का कोई न कोई रूप संवत् 1528 के पहले प्राप्त था, जिससे लेकर वे छंद उक्त पृथ्वीराजप्रबंध में उद्धत किए गए। वह रूप सं० 1528 के कितने पूर्व निर्मित हुआ होगा, इसके संबंध में कुछ अनुमान से ही कहा जा सकता है, जिसके लिये निम्नलिखित आधार लिए जा सकते हैं–

1. दोनों संग्रहों की प्रतियाँ उनके संग्रहकारों के हस्तलेखों में नहीं हैं, इसलिए संग्रहकारों की कृतियाँ उनकी प्रतियों के पूर्व की होंगी।
2. दोनों संग्रहों में पृथ्वीराजप्रबंध प्राय: समान पाठ के साथ मिलता है, इसलिये दोनों प्रबंधसंग्रहों में उसे किसी पूर्ववर्ती सामान्य आधारभूत प्रबंधसंग्रह से लिया गया होगा।
3. जिस काव्य से उपर्युक्त छंद लिए गए होंगे, वह इस सामान्य आधारभूत प्रबंधसंग्रह के पूर्व कभी रचा गया होगा।

उद्धृत छंदों में से एक रासो के लघुतम पाठ की प्रतियों में नहीं मिलता है उसमें कैंवास को व्यास (बुद्धिमान) और वशिष्ठ (श्रेष्ठ) कहा गया है, जबकि रासो के समस्त रूपों में उसके कर्नाटी दासी के साथ अनुचित प्रेम की कथा दी गई है, जिससे प्रकट है कि यह छंद मूल रचयिता उपर्युक्त आधारभूत प्रबंध लेखक को प्राप्त थी, वह प्रक्षिप्त था; रचना का मूल रूप उसके भी पूर्व का होना चाहिए।

यदि मान लिया जाय कि रचना का उक्त प्रक्षिप्त रूप उसके मूल रूप के लगभग 50 वर्ष बाद का होगा, आधारभूत पूर्वज संग्रह उसके भी लगभग 25 वर्ष बाद तैयार किए गए होंगे और प्राप्त प्रतियाँ उक्त दोनों प्रबंधसंग्रहों के तैयार होने के भी लगभग पच्चीस वर्ष बाद की होंगी, तो मूल काव्यरचना सं० 1400 के लगभग की मानी जा सकती है। समय के इस अनुमान में कहीं पर उदारता नहीं बरती

टिप्पणी

गई है, इसलिये मूल रचना की तिथि इसके बहुत बाद नहीं टल सकती है। रचना की भाषा का जो रूप प्रबंधसंग्रहों के उदाहरणों में तथा रचना के लघुतम रूपों की प्रतियों में मिलता है, वह भी सं० 1400 के आस पास का ज्ञात होता है, इसलिये भाषा का साक्ष्य भी उपर्युक्त परिणाम की पुष्टि करता है।

1.9 पृथ्वीराजरासो: काव्यगत विशेषताएँ

पृथ्वीराजरासो वीर रस का हिंदी का सर्वश्रेष्ठ काव्य है। हिंदी साहित्य में वीर चरित्रों की जैसी विशद कल्पना इस काव्य में मिली वैसी बाद में कभी नहीं दिखाई पड़ी। पाठक रचना भर में उत्साह की एक उमड़ती हुई सरिता में बहता चलता है। कन्नौज युद्ध के पूर्व संयोगिता के अनुराग और विरह तथा उक्त युद्ध के अनंतर पृथ्वीराज संयोगिता के मिलन और केलि विलास के जो चित्र रचना में मिलते हैं, वे अत्यंत आकर्षक हैं। अन्य रसों का भी काव्य में अभाव नहीं है। रचना का वर्णनवैभव असाधारण है; नायक नायिका के संभोग समय काशड्ऋतु वर्णन कहीं कहीं पर संश्लिष्ट प्रकृतिचित्रण के सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करता है। भाषा शैली सर्वत्र प्रभावपूर्ण है और वर्ण विषय के अनुरूप काव्य भर में बदलती रहती है। रचना के इन समस्त गुणों पर दृष्टिपात किया जाए तो वह एक सुंदर महाकाव्य प्रमाणित होता है और नि:संदेह आधुनिक भारतीय आर्यभाषा साहित्य के आदि युग की विशिष्ट कृति ठहरती है।

चंदबरदाई पद्मावती समय

'पद्मावती समय' चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो का एक महत्वूपर्ण अंश है। यद्यपि पृथ्वीराज रासो को कुछ विद्वानों ने ऐतिहासिक वीर गाथात्मक काव्य माना है, लेकिन इसमें कल्पना तत्व का इतना अधिक समावेश हो गया है कि उसका इतिहास पक्ष पूर्णत: दब गया है। वस्तु वर्णन की दृष्टि से पृथ्वीराज रासो और पद्मावती समय एक उल्लेखनीय रचना मानी जाती है काव्य शास्त्र की दृष्टि से वस्तु वर्णन को महाकाव्य का एक गुण माना गया है। समूचा रासो काव्य वर्णनों का भण्डार है। अत: पद्मावती समय कोई अपवाद नहीं है। इसमें भी हमें वस्तु वर्णन के अनेक स्थल देखने को मिल जाते हैं। भले ही पद्मावती समय पृथ्वीराज रासो का ही एक अंश है, लेकिन इसे स्वतंत्र खण्ड काव्य कहना अधिक उचित होगा। पद्मावती समय के वस्तु वर्णन को निम्न प्रकार विवेचित किया जा सकता है।

वस्तु वर्णन

जहाँ तक वर्णन का प्रश्न है वह इस काव्य रचना के पाँचवें छन्द में ही वह शुरु हो जाता है। पद्मावती ने ही सर्वप्रथम शुक से उसका परिचय पूछा। उत्तर के रूप में शुक पृथ्वीराज का वर्णन करता हुआ कहने लगा कि हिन्दुस्तान में दिल्ली गढ़ नामक एक नगर है। वहाँ इन्द्र का अवतार चौहान वंशी, अत्यन्त वीर और बलवान राजा पृथ्वीराज है। 'तह पथिराज सुर सुभार दिल्ली नगरी के राजा के वंश की गौरव गाथा का वर्णन करता हुआ वह कहता है–

'संघरि नरेस पहुआन पानं, पथिराज तई बाजंत भान।
बैसह बरीस बोडस नरिवं, पूत, आजानु बाहु मुअजोक बंद।
संगरि नरेस सोमेस पूत, देवंत रूप अवतार दूत।
तासु मंसूर सबै अपार भूजानं भीम जिम सार भार।।'

शुक पद्मावती को यह भी बताता है कि पृथ्वीराज इतना शक्तिशाली राजा है कि उसने शहाबुद्दीन गौरी को तीन बार पकड़ लिया था और उसकी प्रतिष्ठा को धूल में मिला दिया था। यही नहीं वे अचूक शब्द भेदी बाण को चलाने का भी सामर्थ्य रखते हैं।

सैन्य वर्णन

'पद्मावती समय में कवि ने जो सेना का वर्णन किया है वह वीर भाव को उद्दीप्त करने वाला है। इसमें कवि की वीर रस प्रवणता देखने को मिलती है। एक स्थल पर कवि ने शहाबुद्दीन गोरी की सेना का जो वर्णन किया है, वह बड़ा ही आकर्षक बन पड़ा है। कवि लिखता है कि–

"क्रोध जोध जोधा अनंत किरिय पन्ती अनि-राज्जिय।
बान नालि बनालि तुपक तीरह, सब रज्जिय।
पर्व पहार मनो सार्क के, भिरि भुजान गपनेस बल।
आए हकारि हकारि भुरिपुरासान सुलतान दल॥"

इन पंक्तियों में क्रोधित योद्धाओं के समूह चिंघाड़ते हुए हाथियों, धनुष बाण, तोप आदि से सुसज्जित सेना का यथार्थ वर्णन किया गया है। कवि ने अनेक स्थलों पर सैन्य सज्जा और योद्धाओं की मनोवृत्तियों का उल्लेख किया है। कवि यह भी स्पष्ट करता है कि शहाबुद्दीन की सेना में खुरासानी, कंधारी, तुर्की, फिरंगी आदि सैनिक थे। इन सब की रूप रचना अलग-अलग प्रकार की थी। यही नहीं, कवि ने सेना के अवों का भी बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन किया है। सेना के घोड़ों में ताजी, तुर्की, महावाणी, कमानी तथा वाजि आदि अनेक नस्लों के घोड़े थे। यथा–

"जहाँ बाग बाछ मसरी रिछोरी। धर्म सार समूह अरू चौर मारी।
एराकी, अदब्बी, पटी, तेज, ताजी। तुरक्की, महावन, कम्मान बाजी॥"

युद्ध वर्णन

पृथ्वीराज रासो युद्ध वर्णन के लिए हिन्दी साहित्य में एक उल्लेखनीय रचना मानी जाती है क्योंकि पद्मावती समय रासो का ही एक खण्ड है, अतः इसमें भी शहाबुद्दीन गौरी और पृथ्वीराज चौहान के युद्ध का सजीव वर्णन मिलता है। कुछ पद्यों में युद्ध की क्रियाओं का वर्णन इतना सूक्ष्म है कि पाठक उन्हें पढ़ते ही भाव विभोर हो जाता है। युद्ध वर्णन करते समय कवि भयानक और वीभत्स दृश्यों का चित्र अंकित कर देता है। एक उदाहरण दर्शनीय है–

"न को हार मह जित्त, रहेज न रहहि सुखर।
घर उप्पर भर परत करत अति जुद्ध महाभर॥॥
कहाँ कम कहाँ मध्य कहाँ कर घर व अंतरूरि।
कहाँ कंच बहि तेग, कहाँ सिर पुटि उर॥
कहाँ देत मेत हम पुर पुपरि कुंभ मसंबह कंड सव।
हिंदवान शंनभय मांन मुष गहइ तेग चहुआन जबु॥"

उपर्युक्त उदाहरण में कवि ने अन्तिम चार पंक्तियों में जुगुप्सा जनक चित्र अंकित किया है। यहाँ भयंकर युद्ध का वर्णन है जिसमें असंख्य योद्धा मर कट रहे हैं। कहीं तो योद्धाओं के कबन्ध पड़े है तो कहीं सिर पड़े हैं। हाथ पांव कटकर अलग बिखरे पड़े हैं। किसी की अंतड़ियाँ पेट से बाहर निकल आई है तो किसी का कंधा अलग हो गया है। उधर पृथ्वीराज के सैनिक शत्रुओं की सेना पर ऐसे टूट रहे हैं जैसे शेर हाथियों पर टूटते हैं। स्वयं पृथ्वीराज एक सिंह के समान शत्रुओं पर आक्रमण कर देते हैं। जिसके फलस्वरूप शत्रु सेना में भगदड़ मच जाती है। सूंड कट जाने के कारण हाथी चिंघाड़ मारकर भाग रहे हैं जिसके फलस्वरूप युद्ध भूमि में खलबली मच गई है। उदाहरण दर्शनीय है–

"करीचीह चिक्कार करि कलप भग्गे। मंद तंथि लाज ऊमग मग्गे।
दोरि गज अंध चहुआन केरो। घेरियं गिरछ विहाँ चक्क फेरो॥"

टिप्पणी

सौन्दर्य-चित्रण

'पद्मावती समय नख शिख वर्णन के लिए भी एक उल्लेखनीय काव्य रचना है। समुदशिखर की राजकुमारी पद्मावती इस काव्य की नायिका है। वह अनिंद्य सुन्दरी होने के साथ-साथ एकनिष्ठ प्रेमिका भी है। अभी तक उसने वय:सन्धि को ही प्राप्त किया है। लेकिन फिर भी वह सम्पूर्ण कलाओं, चौदह विधाओं तथा वेद शास्त्र आदि में पूर्णतया प्रवीण है। उसमें नायिका के सभी गुण और सामुद्रिक लक्षण विद्यमान हैं। कवि ने उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखा है–

मनहुं कला ससि भान, कला सोलह सो बनिय।
बाल बेस ससि ता समीप, अम त रस पिन्निय।
बिगसि कमल निग अमर, बैन, पंजन मग लुट्टिय।
हीर कीर अरू विम्म मोति नष सिप अहि पुट्टिय॥
छप्पति गयन्द हरि हंस गति, विह बनाय संचे सचिय।
पदमिनिय रूप पद्मावतिय, मनहुं काम कामिनि रषिय॥

उपर्युक्त पद्य से स्पष्ट होता है कि यहाँ कवि ने पद्मिनी नायिका के सभी लक्षण पद्मावती में बताए हैं। तोता भी उसके अद्वितीय सौन्दर्य को देखकर उसे पद्मिनी नायिका ही मानता है। लेकिन कवि ने तो सामुद्रिक शास्त्र के सभी लक्षण उस नायिका में वता दिए हैं नायिका पद्मगंधा नायिका है, क्योंकि उसके शरीर से कमलों की सुगंध उठती है इसलिए कवि लिखता है–

"कमलगंध, वयसंध, हंसगति चलत मंद मंद भमर।
भवहि भुल्लाह सुभाय मकरन्द बास रस॥"

पद्मावती के रूप सौन्दर्य के वर्णन को पढ़कर कभी कभी पाठक को जायसी के पद्मावत की याद आ जाती है। वहाँ पर भी हीरामन तोते द्वारा पद्मावती का नख शिख वर्णन राजा रत्नसेन के समक्ष किया जाता है। इस काव्य रचना में भी तोता पद्मावती का रूप वर्णन महाराज पृथ्वीराज के समक्ष जाकर करता है। उसके नख-शिख वर्णन को सुनकर ही पृथ्वीराज चौहान पद्मावती को प्राप्त करने के लिऐ समुदशिखर पर आक्रमण कर देता है। एक स्थल पर ही कवि ने पद्मावती को मुग्धा नायिका के रूप में चित्रित किया है। लेकिन आगे चलकर पद्मावती एक विरहिणी नायिका के रूप में भी वर्णित की गई है।

प्रकृति चित्रण

प्रकृति का स्वच्छन्द विस्तृत गंभीर वर्णन पृथ्वीराज रासो में उपलब्ध नहीं होता। लेकिन जितना भी उपलब्ध होता है वह अत्यन्त सजीव और स्वाभाविक है। पृथ्वीराज रासो में ऋतुओं के वर्णन के अन्तर्गत प्रकृति का वर्णन किया गया है। इस संबंध में कवि ने ग्रीष्म ऋतु, शिशिर ऋतु शरद् ऋतु, हेमन्त तथा बसन्त आदि ऋतुओं का हृदयग्राही वर्णन किया है। पृथ्वीराज रासो से ही एक उदाहरण जिसमें शिशिर ऋतु के बारे में वर्णन किया गया है–

'रोमालत धन नीर निब्ध परये गिरि ढंग नारायते।
पव्यय पीन कुचानि पानि समला पुंकार मुकारये॥
शिशिरे सबरि बारुणे च विरहा मम ब्रदय विदारये।
मां कार्मत मृग बद्ध सिंध मने किं देव उबारये॥'

बारात-वर्णन

'पद्मावती समय में बारात का भी रमणीय और आकर्षक वर्णन कवि ने किया है। इस वर्णन से कवि ने बारात के सभी पक्षों पर प्रकाश डाला है। कहीं तो कवि विशाल हाथियों और उनके गंडस्थलों से टपकने वाल मदस्राव का वर्णन करता है तो कहीं उनके श्वेत दांतों का। इस वर्णन में कवि ने संश्लिष्ट

टिप्पणी

बिम्बों की रचना की है। बारात का वर्णन करते समय कवि ने वाद्य यन्त्रों तथा उनसे उत्पन्न होने वाले संगीत की भी चर्चा की है। इस अवसर पर कवि यह भी नहीं भूला कि बारातियों में विवाह, अवसर के अनुकूल उत्साह और प्रसन्नता दिखाई देती है। यह सारा वर्णन इतना मनोहारी है कि उसे पढ़कर पाठक स्वयं को बाराती समझने लगता है।

"चले दस महस्सं असवार जान। पूरियं पैदलं तैतीस बान।।
मत्त मद गलित से पंच दती। मनो सांम पाहार युगपंत पंती।।
चले अग्नि तेज, जुतते तुषारं। चौपट चौरासी जु साकत्ति भारं।।''

यहाँ चन्दबरदाई ने बारात में बजाए जा रहे विभिन्न प्रकार के वाद्य यन्त्रों का भी वर्णन किया है जिनमें नाल, तंनी, नगाड़ा, झांझ और तुरही आदि एक साथ बजाए जा रहे थे। 'पद्मावती समय' मूलत: लघुकाव्य है। इसे खण्ड काव्य भी कहा जा सकता है। अत: इसमें वर्णन के लिए अधिक स्थान नहीं है। जहाँ पृथ्वीराज रासो में प्रकृति वर्णन तथा समाज का वर्णन प्रभूत मात्रा में मिल जाता है, वहाँ इसमें अल्प मात्रा में है या नहीं है। कवि ने राजाओं के वैभव और शक्ति का खुलकर वर्णन किया है। इसके साथ-साथ कवि ने सेना वर्णन, युद्ध वर्णन, नायिका का नख - शिख एवं सौन्दर्य वर्णन काफी सुन्दर किया है। पृथ्वीराज का वर्णन करते समय कवि ने उसके प्रसिद्ध वंश, उदात्त गुणों, वीरता एवं शौर्य का हृदयाकर्षक वर्णन किया है। शहाबुद्दीन के सेना के साथ हुआ युद्ध वर्णन काफी विस्तार पा गया है, लेकिन यह वर्णन काफी प्रभावशाली है। इसीलिए कुछ आलोचकों ने वर्णनों की दृष्टि से इस काव्य रचना को कोई विशेष महत्व प्रदान नहीं किया। भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से रचना अत्यन्त प्रभावी है।

कलापक्ष (काव्य सौन्दर्य)

पद्मावती समय चन्दबरदाई कृत महाकाव्य पृथ्वीराज रासो का बीसवां समय (अध्याय) के रूप में व्यवस्थित है। पृथ्वीराज रासो में ऐतिहासिकता के साथ साथ कल्पना का भी सुन्दर मिश्रण किया गया है। कवि ने अपने समय की असंख्य लोक प्रचलित निजंधरी कथाओं का समावेश करके रासो को एक वृहद् आकार प्रदान किया है। पद्मावती समय इसी प्रकार की एक काव्यात्मक रचना है। इसमें कवि ने अपने अद्भुत काव्य कौशल का परिचय दिया है। वस्तु वर्णन, भावाभिव्यंजना, अलंकार योजना, भाषा, छन्द आदि सभी दृष्टियों से पृथ्वीराज रासो एक महान् काव्य है। पद्मावती समय भी उसी का एक अध्याय है। अत: उसमें हमें कवि की प्रतिभा का वही रूप प्राप्त होता है जो रासो में है, जिसका अध्ययन हम निम्न बिंदुओं से कर सकते हैं।

कथा संदर्भ

'पद्मावती समय' अपने वस्तु वर्णन के लिए प्रसिद्ध है। इसमें जहाँ एक ओर पद्मावती के रूप सौन्दर्य, बारात, सेना तथा युद्ध का वर्णन मिलता है वहाँ दूसरी ओर पद्मावती का नख शिख वर्णन भी काफी आकर्षक बन पड़ा है। पद्मावती का सौन्दर्य वर्णन करते समय कवि ने सांकेतिक और आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया है–

मनहुं कला ससि भान कसा सोलह सों बन्निय।
बाल वैस ससि ता समीप अमित रस पिन्निय।
विगसि कमल, भिमर, अनु, खंजन, मग, लुदि।

महाकवि ने सेना का जो वर्णन किया है, वह वीर भाव को उत्पन्न करने वाला है। शहाबुद्दीन गौरी की सेना का निम्नलिखित वर्णन देखिए–

"क्रोध जोध जोधा अनंत करिय पन्ती अनि-गज्जिय।

टिप्पणी

बानं नालि हथनालि तुपक, तीरह, सब, रज्जिय॥
पचपहार मनौ साल के मिरि, मुजान गजनेस बल।
आए हकारि हकारि भुरि, परासान सुलतान दल॥"

युद्ध वर्णन की दृष्टि से पद्मावती समय महाकवि का एक उल्लेखनीय खण्ड काव्य है। इसमें पृथ्वीराज और कुमोद्मणि तथा पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी के युद्धों का सजीव वर्णन मिलता है। कुछ पदों में युद्ध की क्रियाओं का वर्णन इतना सूक्ष्म है कि पाठक उसे पढ़कर प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। युद्ध वर्णन करते समय कवि भयानक एवं वीभत्स दृश्यों के चित्र अंकित करता है। उदाहरण अवलोकनीय है–

जिय घोर निसांन, रांन पहुंबान यहाँ विसि।
सकल सूर सामन्त, समरि बल जंत्र मंत्र तिसि॥
उठि राज प्रथिराज, बाग मनों लग वीर नट।
पढ़त तेज मन बेग, लगत मनों बीजु भट्ट पट॥
थकि रहे सूप कौतिग गिगन, रंगन मगन मनोन धर।
हर हरषि वीर जग्गे हुलस, हुख रंगि नव स्त बर॥

बारात चित्रण

कुमायूं का राजा अपनी बारात लेकर समुद्र शिखर की ओर चल पड़ता है। बारात में राजकुल के सर्वथा उपयुक्त सेना, हाथी और घोड़े हैं। उसकी सेना के दस हजार घुड़सवार, हाथी तथा असंख्य पैदल सैनिक बारात के साथ चल रहे थे हाथियों के गंड स्थलों से मदस्राव हो रहा था। उनके काले काले शरीरों से बाहर निकले हुए दांत ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो पर्वतों पर श्वेत बगुलियों की पंक्तियाँ हो, बारात में बजते वाद्य मानो हिरणों को भी सम्मोहित कर रहे थे। निम्नलिखित उदाहरण देखिए–

"चले बस सहससं असबार जान। परियं पैदलं तेतीसु थान।
मत मद गलित सी परंच दन्ती। मनो साम पाहार बुगपांति पंती॥
चले अम्गि तेजी जु साकति यारं। चौवरं चौरासी जु, साकति यार।
कंठ नगं नुपं अनोपं सुलालं। रंग पंच रंग बलकत्त ढालं॥''

रस

रस की दृष्टि से पद्मावती समय में केवल दो रस ही प्रधान रूप में दिखाई देते हैं। ये हैं श्रंगार और वीर रस। श्रंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग देखे जा सकते हैं। युद्ध वर्णन में वीर, रौद्र, भयानक तथा वीभत्स रसों की स्थिति मिल जाती है। फिर भी पद्मावती समय में वीर रस ही अंगी रस है। वैसे पद्मावती समय का आरम्भ भी श्रंगार रस से होता है और अन्त भी श्रंगार रस से होता है।

श्रंगार रस

यद्यपि इस काव्य रचना में श्रंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का वर्णन मिलता है लेकिन संयोग श्रंगार ही प्रधान रूप में वर्णित है काव्यारम्भ में कवि पद्मावती के अनिंद्य सौन्दर्य का वर्णन आता है। आगे चलकर शुक राजा पृथ्वीराज के समक्ष पद्मावती का रूप वर्णन करता है। वह उसे नायक पृथ्वीराज के सर्वथा योग्य नायिका सिद्ध करता है–

'कुहिल केश सुदेश, पौहप रचियत गिक्क सद।
कमल गन्ध वयसंध, हंसगति चलत मंद मंद॥
सेत वस्त्र सोह सरीर, नए सांति बुन्द जस।

भ्रमर अंयहि भुलहिं सुभाय, मकरन्द वास रस।।
नैन निरखि सुप पाय सुक, यह सुविन मूरति रषिय।
उमा प्रसाद हर हेरियत, मिलहि राज प्रधिराज जिय।।"

अभी तक पद्मावती का प्रेम एकपक्षीय है। दो तीन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि वह नायक पृथ्वीराज की विरह से व्याकुल है।' तन चिकर चीर डाग्यौ उतारि पंक्ति से भी स्पष्ट होता है कि पद्मावती प्रियतम की विरह में व्याकुल एवं उदास रहती है। अतः हम कह सकते हैं कि पद्मावती समय में वियोग श्रंगार के लिए अधिक स्थान नहीं है।

वीर रस

वीरता, पृथ्वीराज रासो तथा उसके खण्ड 'पद्मावती समय को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि चन्दबरदाई वीर रस का वर्णन करने में सिद्धहस्त थे। उन्होंने आरम्भ से ही पृथ्वीराज साहस, कौशल आदि का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। इसी प्रकार कवि ने शहाबुद्दीन गौरी की विशाल सेना का वर्णन भी प्रभावशाली ढंग से किया है। दोनों के युद्ध वर्णन करते समय योद्धाओं की मनःस्थिति पर भी प्रकाश डाला है। पद्मावती समय में कवि ने पृथ्वीराज, विजय, शहाबुद्दीन गौरी और कुमोदमणि जैसे चार राजाओं का वर्णन किया है। पहले तीन राजाओं (पृथ्वीराज, शाहाबुद्दीन, कुमोदमणि) के अन्य गुणों के साथ उनकी विशाल सेना का भी वर्णन है। लेकिन शहाबुद्दीन की तो केवल विशाल सेना का ही वर्णन है। युद्ध से पूर्व कवि रणसज्जा का वर्णन करता है। बाद में भयंकर युद्ध आरम्भ हो जाता है और युद्ध क्षेत्र में बाणों की वर्षा होने लगती है तथा खून की नदियाँ बहने लगती हैं। युद्ध वर्णन करता हुआ कवि लिखता है–

"कग्मानं बांन छुट्टिहि अपार। लागत लोह मि सारधार।
घमसान घान सबबीर घेत। घन प्रोन बत अरू रकत रेत।।''

युद्ध भयंकर रूप धारण करता है, त्यों-त्यों वीर रस का वातावरण तैयार होता जाता है। कभी कभी तो लगता है मानो वरी रस आकार धारण करके स्वयं युद्ध क्षेत्र में उतर आया है। एक उदाहरण देखिए–

"न को हार नह जित्त, रहेइन रहिब सूखर।
पर उपर भए परत, करत अति जुद्ध महाभर।।
कहाँ कम कहाँ मथ, कहाँ कर चरन अन्तरूरि।
कहाँ कन्ध बहि वेग, कहाँ सिर जुहि फुट्टि सर।
कहीं दन्त मत्त हय पुर पुपरि, कुम्भ भसुण्डा खण्ड सब।
हिन्दबान रानं भय भानं मुष गहिए तेग चहुंबानं जब।।''

छन्द–अलंकार

'पद्मावती समय में कवि ने अलंकारों का सुन्दर एवं स्वाभाविक प्रयोग किया है, परन्तु इसे सायास नहीं कहा जा सकता। वीर और श्रंगार दोनों रसों के प्रयोग में कवि ने अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है। अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिश्योक्ति, यमक, प्रान्तिमान तथा दृष्टान्त जैसे अलंकार' पदमावती समय में मिल जाते हैं। पद्य पंक्तियों को पढ़ते समय पाठक को ऐसा लगता ही नहीं कि कोई अलंकार उसके सामने आया है। उदाहरण–

उपमा– "रति बसन्त परमानं नम सांति बुंद जस।"
रूपक– "मंडल मयंक बर नारि सब।।"
अनुप्रास– "इसम हयगह देस अति घर भर रज वह।।"
अतिशयोक्ति– "इस नायक कर घरी पिनाक पर भर रज यह।।"

टिप्पणी

कवि चंद को छन्दों का राजा कहा जाता है। एक आलोचक ने तो पृथ्वीराज रासो को छन्दों का जंगल कहा है, क्योंकि इसमें एक सौ के लगभग छन्दों का प्रयोग है। इसमें से कुछ छन्द ऐसे हैं जिसका न तो पहले प्रयोग हुआ था तथा न ही छन्दशास्त्र में उनका उल्लेख मिलता है। पद्मावती समय में पाँच प्रकार के छन्द मिलते हैं दुहा, गाथा, कवित्त, पद्धरी तथा भुजंगी। संक्षिप्त वर्णन के लिए तो कवि दोहा तथा गाथा जैसे छोटे छन्दों का वर्णन करता है, परन्तु विस्तृत वर्णन के लिए कवित्त तथा पद्धरि का प्रयोग करता है। फिर भी दुहा छन्द उनका सर्वाधिक प्रिय छन्द माना गया है।

भाषा

पृथ्वीराज रासो की भाषा के बारे में लम्बे काल से विवाद चला आ रहा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इसमें भाषा के अनेक रूप मिलते हैं। इसमें कहीं तो अपभ्रंश के शब्दों की भरमार है तो कहीं रीतिकाल की भांति ब्रज भाषा की। इसी भाषा भेद के कारण कुछ लोग रासो को अप्रमाणिक भी सिद्ध करते हैं। पद्मावती समय की भाषा में भले ही कहीं-कहीं अपभ्रंश की भरमार है, लेकिन इसका मूल गठन तो अपभ्रंश ही लगता है। इस भाषा में डिंगल के साथ-साथ पिंगल दोनों भाषा का मिश्रण है। जहाँ कवि कोमल भावनाओं और रूपों का चित्रण करना चाहता है वहाँ ब्रजभाषा की कोमल पदावली का सुन्दर रूप उभर आता है। पद्मावती के रूप सौन्दर्य का चित्रण करते समय कवि ब्रज अर्थात् पिंगल का ही सहारा लेता है, यथा–

मनहुँ कला ससिमान, कला सोलह सो बन्निय।
बाल बैस ससि ता समीप अंमित रस पिन्निय॥
बिगसि कमल बिग अमर, बैन, पंजन नक लुटिय।
हीर कीर अरू बिम्ब मोति नष सिष अहि घुट्टिय॥

परन्तु युद्ध के वर्णनों में भाषा में ओज गुण की प्रधानता आ जाती हैं ऐसे स्थल पर कवि डिंगल भाषा का प्रयोग करने लगता है। डिंगल भाषा का प्रयोग करते समय कवि ने अरबी, फारसी, तुर्की आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग कर दिया है। परन्तु इसे यह मान कर चलना पड़ेगा कि चंदबरदाई की भाषा शैली विषयानुरूप है। वह जिस किसी भाव, विषय या दृश्य का वर्णन करते हैं, उनकी भाषा शैली उसी का बिम्ब प्रस्तुत कर देती है। जैसे-जैसे भाव बदलते हैं, वैसे-वैसे उनकी भाषा अपने स्वरूप को बदल लेती है वस्तुत: भाषा पर कविचन्द का आसाधारण अधिकार है। काव्य रचना के आरम्भ में यदि कवि कोमलकांत पदावली का सरस प्रयोग करता है तो आगे चलकर उनकी भाषा अंगारे बरसाने लगती है। विशेषकर वीर, भयानक और रीत रसों का वर्णन करते समय कवि की भाषा ओज गुण प्रधान बन जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से 'पद्मावती समय एक श्रेष्ठ खण्ड काव्य है। भले ही कवि ने काल्पनिक कथानक की उद्‌भावना की हो, लेकिन उन्होंने इसे काव्य रचना का रूप देकर पूर्णत: प्रभावशाली बना दिया है। एक विद्वान आलोचक ने उनकी भाषा के बारे में लिखा है "चन्द बरदाई भाषा के धनी कलाकार हैं। भाषा मानों उनके संकेतों पर नाचती-सी चलती है।" भाव और वर्ण विषय की पूर्ण सफलता से भाषा भावानुकूल नए नए रूप धारण करती है। उसका बहुत कम शब्दों में बहुत कुछ कह डालने का निश्चय ही पद्मावती समय भाव पूर्ण श्रंगार और वीर रस से समन्वित आकर्षक रचना है। इसकी योजना से पृथ्वीराज रासो को अनूठी गरिमा मिली।

1.10 पृथ्वीराज का चरित्र चित्रण

पृथ्वीराज चौहान इस कथा का नायक है। सारा कथानक इनके इर्द-गिर्द घूमता है। उसके पिता का नाम

टिप्पणी

सांभर नरेश सोमेश्वर है। कवि ने उसकी आयु केवल 16 वर्ष बताई है। वह दिल्ली का एक वीर और प्रतापी राजा है। शुक उसे पद्मावती के समक्ष इन्द्र का अवतार कहता है। यह कामदेव के समान सुन्दर और रूपवान है। शुक उसका परिचय देता हुआ कहता भी है कि उसके सामान्य प्रभावी व्यक्तित्व का कोई है ही नहीं।

"कामदेव अवतार हुआ, सुख सोमेसर नन्द।
सास-किरन झलहल कमल, रति समीप वर बिन्द।"

आदर्श नायक

कवि ने पृथ्वीराज को महाकाव्योचित नायक सिद्ध करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि चन्दबरदाई ने उसके रूप सौन्दर्य का अधिक वर्णन नहीं किया, बल्कि वह उसके शौर्य और साहस का अधिक वर्णन करता है। उसकी भुजाएँ घुटनों तक लम्बी हैं तथा वह अचूक शब्द भेदी बाण चलाने में निपुण है। वह बड़ा दानी, शीलवान् साहसी, दृढ़ प्रतिज्ञ तथा धैर्यवान यौद्धा है। उसने गजनी के बादशाह शहाबुद्दीन गौरी को युद्ध तीन बार हराकर कैद किया और फिर अभयदान देकर छोड़ दिया।

"वैसह बरीस घोड़ा नरिन्दं, आजनु बाहु भुअलोक यंयं।
जिहि पकरि साह साहाब लीन, तिहुं बेर करिल पानीप हीन।
सिंगिनि सुसद्ध गुने चढि जंजीर, युक्के न सबद वेधन्त तीर।।
बल बैन करन जिमि दान मानं, सत सहस सील हरिश्चन्द समान।
साहस सुकम विक्रम जु वीर, बांनय सुमत अवतार धीर।"

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पृथ्वीराज एक सर्वगुण सम्पन्न नायक है। यदि वह कामदेव के समान सुन्दर है तो वह वीर और प्रतापी भी है। नायक के इन्हीं गुणों को सुनकर पद्मावती उस पर आसक्त हो जाती है।

वीरता की साक्षात् मूर्ति

पृथ्वीराज वीरता का तो साक्षात अवतार दिखाई देता है। युद्ध क्षेत्र में ही पाठक उसकी वीरता को जान पाता है। वह पद्मावती का हरण कर उसे अपने घोड़े पर बिठाकर दिल्ली की ओर जा रहा था। थोड़ी दूर जाने पर ही शत्रुओं के घुड़सवारों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। यह देखकर पृथ्वीराज अपने घोड़े की लगाम मोड़कर पीछे चल पड़ा और उसने अपनी तलवार के वे जौहर दिखाए जिसे देखकर मानो सूर्य भी रुक सा गया। धरती कांपने लगी और शेषनाग बेचौन हो उठा।

शत्रुओं को पृथ्वीराज काल के समान दिखाई देने लगा। कवि लिखता है–

"उल्टी जु राज पथिराज बाग। थकि सूर गगन धर धसत नाग।
सामन्त सूर सब काल रूप। गहि लोह बाहै सुभूप।।"

उदात्त चरित्र

इस खण्ड काव्य के अन्तिम भाग में पृथ्वीराज का धीरोदात्त नायक रूप हमारे सामने उभरकर आता है। दिल्ली पहुँचकर वह विधिवत पद्मावती के साथ विवाह करता है और फिर याचकों को दान देकर उन्हें सम्मानित करता है। यही नहीं वह अपने शत्रु शहाबुद्दीन को केवल 1000 घोड़ों का दण्ड देकर मुक्त कर देता है। यह उसकी उदारता का ही परिचायक है। भले ही इतिहासकारों ने पृथ्वीराज की निन्दा की है लेकिन पृथ्वीराज ने प्राचीन भारतीय परम्परा का पालन करते हुए शहाबुद्दीन गौरी को प्राणदान देकर छोड़ दिया। इस सम्बन्ध में कवि लिखता है–

"बोलि विप्र सीधे लगन्न, सुभ घरी परठ्यि।

टिप्पणी

हरि बांसह महर बनाय, करि थांवरि गठिय॥
जावेद उच्चरहि, होम चौरी जु प्रति वर।
पद्मावती दुर्लहिन अनूप, दुल्लह पथिराज नर॥"

इस प्रकार पृथ्वीराज एक महान नायक है। जिसमें अपूर्व साहस, सौन्दर्य, दया, उदारता आर. दूर दृष्टि है।

पद्मावती का चरित्र-चित्रण

पद्मावती 'पद्मावती समय' की नायिका है। वह समुद्रशिखर के राजा विजय की पुत्री है। उसकी माता का नाम पद्मसेन है। (पद्मावती) वह 10 राजकुमारों की अकेली बहन है। वह चन्द्रमा की सोलह कलाओं के समान अनिन्द्य सुन्दरी है। उसकी चारित्रिक विशेषताओं का परिचय इस प्रकार है–

परम सुन्दरी

कविवर चन्दरबरदाई ने पद्मावती में पदमिनी नायिका के सभी लक्षणों को बताने का प्रयास किया है। एकनिष्ठ प्रेमिका होने के साथ-साथ वह अनिंद्य सुन्दरी भी है। वय:सन्धि को प्राप्त उसमें कलाएँ हैं। वह 14 विद्याओं और वेदशास्त्र के ज्ञान से परिपूर्ण है। उस युग की अन्य नायिकाओं के समान उसमें वे सभी गुण है जो एक नायिका में होने चाहिए। कवि ने उसे सामुदिक शास्त्र शुभ लक्षणों से युक्त बताया है। काव्य के आरम्भ में ही कवि उसके अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहता है–

"मनहं कला ससि भांन कला सोलह सौ बन्निय।
बाल बेस ससिता समीप अंमिन रस पिन्निय॥
बिगसि कमल मिग अमर, बैन, पंजन मग लुट्टिय।
हीर कीर अरू बिम्म, मोति नप सिनमदबलय अहि घुट्टिय।
छप्पति गयन्द हरि हंस गति, बिह बनाय संचे सचिय।
पद्मिनिय रूप पद्मावतिय, मनहुं काम कामिनि रचिय॥"

विदुषी नायिका

ऊपर के पद्य में कवि ने पद्मिनी नायिका के सभी गुण गिनवाए हैं। शुक भी उसके अप्रतिम और अनिंद्य रूप देखकर उसे पदमिनी नायिका घोषित करता है। केवल सुन्दर होने से कोई नायिका पद्मिनी नायिका नहीं हो सकती। उसमें सामुद्रिक लक्षण होना भी जरुरी है इसलिए कवि ने उसके बारे में लिखा है–

'सामुद्रिक लच्छन सकल, चीसठि कला सुजान।
जानि चतुरदस अंग पट, रति बसन्त परमान॥'

कवि उसे पद्मिनी नायिका सिद्ध करने के लिए यह स्पष्ट करता है कि उसके शरीर से कमल की सुगन्ध उत्पन्न होती है। हंस की गति के समान यह मंद मंद गति से चलती है। भम्रर उस पर मंडराते हैं और उसके शरीर से सुगन्ध फूट फूट पड़ती है। इसलिए यह एक पद्मगंधा नायिका है।

"कमलगंध, वयसंध, हंसगति चलत मंद-मंद।
भमर भयहि भुल्लाहिं सुभाव मकपचच बास रस॥''

मुग्धा नायिका

अवस्था की दृष्टि से पद्मावती को एक मुग्धा नायिका कहा जा सकता है। वह अभी वय: सन्धि की अवस्था में है। इसका मतलब यह है कि अभी तक उसका बचपन पूरी तरह से गया नहीं है। यौवन चोर दरवाजे से उसमें प्रवेश कर रहा है। जब वह तोते को देखती है तो उसे पकड़ कर सोने के पिंजरे में बंद कर देती है और अपना सारा समय उसी के साथ बिताने लगती है। वह अपना खेल-कूद भूलकर तोते को राम नाम सिखाने में लगी रहती है–

"सखियन संग खेलत फिरत फिरत महलनि बाग निवास।
कीर इक्क विनिय नयन, तब मन भयों हुलास॥
तिही महल रणत भवय, गइय खेल सब भुल्ल।
चित्त चहुंदयौ कीर सौं, राम पढ़ावत फुल्ल॥''

विरहिणी नायिका

अभी तक पद्मावती का रूप एक मुग्धा नायिका का था परन्तु शीघ्र ही वह बाल्यावस्था को छोड़कर यौवनावस्था में प्रवेश करती है। बेटी में यौवन के लक्षण देखकर माता पिता को उसके विवाह की चिन्ता सताने लगती है। वे अपने कुल पुरोहित को भेजकर उसकी सगाई कुमायूं नरेश कुमोदमर्णि' से कर देते हैं। लेकिन पद्मावती तो मन से पृथ्वीराज से प्रेम करती थी। वह विरहिणी नायिका के समान अपने मन चाहे वर पृथ्वीराज की बड़ी व्याकुलता से प्रतीक्षा करती है यह विरहिणी का शुद्ध रूप नहीं है। उसके मन में तो एक ही डर है कि कहीं उसका विवाह कुमोदमणि के साथ न हो जाए, क्योंकि कुमोदमणि बारात लेकर समुद्रशिखर आ पहुँचा है। इसलिए वह शुक के साथ न हो जाए, क्योंकि कुमोदमणि बारात लेकर समुद्रशिखर आ पहुँचा है। इसलिए वह शुक के साथ पत्र भेजकर पृथ्वीराज को निश्चित तिथि पर आने का आग्रह करती है। ऐसा करते समय वह अपनी वंश मर्यादा, पिता का सम्मान और लोकापवाद की परवाह नहीं करती। पद्मावती का विरहिणी रूप हमारे सामने उस समय उभरकर आता है जब कुमोदमणि के साथ उसकी सगाई हो जाती है और बारात आने का उसे समाचार मिल जाता है। पत्र लेकर शुक दिल्ली चला गया। उधर नगर बाहर बारात पहुँच गई थी। उधर पद्मावती दु:ख में डूबी हुई शुक के लौटने की प्रतीक्षा करने लगी। मैले कपड़े पहने रोती हुई झरोखे में बैठी वह एक टक दृष्टि बांधे दिल्ली की ओर से आने वाले मार्ग को देख रही थी। कवि उसकी विरह व्यथा का वर्णन करते हुए लिखता है–

"विलपि अवास कुंवर बरन, मनो राहु छाया सुरत।
संपति गयमि पलकि, विथित पंथ दिल्ली सपति॥"

पद्मावती दिल्ली की ओर से आने वाले मार्ग पर लगातार आखें गड़ाए देख रही थी। जब शुक उसे आकर मिला तो वह प्रफुल्लित हो उठी। शुक के मुख से पृथ्वीराज का संदेश सुनकर उसके नेत्र आनन्द से भर गए।

आदर्श प्रेमिका

पद्मावती एक क्षत्रिय की बेटी है। पृथ्वीराज के प्रति उसका प्रेम एकनिष्ठ है। संकट की घड़ी में वह बुद्धि और साहस दोनों का प्रयोग करती है। जब वह देखती है कि कुमोदमणि से उसका विवाह होने जा रहा है तो वह शुक को पत्र देकर उसे तत्काल दिल्ली भेज देती है। यहीं नहीं वह पत्र में यह भी लिख देती है कि किस तिथि को उसका विवाह हो रहा है। वह पृथ्वीराज को आग्रह करती है कि उसी तिथि को वह मंदिर में आकर उसका हरण कर ले। यह सारी योजना वह स्वयं बनाती है। इससे पता चलता है कि यह एक साहसी है और पृथ्वीराज के प्रति उसका एकनिष्ठ प्रेम है। जब शुक उसे पृथ्वीराज के आने का समाचार सुनाता है तो वह आनन्दित हो उठती है। तब वह अपनी विरहावस्था भूल जाती है। वह मैले वस्त्र उतारकर स्नान करती है और आभूषणों से सोलह श्रंगार करती है।

"तन चिकट चीर डायो उतारि। मज्जन मयंक नवसत सिंगार।
भूषन मंगाय नव सिनमदबलप अनुष। सजि सेन मनो मनमण्य भूप॥"

वह सज धज कर सखियों के साथ मंदिर में पूजा करने जाती है। पूजा के बाद वहाँ पृथ्वीराज को देखकर उसकी तरफ मंद मंद मुस्कान से देखती हुई हल्का सा घूंघट कर लेती है। इस प्रकार वह जहाँ

टिप्पणी

एक ओर पृथ्वीराज के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करती है वहीं दूसरी ओर उसे प्रेरित करती है कि वह उसका हरण कर ले।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पद्मावती एक महाकाव्योचित्त नायिका है। उसमें पद्मिनी नायिका के सभी गुण विद्यमान हैं। वह केवल अनुपम सुन्दरी ही नहीं, विदुषी भी है। एक क्षत्रिय कन्या होने के कारण संकट की घड़ी में वह असहाय होकर रोती नहीं, बल्कि बुद्धि और साहस का परिचय देकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करती है। निश्चय ही पद्मावती एक वीरांगना युवती है।

1.11 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **चंदबरदाई का जीवन परिचय लिखिए।**
2. **पद्मावती की कथावस्तु पर प्रकाश डालिए।**
3. **पृथ्वीराज रासो का चरित्र चित्रण लिखिए।**
4. **"आदर्श प्रेमिका" पर संक्षिप्त टिप्पणी किजिए।**
5. **दिए गए छंद की व्याख्या अपने शब्दों में करें।**
   "विलपि आवास कुंवर बरन, भनौ राहु हटाया सुरत।
   संपति गयमि पलकि, विथित पंथ दिल्ली सपति॥"

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. **"मुग्धाा नायिका" पर एक लघु परिचय दें।**
2. **पदमावती का चरित्र -चित्रण अपने शब्दों में लिखे।**
3. **पृथ्वीराज का चरित्र - चित्रग लिखे।**
4. **'भाषा' को समझाऐं।**
5. **श्रृंगार रस को संक्षिप्त रूप में समझाऐं।**

♦♦♦♦♦

इकाई 2

कबीर ग्रन्थावली

संरचना

2.1 डॉ. श्यामसुंदर दास: परिचय

2.2 कबीर ग्रन्थावली की व्याख्या

2.3 अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी

2.1 डॉ० श्यामसुन्दर दास: परिचय

महान भाषाविद् तथा मूर्द्धन्य साहित्यकार डॉ० श्यामसुन्दर दास का जन्म सन् 1875 ई० में काशी (वाराणसी) में हुआ था। एक प्रतिभाशाली विद्यार्थी के रूप में सन् 1897 ई० में बी० ए० पास करने के उपरान्त उन्होंने कुछ समय तक काशी के हिंदू स्कूल में अध्यापन का काम किया तथा बाद में लखनऊ के कालीचरण स्कूल में बहुत दिनों तक प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत रहे। आगे चलकर वे सन् 1921 ई० में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने सन् 1893 ई० में अपने कुछ साहित्य प्रेमी सहयोगियों से मिलकर 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना की। 'हिंदी शब्द सागर' का संपादन, 'आर्य भाषा पुस्तकालय' की स्थापना, प्राचीन महत्वपूर्ण ग्रंथों का संपादन, सभा-भवन का निर्माण, 'सरस्वती' पत्रिका संपादन, उच्चस्तरीय शिक्षा-पुस्तकों का लेखन-प्रकाशन जैसे भाषाई रचनात्मक कार्य उनके हिंदी-उन्नयन एवं सर्वोत्तमुखी विकास में किए गए ऐतिहासिक कार्य थे। वस्तुत: जीवनपर्यंत वे हिंदी साहित्य एवं हिंदी भाषा के उन्नयन एवं विकास में पूरे समर्पण भाव से लगे रहे। हिंदी के अनन्य साधक, विद्वान, आलोचक और शिक्षाविद् थे। हिंदी साहित्य और बौद्धिकता के पथ-पद्रर्शकों में उनका नाम अविस्मरणीय है। हिंदी-क्षेत्र के साहित्यिक-सांस्कृतिक नवजागरण में उनका योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने और उनके साथियों ने मिलकर काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की।

विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई के लिए अगर बाबू साहब के नाम से प्रसिद्ध श्यामसुंदर दास ने पुस्तकें तैयार न की होतीं तो शायद हिंदी का अध्ययन-अध्यापन आज सबके लिए इस तरह सुलभ न होता। उनके द्वारा की गयी हिंदी साहित्य की पचास वर्षों तक निरंतर सेवा के कारण कोश, इतिहास, भाषा-विज्ञान, साहित्यालोचन, सम्पादित ग्रंथ, पाठ्य-सामग्री निर्माण आदि से हिंदी-जगत समृद्ध हुआ। उन्हीं के अविस्मरणीय कार्यों ने हिंदी को उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित करते हुए विश्वविद्यालयों में गौरवपूर्वक स्थापित किया।

बाबू श्याम सुंदर दास ने अपने जीवन के पचास वर्ष हिंदी की सेवा करते हुए व्यतीत किए। उनकी इस हिंदी सेवा को ध्यान में रखते हुए ही राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने निम्न पंक्तियाँ लिखी हैं–

मातृभाषा के हुए जो विगत वर्ष पचास।
नाम उनका एक ही है श्याम सुंदरदास॥

श्याम सुंदर दास की मौलिक कृतियाँ– नागरी वर्णमाला, साहित्यालोचन, भाषाविज्ञान, हिंदी भाषा का विकास, हिंदी कोविद ग्रंथमाला, गद्यकुसुमावली, भारतेंदु हरिश्चंद्र, हिंदी भाषा और साहित्य, गोस्वामी तुलसीदास, भाषा रहस्य, मेरी आत्मकहानी।

संपादित कृतियाँ– चंद्रावली, छत्रा प्रकाश, रामचरितमानस, पृथ्वीराज रासो, हिंदी वैज्ञानिक कोश, हम्मी रासो, शकुंतला नाटक, रत्नाकर, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सरस्वती।

डॉ० श्यामसुन्दर दास द्वारा संकलित की कबीर ग्रन्थावली भूमिका

आज इस बात को पाँच-छह वर्ष हुए होंगे, जब काशी नागरीप्रचारिणी सभा में रक्षित हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की जाँच की गयी थी और उनकी सूची बनाई गयी थी उस समय दो ऐसी पुस्तकों का पता चला जो बड़े महत्त्व की थीं पर जिनके विषय में किसी को पहले कोई सूचना नहीं थी। इनमें से एक तो सूरसागर की हस्तलिखित प्रति थी और दूसरी कबीरदासजी के ग्रंथों की दो प्रतियाँ थीं। कबीरदासजी के ग्रंथों की इन दो प्रतियों में से एक तो संवत् 1561 की लिखी है और दूसरी संवत् 1881 की। दोनों प्रतियों को देखने पर यह प्रकट हुआ कि इस समय कबीरदास जी के नाम से जितने ग्रंथ प्रसिद्ध हैं

उनका कदाचित् दशमांश भी इन दोनों प्रतियों में नहीं है। यद्यपि इन दोनों प्रतियों के लिपिकाल में 320 वर्ष का अंतर है पर फिर भी दोनों में पाठ भेद बहुत ही कम है। संवत् 1881 की प्रति में संवत् 1561 वाली प्रति की अपेक्षा केवल 131 दोहे और 5 पद अधिक हैं। उस समय यह निश्चित किया गया कि इन दोनों हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर कबीरदासजी के ग्रंथों का एक संग्रह प्रकाशित किया जाए। यह कार्य पहले पंडित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय को सौंपा गया और उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार भी कर लिया। पर पीछे से समयाभाव के कारण वे यह न कर सके। तब यह मुझे सौंपा गया। मैंने यथासमय यह कार्य आरंभ कर दिया। मेरे दो विद्यार्थियों ने इस कार्य में मेरी सहायता करने की तत्परता भी प्रकट की, पर इस तत्परता का अवसान दो ही तीन दिन में हो गया। धीरे-धीरे मैंने इस काम को स्वयं ही करना आरंभ किया। संवत् 1983 के भाद्रपद मास में बहुत बीमार पड़ जाने तथा लगभग दो वर्ष तक निरंतर अस्वस्थ रहने और गृहस्थी संबंधी अनेक दुर्घटनाओं और आपत्तियों के कारण मैं यह कार्य शीघ्रतापूर्वक न कर सका। बीच-बीच में जब-तब अन्य झंझटों से कुछ समय मिला और शरीर की कुछ कार्य करने की समर्थता प्रकट करता तब-तब में यह कार्य करता रहा। ईश्वर की कृपा है कि यह कार्य अब समाप्त हो गया।

जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, इस संस्करण का मूल आधार संवत् 1561 की लिखी हस्तलिखित प्रति है। यह प्रति खेमचंद के पढ़ने के लिए मलूकदास ने काशी में लिखी थी। यह पता नहीं लगा कि ये खेमचंद और मलूकदास कौन थे। क्या ये मलूकदास जी कबीरदासजी के वही शिष्य तो नहीं थे जो जगन्नाथपुरी में जाकर बसे और जिनकी प्रसिद्ध खिचड़ी का वहाँ अब तक भोग लगता है तथा जिसके विषय में कबीरदासजी ने स्वयं कहा है 'मेरा गुरु बनारसी चेला समुंदर तीर।' यदि ये वही मलूकदास हैं तो इस प्रति का महत्व बहुत अधिक है। यदि यह न भी हो, तो भी इस प्रति का मूल्य कम नहीं है। जैसा कि इस संस्करण की प्रस्तावना में सिद्ध किया गया है. कबीरदासजी का निधन संवत् 1575 में हुआ था। यह प्रति उनकी मृत्यु के 14 वर्ष पहले की लिखी हुई है। अंतिम 14 वर्षों में कबीरदासजी ने जो कुछ कहा था यद्यपि वह उसमें सम्मिलित नहीं, तथापि इसमें संदेह नहीं कि संवत् 1561 तक की कबीरदास जी की समस्त रचनाएँ इसमें संगृहीत हैं। यह प्रति (क) मानी गयी है। इसके प्रथम और अंतिम दोनों पृष्ठों के चित्र इस (पुस्तकीय) संस्करण के साथ प्रकाशित किए जाते हैं।

दूसरी प्रति (ख) मानी गयी है। यह संवत् 1881 की लिखी है अर्थात् इस प्रति के और (क) प्रति के लिपिकाल में 320 वर्षों का अंतर है। पर (क) और (ख) दोनों प्रतियों में पाठभेद बहुत कम है। (ख) प्रति में (क) प्रति की अपेक्षा 131 दोहे और 5 पद अधिक हैं।

यह बात प्रसिद्ध है कि संवत् 1661 में अर्थात् (क) प्रति के लिखे जाने के 100 वर्ष पीछे गुरुग्रंथसाहब का संकलन किया गया उसमें अनेक भक्तों की वाणी सम्मिलित की गयी है। गुरुग्रंथसाहब में कबीरदासजी की जितनी वाणी सम्मिलित की गयी है, वह सब मैंने अलग करवाई और तब (क) तथा (ख) प्रतियों में सम्मिलित पदों आदि से उसका मिलान कराया। जो दोहे और पद मूल अंश में आ गये थे उनको छोड़कर शेष सब दोहे और पद परिशिष्ट में दे दिए गये हैं।

इनके अतिरिक्त पदटिप्पणियों में जो (ख) प्रति में अधिक दोहे दिए गये हैं, उनमें से साखी (41) के दोहे 18, 19 और 20 तथा साखी (46) का दोहा 38 उस प्रति और गुरुग्रंथसाहब दोनों में समान हैं। इस प्रकार दोनों हस्तलिखित प्रतियों और गुरुग्रंथसाहब में 48 दोहे और 5 पद ऐसे हैं जो दोनों में समान हैं। इनको छोड़कर ग्रंथसाहब में जो दोहे या पद अधिक मिले हैं वे परिशिष्ट में दे दिए गये हैं। इनमें 192 दोहे और 222 पद हैं। इस प्रकार इस संस्करण में कबीरदासजी के दोहों और पदों का अत्यंत प्रमाणिक संग्रह दिया गया है। यह कहना तो कठिन है कि इस संग्रह में जो कुछ दिया गया है, उसके

टिप्पणी

अतिरिक्त और कुछ कबीरदासजी ने कहा ही नहीं, पर इतना अवश्य है कि इनके अतिरिक्त और जो कुछ कबीरदासजी के नाम पर मिले उसे सहसा उन्हीं का कहा हुआ तब तक स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए जब तक उसके प्रक्षिप्त न होने का कोई दृढ़ प्रमाण न मिल जाए।

इस संबंध में ध्यान रखने योग्य एक और बात यह है कि इस संग्रह में दिए हुए दोहों आदि की भाषा और कबीरदासजी के नाम पर बिकनेवाले ग्रंथों के पदों आदि की भाषा में आकाश पाताल का अंतर है। इस संग्रह के दोहों आदि की भाषा भाषाविज्ञान की दृष्टि से कबीरदासजी के समय के लिए बहुत उपयुक्त है और वह हिंदी के 16वीं तथा 17वीं शताब्दी के रूप के ठीक अनुरूप है और इसीलिए इन पदों और दोहों को कबीरदासजी रचित मानने में आपत्ति नहीं हो सकती। परंतु कबीरदासजी के नाम पर आजकल जो बड़े ग्रंथ देखने में आते हैं, उनकी भाषा बहुत ही आधुनिक और कहीं-कहीं तो बिलकुल आजकल की खड़ी बोली ही जान पड़ती है। आज के प्रायः तीन-साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व कबीरदासजी आजकल की सी भाषा लिखने में किस प्रकार समर्थ हुए होंगे, यह बहुत ही विचारणीय है।

इस संस्करण में कबीरदासजी के जो दोहे और पद सम्मिलित किए गये हैं उन्हें मैंने आजकल की प्रचलित परिपाटी के अनुसार खराद पर चढ़कर सुडौल, सुंदर और पिंगल के नियमों से शुद्ध बनाने का कोई उद्योग नहीं किया। वरन् मेरा उद्देश्य यही रहा है कि हस्तलिखित प्रतियों या ग्रंथसाहब में जो पाठ मिलता है, वही ज्यों का त्यों प्रकाशित कर दिया जाए। कबीरदासजी के पूर्व के किसी भक्त की वाणी नहीं मिलती। हिंदी साहित्य के इतिहास में वीरगाथा काल की समाप्ति पर मध्यकाल का आरंभ कबीरदासजी से होता है, अतएव इस काल के वे आदि कवि हैं। उस समय भाषा रूप परिमार्जित और संस्कृत नहीं हुआ था। जिस पर कबीरदासजी स्वयं पढ़े-लिखे नहीं थे। उनहोंने जो कुछ कहा है, वह अपनी प्रतिभा तथा भावुकता के वशीभूत होकर कहा है। उनमें कवित्व उतना नहीं था जितनी भक्ति और भावुकता थी। उनकी अटपट वाणी हृदय में चुभने वाली है। अतएव उसे ज्यों का त्यों प्रकाशित कर देना ही उचित जान पड़ा और यही किया भी गया है। हाँ, जहाँ मुझे स्पष्ट लिपिदोष दिखाई पड़ा, वहाँ मैंने सुधार दिया है, और वह भी कम से कम उतना ही जितना उचित और नितान्त आवश्यक था।

एक और बात विशेष ध्यान देने योग्य है। कबीरदासजी की भाषा में पंजाबीपन बहुत मिलता है। कबीरदास ने स्वयं कहा है कि मेरी बोली बनारसी है। इस अवस्था में पंजाबीपन कहाँ से आया? ग्रंथसाहब में कबीरदासजी की वाणी का जो संग्रह किया गया है, उसमें जो पंजाबीपन देख पड़ता है, उसका कारण तो स्पष्ट रूप से समझ में आ सकता हैं, पर मूल भाग में अथवा दोनों हस्तलिखित प्रतियों में जो पंजाबीपन देख पड़ता है, उसका कुछ कारण समझ में नहीं आता। या तो यह लिपिकर्ता की कृपा का फल है अथवा पंजाबी साधुओं की संगति का प्रभाव है। कहीं-कहीं तो स्पष्ट पंजाबी प्रयोग और मुहावरे आ गये हैं जिनको बदल देने से भाव तथा शैली में परिवर्तन हो जाता है। यह विषय विचारणीय है। मेरी समझ में कबीरदासजी की वाणी में जो पंजाबीपन देख पड़ता है उसका कारण उनका पंजाबी साधुओं से संसर्ग ही मानना समीचीन होगा। इस संस्करण के साथ कबीरदासजी के दो चित्र प्रकाशित किए जाते हैं, एक तो कलकत्ता म्यूजियम से प्राप्त हुआ है और दूसरा कबीरपंथी स्वामी युगलानंदजी से मिला है। दोनों में से किसी चित्र का कोई ऐसा प्रामाणिक इतिहास नहीं मिला जिसकी कुछ जाँच की जा सकती पर जहाँ तक मैं समझता हूँ, वृद्धावस्था का चित्र ही जो कबीरपंथी साधु युगलानंदजी से प्राप्त हुआ है अधिक प्रमाणिक जान पड़ता है।

इस ग्रंथ का परिशिष्ट प्रस्तुत करने में मेरे छात्रा पंडित अयोध्यानाथ शर्मा एम० ए० ने बड़ा परिश्रम किया है। यदि वे यह कार्य न करते तो मुझे बहुत कुछ कठिनता का सामना करना पड़ता। इसी प्रसार प्रस्तावना के लिए सामग्री एकत्र करने और उसे व्यवस्थित रूप देने में मेरे दूसरे छात्रा पंडित पीताम्बरदत्त

बड़थ्वाल एम० ए० ने मेरी जो सहायता की है वह बहुत ही अमूल्य है। सच बात तो यह है कि यदि मेरे ये दोनों प्रिय छात्रा इस प्रकार मेरी सहायता न करते, तो अभी इस संस्करण के प्रकाशित होने में और भी अधिक समय लग जाता। इस सहायता के लिए मैं इन संस्करण के प्रकाशित होने में और भी अधिक समय लग जाता। इस सहायता के लिए मैं इन दोनों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। इनके अतिरिक्त और भी दो–तीन विद्यार्थियों ने मेरी सहायता करने में कुछ–कुछ तत्परता दिखाई पर किसी का तो काम ही पूरा न उतरा, किसी ने टालमटोल कर दी और किसी ने कुछ कर–कराकर अपने सिर से बला टाली। अस्तु, सभी ने कुछ न कुछ करने का उद्योग किया और मैं उन सबके प्रति कृतज्ञता प्रगट करता हूँ।

(श्यामसुंदरदास)

काशी–

ज्येष्ठ कृष्ण 13, 1985

2.2 कबीर ग्रन्थावली की व्याख्या

डॉ० श्यामसुन्दर दास द्वारा संकलित कबीर ग्रन्थावली में 'गुरुदेव को अंग' में गुरु महिमा से संबंधित सखियाँ संकलित हैं। भारत में गुरु को विशेष महिमा प्राप्त है। ऋषियों–मुनियों, कवियों आदि ने भाँति–भाँति से गुरु की महत्ता का निरूपण किया है। महिमा–वर्णन की यह परम्परा कबीर से पहले भी मिलती है और कबीर के बाद भी विद्यमान है, लेकिन सन्त कबीर ने गुरु की महिमा की जो प्रतिष्ठा की है यह अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँ डॉ० श्यामसुन्दर दास द्वारा संकलित कबीर ग्रन्थावली के 'गुरुदेव को अंग' की सभी साखियाँ (दोहे) सरल भावार्थ सहित प्रस्तुत हैं।

सतगुर सवाँन को सगा, सोधी सई न दाति।
हरि जी सवाँन को हितू, हरिजन सई न जाति।।1।।

भावार्थ – गुरु के समान कोई सगा (अपना) नहीं है शुद्धि जैसा कोई दान नहीं है हृदय को, मन को जो निर्मल कर दे वैसा दान दूसरा नहीं है। गुरु अपने उपदेशों से शिष्यों को नाना विकारों से मुक्त कर देता है। हरि के समान कोई हितकारी नहीं है और भक्त के समान न ही कोई जाति है। कहने का आशय यह है कि जन्म के आधार पर कोई श्रेष्ठ नहीं बनता है। यह श्रेष्ठ तभी बनता है जब वह ईश्वर की भक्ति में लीन होकर अपनापा को तज देता है।

बलिहारी गुरु आपणै, द्यौं हाड़ी के बार।
जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार।2।।

भावार्थ – मैं अपने गुरु पर अपने को उत्सर्ग करता हूँ, क्योंकि ये स्वर्ग के द्वार हैं अर्थात् उन्हीं की ज्ञान कृपा से स्वर्ग में प्रवेश किया जा सकता है। जिन्होंने मुझे मनुष्य से देवता बना दिया और देवता बनाने में किसी प्रकार का विलम्ब भी नहीं किया।

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाडिया, अनंत दिखावणहार।।3।।

भावार्थ –सतगुरु की महिमा अनन्त है। उसका किया गया उपकार भी अनन्त है। उसने अनन्त दृष्टि को खोलकर उस अनन्त का जिसका कोई आदि - अन्त और ओर छोर नहीं है, दर्शन कराने की अनुकम्पा की है। कहने का आशय यह है कि ईश्वर का दर्शन सामान्य दृष्टि से नहीं हो सकता है। उसके लिए दिव्य नेत्र या कहें अनन्त नेत्र की आवश्यकता होती है।

टिप्पणी

राम-नाम कै पटंतरै, देबे कौं कछु नाहिं।
क्या ले गुर संतोषिए, हौंस रही मन माहिं।।4।।

भावार्थ – सद्गुरु ने राम नाम का मंत्र किया। उस मंत्र के बदले में उसके बराबर देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है। ऐसी स्थिति में गुरु को क्या अर्पित करके सन्तुष्ट होऊँ। गुरु को कुछ देने का उत्साह मन के भीतर ही रह जाता है।

सतगुर के सदके करूं, विल अपणी का साछ।
कलियुग हम स्यू लड़ि पड्या महकम मेरा बाह।।5।।

भावार्थ –अपनी आत्मा की गवाही करके अपने गुरु पर अपने को न्यौछावर करता हूँ। कलियुग ने मुझ पर अपना पूर्ण प्रभाव डालने का प्रयास किया, लेकिन गुरु की कृपा और मेरी चाह (ईश्वर प्राप्ति की कामना) बड़ी मजबूत थी, इसलिए वह किसी प्रकार का व्यवधान नहीं डाल पाया।

सतगुर लई कौण करि बौहण लागा तीर।
एक जु बाह्या प्रीति भीतरि रह्या सरीर।।6।।

भावार्थ – सद्गुरु ने शब्द रूपी धनुष से ज्ञान रूपी बाण फेंका। एक तीर जो बड़े स्नेह से चलाया था, वह मेरे शरीर के भीतर बिंध गया अर्थात् सद्गुरु के ज्ञान से भीतर का अन्धकार और भीतर की मलिनता मिट गयी।

सतगुर साँचा सूरियाँ, सबब जुबाह्या एक।
लागत ही में मिलि गया, पढ़या कलेजे छेक।।7।।

भावार्थ – सद्गुरु सच्चा शुर (वीर) है। उसने शब्द - बाण फेंका। शब्द बाण लगते ही साग अहंकार मिट गया और मेरा चित्त शांत हो गया। अर्थात् सद्गुरु का निशाना अचूक होता है और वह शब्द - बाणों से शिष्य के सारे विकारों को नष्ट करता है।

सतगुरु मारया बाण भरि, धरि करि सूधी मूठि।
अंगि उधार लागिया, गई दवा पटि।।8।।

भावार्थ –वह नंगे अंग पर लगा और दावग्नि - सी फूट पड़ी। कहने का तात्पर्य यह है कि नंगे शरीर पर लक्ष्य बाण बिल्कुल ठीक लगता है और वह शरीर में आर-पार समा जाता है गुरु ने जो शब्द बाण मारा वह भी शिष्य के शरीर में बिल्कुल ठीक जगह लगा और उसके शरीर में प्रभु दर्शन प्राप्ति की विरहाग्नि रूपी दावाग्नि जल पड़ी।

हंस न बोलै उनमनी, चंचल मेल्लया मादि।
कहै कबीर भीतरि भिधा, सतगुर के हथियर।।9।।

भावार्थ – कबीर कहते हैं कि सद्गुरु का शब्द - बाण रूपी हथियार मन में बिंध गया जिसने मेरे मन को बेध दिया। जिससे मन की सारी चंचलता (मन की संकल्पात्मक और विकल्पात्मक दशा) मिट गयी और जीवात्मा उन्मनी अवस्था में पहुँच गयी। अर्थ - जब सुषुम्ना नाड़ी में प्राणवायु का संचार होने लगता है, मन स्थिर हो जाता है, वह अवस्था उन्मनी अवस्था होती है।

गुंगा हूवा बावला, बहरा हुआ कान।
पाऊँ मैं पंगुल भया सतगुर मारया बाण।।10।।

भावार्थ –सद्गुरु के शब्द - बाण मारने से शिष्य गूंगा और बावला हो जाता है, कान से बहरा हो जाता है और पाँव से लँगड़ा हो जाता है यहाँ पर कबीर ने यह संकेत दिया है कि सद्गुर के ज्ञान से ज्ञानेन्द्रियों की बाह्यवृति रुक जाती है और वह अन्तर्मुखी हो जाती हैं इसी अन्तर्मुखता से साधक - शिष्य अपने भीतर ईश्वर का साक्षात्कार करता है।

पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगे थे सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि॥11॥

भावार्थ –लोक-वेद के साथ लगकर मैं उनके पीछे-पीछे जा रहा था लेकिन आगे मुझे सद्गुरु मिल गये जिन्होंने मुझे ज्ञान का दीपक मेरे हाथ में दे दिया, कहने का आशय यह है कि मैं लोक और वेद की मान्यताओं के चक्कर में पड़ा हुआ था और सही मार्ग को भूल गया था और संसार में भटक रहा था, लेकिन गुरु ने ज्ञान प्रदान करके उस भटकन को समाप्त कर दिया।

दीपक दीया तेल भरि बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहूणां, बहुरि न आँवौ हट्ट॥12॥

भावार्थ –सद्गुरु ने प्रेम रूपी तेल से भरकर ज्ञान रूपी दीपक प्रदान किया और उस ज्ञान दीपक में कभी न घटने वाली बत्ती डाल दी जिसके द्वारा शिष्य संसार रूपी हाट में (बाजार जन्म मृत्यु-का क्रम विक्रय समाप्त कर लिया अत: उसे पुन: इस संसार रूपी बाजार में) नहीं आना पड़ेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि ज्ञान प्राप्ति मनुष्य जन्म - मृत्यु के चक्कर से पार हो जाता है।

ग्यान प्रकास्या गुरु मिल्या, सो जिनि बीसरि जाइ।
जब गोबिंद कृपा करी, तब गुरु मिलिया आइ॥13॥

भावार्थ –गुरु के मिलने से ज्ञान प्रकाशित हो गया अथवा ज्ञान का अभ्युदय हो गया। गुरु प्रदत्त उस ज्ञान को भूलना नहीं चाहिए। क्योंकि जब गोविंद (ईश्वर) ने कृपा किया तभी गुरु मिला और गुरु ने ज्ञान दिया। कहने का आशय यह है कि शिष्य - साधक का यह कर्त्तव्य होता है कि वह गुरु-ज्ञान को अपनी साधना से नित्य बनाये रखे।

कबीर गुरु गरवा मिल्या, रलि गाय आटे लूण।
जाति पाँत कुल सब मिट, नाव धरोगे कोण॥14॥

भावार्थ – कबीरदास कहते हैं कि मुझे महिमा से सम्पन्न गुरु मिल गया। गुरु की कृपा से, गुरु के उपदेश मे ईश्वर के साथ वैसे ही घुल मिल गया जैसे आटे में नमक मिलकर एकमेक हो जाता है। प्रभु के मिलन से परिणाम यह हुआ कि मेरी जाति, पाति कुल आदि सब कुछ मिट गया, ऐसी स्थिति में अब मेरा क्या नाम रखा जायेगा।

जाका गुर भी अंधला, चेला खरा निरचं।
अंधा अंधा लिया, दून्यू कूप पडत॥15॥

भावार्थ –जिसका गुरु अन्धा (अज्ञानी है और शिष्य बिल्कुल घनघोर अन्धा (बड़ा मूर्ख) है। जब अंधा अंधे को ठेलेगा अर्थात् अज्ञानी गुरु महामूर्ख शिष्य को उपदेश देगा तब वह उपदेश कारगर साबित नहीं होगे। दोनों ही संसार रूपी कुएँ में पड़कर नष्ट हो जायेंगे।

ना गुरु मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या जाव।
दुन्यू बूढ़े धार मैं, चढ़ि पाथर की नाव॥16॥

भावार्थ –कबीरदास कहते हैं न योग्य गुरु मिला न उचित शिष्य मिला। दोनों लालच के वशीभूत होकर अपना - अपना दाव खेलते रहे। लेकिन दोनों ऐसे ही भवसागर की धार में डूब गये जैसे कोई पत्थर की नाव में चढ़कर अपने को नष्ट कर देता है।

चौसठ दीवा जोइ करि, चौदह चंदा माँहि।
तिहिं घर किस को चानिणों, जिहि घटि गोबिंद नाहि॥17॥

भावार्थ – कबीरदास कहते हैं चाहे चौसठ कलाओं और चौदह विद्याओं के ज्ञान का प्रकाश हो जाये,

टिप्पणी

लेकिन जिसके शरीर रूपी गृह में गोबिंद का निवास नहीं है उस घर में कैसे प्रकाश होगा अर्थात् जो हृदय प्रभु की भक्ति से रहित है, उसमें अनेक कलाएँ और विद्याएँ भी प्रकाश नहीं भर सकतीं।

निस अँधियारो कारण, चौरासी लख चंद।
अति आतुर ऊदै किया, तऊ विष्टि नहिं मंद।।18।।

भावार्थ – अंधियारी रात को प्रकाशित करने के लिए चाहे बड़े उत्साह के साथ चौरासी लाख चन्द्रमा उदित किये जायें लेकिन जिनकी बुद्धि मंद है उन्हें कुछ भी दिखायी सुनाई नहीं पड़ सकता है– कहने का तात्पर्य यह है कि गुरु ज्ञान के बिना अन्दर की आँखे नहीं खुलती हैं, बाहर चाहे कितना प्रकाश क्यों न किया जाये।

भली भई जु गुर मिल्या, नहीं तर होती हाँणि।
दीपक दिष्टि पतंक ज्यू, पड़ता पूरी जाँणि।।19।।

भावार्थ –बहुत अच्छा हुआ जो गुरु मिल गया, अन्यथा मेरी बहुत बड़ी हानि होती। जैसे पतंग दीपक की चकाचौध में उससे मोहित होकर उस पर बार-बार पड़ता है, वैसे मैं भी माया रूपी दीपक को ही सत्स्वरूप मानकर उस पर बार-बार पड़ता और अपने को नष्ट कर लेता।

माया दीपक नर पतंग अमि अमि इवै पर्वत।
कहै कबीर गुर ग्यान थे, एक आध उबरंत।।20।।

भावार्थ –माया दीपक के समान और मनुष्य पतंग के समान है। पतंग की भाँति मनुष्य माया रूपी दीपक पर घूम-घूम कर बार-बार पड़ता है कबीर दास कहते हैं कि गुरु ज्ञान से ही एक - व्यक्ति माया के आकर्षण से बच पाता है।

सतगुर बपुरा क्या करे, जे सिवही मौह चूक।
भाव त्यूँ प्रबोधि तो, ज्यूं वंसि बजाई फूक।।121।।

भावार्थ –सद्गुरु बेचारा क्या कर सकता है. यदि शिष्य में ही कोई खोट - दोष हो जिस प्रकार कोई व्यक्ति बंशी को बजाकर बेसुरा और अप्रिय स्वर निकाल ले तो उसमें वंशी का कोई दोष नहीं होता है। उसी प्रकार अयोग्य और मुर्ख शिष्य भी गुरु के उपदेश में निहित अर्थ का अनर्थ कर डालते हैं।

संसै खाया सकल जुग, संसा किनहुँ न बद्ध।
जे बेधे गुर अष्षिरां, तिनि संसा चुणि चुणि खद्ध।।122।।

भावार्थ – कबीर की इस साखी का भाव है कि गुरु के ज्ञान के अभाव में जीवात्मा माया/भ्रम ग्रस्त होकर रह जाती है। माया का भ्रम क्या है? समस्त सांसारिक क्रियाएँ भ्रम हैं। भ्रम का शिकार हो जाने पर जीवात्मा संसारिक रीति रिवाज, कर्मकांड, तीर्थ, मूर्ति पूजा को भक्ति मार्ग का माध्यम मान लेती है। जबकि इनका वास्तविक भक्ति से कोई लेना देना नहीं है। सच्ची भक्ति हृदय से है, बाह्य कर्म और दिखावे में नहीं। भगवा धारण करना, नाना प्रकार के वेश धारण करना और हृदय में कपट के होने पर क्या वह भक्ति मार्ग पर बढ़ सकता है। स्पष्ट कि चाहे जितना भी सांसारिक क्रियाओं को कर लें, यदि हृदय से सच्ची हरी का सुमिरण नहीं किया जाए तो अवश्य ही वह का ग्रास बनेगा। कबीर साहेब की इस साखी में "चुनि चुनि मे।" पुनारावृत्तिप्रकाश अलंकार का उपयोग हुआ है, और भाषा मिली जुली सधुक्कड़ी है।

चेतनि चौकी बैसि करि, सतगुर दीन्हाँ धीर।
निरभै होइ निसंक भजि, केवल कहै कबीर।।128।।

भावार्थ – ईश्वर द्वैत नहीं है 'केवल' से तात्पर्य है की द्वैत भाव को छोड़कर ईश्वर के नाम का सुमिरन

करो। चेतना को जाग्रत करने के उपरांत चेतना की चौकी पर आसीन होकर सतगुरु ने धैर्य बंधाया कि निर्भय होकर ईश्वर के नाम का सुमिरन करो, द्वैत की भावना को मत रखो। मात्र ज्ञान ही मुक्ति का आधार है। ज्ञान प्राप्ति के उपरांत चेतन चौकी स्वत: ही जाग्रत हो जाती है।

सतगुर मिल्या त का भयां, जे मनि पाड़ी भोल।
पासि बिनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल।।24।।

भावार्थ –शिष्य में यदि भक्ति भावना नहीं है तो सतगुरु के मिलने पर भी कोई लाभ नहीं होने वाला है। सतगुरु एक मार्ग दिखाता है अब उस पर चलना शिष्य को ही है। तन रूपी कपड़े पर यदि माया रूपी रंग चढ़ा हुआ है/ कपड़ा मेला है तो उस पर दूसरा रंग कैसे चढ़ेगा? इसमें रंगरेज (कपड़े की रंगाई करने वाला) का कोई दोष नहीं है। रंगरेज तभी रंग चढ़ा सकता है जब कपड़ा साफ हो। ऐसे ही यदि शिष्य व्यक्तिगत प्रयत्न करके माया को दूर नहीं करता है और उसके स्वभाव में माया जनित लक्षण हैं तो अच्छे से अच्छा गुरु भी उसे कोई ज्ञान नहीं दे पाता है। ज्ञान का रंग उस पर चढ़ेगा ही नहीं क्योंकि उस पर तो विषय वासनाओं का रंग चढ़ा हुआ है। इस दोने में दृष्टांत अलंकार का प्रयोग हुआ है।

बूढे थे परि ऊबरे, गुर की लहरि चमंकि।
भेरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़ फरंकि।।25।।

भावार्थ – मैं (शिष्य) संसार की अज्ञान रूपी नौका में सवार था और सोच रहा था इसी के माध्यम से मैं इस संसार (भव) से पार हो जाऊँगा। ये तो सही समय पर गुरु के ज्ञान की एक लहर आयी और मैं नॉव से छिटक कर दूर जाकर पड़ा और देखा कि जिस नाव में मैं सवार था वह तो बिलकुल ही टूटी फूटी थी और जर्जर थी, जिसके सहारे भव सागर को पार करना असम्भव था। भाव है कि गुरु के ज्ञान के बगैर भव सागर में डूबना निश्चित ही है, गुरु के बताये मार्ग से ही जीव का कल्याण सम्भव है। इस दोहे मे रूपक अलंकार का उपयोग किया गया है।

कबीर सब जग यों भ्रम्या फिरै ज्यूँ रामे का रोज।
सतगुर थैं सोधी भई, तब पाया हरि काशोज।।26।।

भावार्थ – मानसरोवर रूपी कुंड में अमृत रूपी जल भरा है। आत्मा रूपी हंस उसमें क्रीड़ा कर रहा है और जीवात्मा शून्य शिखर तक पहुँच चुकी है, मस्त होकर क्रीड़ा कर रही है। जीवात्मा स्वछंद रूप से मुक्ताफल चुनने में व्यस्त है और इस परम आनंद को छोड़कर विषय वासनाओं के सुख की प्राप्ति की उसे आशा नहीं है। अब वह कहीं और नहीं जाना चाहती है। इस साखी में रूपक, श्लेष और अन्योक्ति अलंकारों का प्रयोग किया गया है। कई स्थानों पर इसकी व्याख्या कहा गया है कि जैसे हंस मानसरोवर में मोती चुनने में व्यस्त हो जाता है वैसे ही जीवात्मा इस संसार में ही रहना चाहती है, लेकिन इसका ऐसा भाव मुझे समझ में नहीं आता है।

गुरु गोविन्द तौ एक है, दूजा यह आकार।
आपा मेट जीवत मरै, तो पावै करतार।।27।।

भावार्थ –ईश्वर और गुरु दोनों एक ही हैं, अन्तर मात्र बाह्य आकार का है, मूल रूप से दोनों एक ही हैं। दो का भाव समाप्त करके जो शिष्य ईश्वर का सुमिरण करता है वही ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। अहम् ही भक्ति में सबसे बड़ा बाधक है और अहम की उत्पत्ति भी माया के कारण होती है। जब व्यक्ति माया से दूर होकर अपने को पूर्ण रूप से ईश्वर को समर्पित कर देता है तभी वह उस निराकार में समा पाता है। प्रेम गली अति सांकरी का भी यही भाव है। गुरु उस अवस्था को प्राप्त कर चुका है जहां साधक और पेरमसत्ता का भेद समाप्त हो चुका होता है, लेकिन शिष्य को वे दो दिखाई देते हैं क्योंकि अभी उसे काफी वक्त यह समझने में लगने वाला है। इस दोहे में अनुप्रास और विरोधाभाष

टिप्पणी

अलंकार का प्रयोग हुआ है। ऐसे ही एक अन्य स्थान पर कबीर साहेब की वाणी है। 'गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काके लागू पाय' भाव है कि गुरु और गोविन्द एक ही हैं। गुरु का महत्त्व इसलिए भी है क्योंकि वही है जो गोविन्द से साक्षात्कार करवाता है। जब शिष्य गोविन्द से मिलता है। तो वह वस्तुतः 'गुरु' से ही मिल रहा होता है, क्योंकि गुरु और गोविन्द एक ही हैं, यह भेद जब समाप्त होगा, जब दो की भावना नष्ट हो जायेगी, अहम् नष्ट हो जाएगा।

कबीर सतगुर नाँ मिल्या, रही अधूरी सीप।
स्वांग जती का पहरि करि, घरि घरि माँगै भीष।।28।।

भावार्थ – बाह्य आडंबर और स्वांग के खंडन के संबंध में वाणी है कि सन्यासी का (साधू) का भेष धारण तो कर लिया लेकिन यह अधूरा ही रहा और उन्हें सतगुरु कभी प्राप्त ना हो पाया। उन्होंने वेश धारण तो कर लिया लेकिन यह एक तरह से स्वांग ही रहा क्योंकि उन्होंने मन से भक्ति को स्वीकार नहीं किया। यदि सतगुरु श्रेष्ठ है तो वह आत्मिक और मन से वैराग्य को महत्त्व देता है और स्वांग का खंडन करता है। मात्र स्वांग धरने वालों की भक्ति अधूरी ही रह जाती है।

सतगुर साँचा सूरिवाँ, तातै लोहिं लुहार।
कसणो दे कंचन किया, ताई लिया ततसार।129।।

भावार्थ –सतगुरु सच्चे शूरवीर की भाँति होते हैं। जैसे लुहार लोहे को अग्नि में गर्म करके उसे शुद्ध कर लेता है वैसे ही सच्चा गुरु शिष्य को साधना की अग्नि में तपाकर शुद्ध कर लेता है। शिष्य को साधना की कसौटी पर कसकर सोने की भाँति शुद्ध कर लिया है।

गुरु अपने ज्ञान से शिष्य को कसौटी पर कसकर निखारने के साथ ही सार तत्व को सम्प्रात कर लिया है। प्रस्तुत साखी में गुरु के द्वारा शिष्य को साधना की अग्नि में तपाकर शुद्ध (निखार) किए जाने के विषय में वर्णन प्राप्त होता है। उल्लेखनीय है कि माया के असार (अशुद्ध) तत्वों को साधना के द्वारा ही पृथक किया जाता है। विषय विकार और माया के भ्रम ही अशुद्ध तत्व हैं।

थापणि पाई थिति भई, सतगुर दीन्हीं धीर।
कबीर हीरा बरणजिया, मानसरोवर तीर।।30।।

भावार्थ –स्वयं (साधक) को शिष्य के रूप में स्थापित करने के उपरान्त साधक को सतगुरु देव ने धीरज बंधाया है। शिष्य रूप में स्थापित होने पर साधक का चंचल मन स्थिर हो गया है, सतगुरु ने साधक को धैर्य बंधाया है। मन के एकाग्र और स्थिर हो जाने के उपरान्त अब मैं (साधक) मानसरोवर में हीरा / मुक्ता चुग रहा हूँ। अब साधक उच्च दर्जे के व्यापार (भक्ति) में व्यस्त है।

स्वयं को शिष्य के रूप में स्थापित कर देने के उपरान्त साधक अब पूर्ण रूप गुरु के प्रति समर्पित हो गया है और गुरु के द्वारा बताए गए मार्ग का ही अनुसरण करने लगा है। अब उसकी चंचलता समाप्त हो गई है और मन (चित्त) एकाग्र हो गया है, बाहरी और आंतरिक भटकाव समाप्त हो गया है, यह धीरज गुरु ने ही शिष्य को दिया है। गुरु की शिक्षा के कारण साधक अब धैर्य को धारण कर पाया है।

निहचल निधि मिलाई तत, सतगुर साहस धीर।
निपजी मैं साझी घणाँ, बांटै नहीं कबीर।।31।।

भावार्थ –कबीर साहेब कहते हैं कि गुरु के मार्गदर्शन पर आत्मा का पूर्ण परमात्मा से मिलाप हो गया है। यह सतगुरु के साहस और धीरत से संभव हुआ है। अब जब परम आनंद की प्राप्ति हो गई है तो इसके कई भागीदार पैदा हो गए हैं, लेकिन कबीर साहेब इस आनंद को किसी के साथ बांटने के लिए तैयार नहीं हैं।

वस्तुत: यह आनंद ऐसा है जिसको सभी प्राप्त करना चाहते हैं लेकिन इसके लिए स्वयं की साधना की आवश्यता होती है। इस दोहे में कबीर साहब ने स्पष्ट किया है कि गुरु की शिक्षाओं पर चलकर, साधना करके परमानंद को प्राप्त किया जा सकता है लेकिन साधक स्वंय ऐसा नहीं करके दूसरों के आनंद में भागीदारी चाहते हैं। लेकिन यह एक ऐसी वस्तु है जिसे स्वंय के प्रयत्नों के उपरान्त ही प्राप्त किया जा सकता है। किसी दूसरे का इसमें कोई स्थान नहीं है। इस साखी में सतगुरु की महिमा को भी स्थापित करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि पूर्ण परम ब्रह्म रूपी परमानंद गुरु के प्रयत्नों से ही प्राप्त किया जा सकता है।

चौपड़ि माँडी चौहटै, अरध उरध बाजार।
कहै कबीरा राम जन, खेलौ संत विचार॥32॥

भावार्थ –शरीर रूपी चौराहे के ऊपर और नीचे चौपड का खेल रचा हुआ है। कबीर साहब राम भक्तों से कहते हैं कि इस चौपड़ के खेल को विशेष ध्यानपूर्वक खेलो। अरध उरध बाजार शरीर की शट चक्र हैं जिनमे मूलाधार प्रथम और सहस्त्रसार अंतिम चक्र है। जैसे चौपड़ के खेल में खिलाड़ी प्रत्येक गोटी को बड़े ही ध्यानपूर्वक चलता है वैसे ही साधक को प्रत्येक चक्र पर ध्यान केंद्रित करते हुए आगे बढ़ना चाहिए। उल्लेखनीय है कि इनशट चक्रों को भेद करके ही कुंडलिनी ब्रह्मरंध तक पहुँच सकती है।

ब्रह्मरंध्र में ही अमृत निस्सृत होता है। योग साधना में बहुत ही विचारपूर्वक आगे बढ़ना चाहिए। भक्ति मार्ग पर साधना करने के लिए विशेष ध्यान देने पर कबीर साहब ने जोर दिया है।

पासा पकड़ा प्रेम का, सारी किया सरीर।
सतगुर दावा बताइया, खेलै दास कबीर॥33॥

भावार्थ – कबीर कहते हैं कि शरीर रूपी चौपड़ पर साधक ने के मार्गदर्शन पर खेल प्रारंभ कर दिया है और गुरु उसे दाव पेंच बताते हैं। भाव है कि गुरु के मार्गदर्शन में साधक ने योग गुरु साधना शुरु कर दी है। योग साधना में गुरु के सानिध्य की ओर कबीर साहब ने ध्यान आकृष्ट करवाया है जैसे पूर्व में साहेब ने बताया है कि

चौपड़ि माँडी चौहटै, अरध उरध बाजार।
कहै कबीरा राम जन, खेलौ संत विचार।
योग साधना ने गुरु के सानिध्य में ही शिष्य खेल को खेलता है।
सतगुर हम सूँ रीझि करि, एक कह्या प्रसंग।
बरस्या बादल प्रेम का भीजि गया अब अंग॥34॥

भावार्थ – सतगुरुदेव ने साधक (शिष्य) से प्रसन्न होकर उसे उपदेश रूपी ज्ञान की बात बताई। गुरु ने प्रेम (भक्ति) रूपी ऐसी बरसात की जिसमें साधक का अंग अंग सिक्त हो गया है।

कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरष्या आइ।
अंतरि भीगी आत्माँ हरी भई बनराई॥35॥

भावार्थ –गुरु के उपदेशों से, ज्ञान से भक्ति और ज्ञान की बरसात होने लगी है। इस ज्ञान रूपी बरसात में साधक का तन मन सभी तृप्त गए हैं। गुरु की कृपा से प्रभु प्रेम रूपी बादल शिष्य हो पर आकर बरसने लगा जिससे विषय विकास में दुग्ध साधक भीग गया है और उसके हृदय रूपी वन में फिर से हरी रस रूपी बरसात से हरियाली छा गई है।

साधक की आत्मा (हृदय) असार, अशुभ और अपवित्र तत्वों से भरी पड़ी थी। प्रेम की बरसात के जल में वह अब पूर्ण रूप से शुद्ध गई है। भक्ति रूपी जल से संचित होकर उसका हो हृदय अब हरा

टिप्पणी

भरा हो गया है। साधक माया के भ्रम का शिकार होकर संसारिक विषय वासनाओं की अग्नि में दुग्ध था। भगवत प्रेम रूपी बरसात में साधक की अग्नि शांत हो गई है और भक्ति रूपी वन पुनः हरा भरा हो गया है।

पूरे सूँ परचा भया, सब दुख मेल्या दूरि।
निर्मल कीन्हीं आत्माँ ताथैं सदा हजूरि।।36।।

भावार्थ – कबीर कहते हैं कि जब पूर्ण ज्ञानी गुरु से साक्षात्कार होने के उपरान्त उन्होंने समस्त दुखों को दूर कर दिया। गुरु के सुखदाई उपदेशों के कारण आत्मा निर्मल हो जाने के उपरान्त अब गुरु सदा आत्मा में वास करते हैं।

पूर्ण/पूरे से भावपूर्ण परम ब्रह्म से भी लिया जाता है जिसके संपर्क में आने पर भव सागर के समस्त ताप और संताप स्वतः ही दूर हो जाते हैं। आत्मा निर्मल हो जाती है क्योंकि वह सभी विषय विकारों को छोड़कर परमात्मा से संलग्न हो उठती है। विशेष है कि ईश्वर को कबीर साहेब ने उपनिषदों की भाँति पूर्ण कहा है। उपनिषद में कहा गया है कि पूर्णमदः पूर्णमिदः पूर्णविपूर्ण मुदच्चते। पूर्णस्य् पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।" अर्थात् ब्रह्म पूर्ण है। कबीर साहब ने भी ईश्वर को पूर्ण परम ब्रह्म बताया है। पूर्ण परम ब्रह्म निर्गुण, निराकार, निर्विकार है। उल्लेखनीय है की कबीर साहब कहते हैं कि समस्त दुखों का कारण ईश्वर से दूरी है। जब ईश्वर के समीप साधक पहुँचने लगता है तो समस्त विकार स्वतः ही दूर होने लगते हैं।

2. सुमिरण कौ अंग

भक्ति की साधना में 'नाम स्मरण' साधना भी है। यहाँ पर कुछ साखियों का भावार्थ किया जा रहा है। यह नाम स्मरण साधना के विषय में है। सुमिरण (स्मरण) के अंग से सूक्ष्मवेद की अमृतवाणियों का सरलार्थ यहाँ प्रस्तुत है–

कबीर, सुमिरन मारग सहज का, सतगुरू दिया बताय।
श्वांस-उश्वांस जो सुमिरता, एक दिन मिल सी आय।।

भावार्थ –परमेश्वर कबीर जी ने स्वयं पृथ्वी पर प्रकट होकर कलयुग के प्रथम चरण में यह सूक्ष्मवेद (तत्वज्ञान) अपने मुख कमल से लोकोक्तियों, साखियों, दोहों तथा चौपाईयों के रूप में बोलकर सुनाया। जिस कारण से परमेश्वर कबीर को प्रसिद्ध कवि की उपाधि भी प्राप्त है।

भक्ति की साधना में नाम स्मरण करने का सही तथा सहज (आसान) मार्ग बताया है जो श्वांस-उश्वांस से किया जाता है। श्वांस जो बाहर आता है, उश्वांस जो वापिस शरीर में जाता है। ऐसे सतनाम का स्मरण करने को कहा, यही वास्तविक साधना है जिसको तत्वदरशी संत ही जानता है या स्वयं परमेश्वर जानते हैं।

कबीर, माला श्वांस-उश्वांस की, फेरैंगे निजदास।
चौरासी भरमै नहीं, कटै कर्म की फाँस।।

भावार्थ –सत्यनाम के स्मरण को श्वांस-उश्वांस रूपी माला अर्थात् यथार्थ भक्ति साधना कोई खास भक्त ही फेरेगा। भावार्थ है कि पूर्ण संत सत्य साधना बताता है। पूर्ण संत किसी भाग्यवान को ही मिलता है। वह विशेष किस्मत वाला ही उस श्वांस-उश्वांस से स्मरण को प्राप्त करके नाम जाप करता है जिससे उस साधक के पाप कर्मों का नाश होकर कर्म बंधन रूपी जाल नष्ट हो जाता है। जिस कारण से वह साधक फिर से जन्म-मरण के चक्र से निकल जाता है, चौरासी (84) लाख प्रकार के जीवों के शरीरों में नहीं भटकता।

कबीर, सुमिरन सार है, और सकल जंजाल।
आदि अन्त मध्य सोधिया, दूजा देख्या ख्याल।।

भावार्थ – परमेश्वर कबीर जी ने बताया है कि भक्ति के लिए की जाने वाली साधनाओं में नाम का स्मरण सार है अर्थात् निष्कर्ष है। भावार्थ है कि जैसे कई साधक केवल सद्ग्रन्थों का पठन-पाठन अधिक करते हैं जो ज्ञान यज्ञ है। कुछ धार्मिक भण्डारे-भोजन कराने को महत्व देते हैं। कई धर्मशाला, पयाऊ आदि के निर्माण में अधिक समय देते हैं। कई हवन करने में अधिक समय लगाते हैं। परंतु इन सर्व साधनाओं में सबसे अधिक समय नाम स्मरण में लगाना चाहिए। नाम स्मरण न करके अन्य क्रियाओं को करना तो जंजाल बताया है अर्थात् व्यर्थ बताया है। आदि से तथा वर्तमान के अंत तक सब शोध करके देख लिया, नाम का स्मरण करना ही लाभदायक है। (यही प्रमाण यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 15 में भी है, कहा है कि–

वायु अनिलम् अथ इदम् अमृतम् भस्मान्तम् शरीरम्।
ओम् कृतो स्मर, किलबे स्मर, कृतुम् स्मर।।

भावार्थ –(वायु) हवा अर्थात् श्वांस (अनिलम्) अग्नि अर्थात् गर्म (अथ) प्रारंभ कर (इदम्) इस प्रकार स्मरण से (भस्मान्तम् शरीरम्) देहान्त के बाद जो (अमृतम्) अमरत्व मिलेगा, उसके लिए (ओम्) नाम का (कृतो) कार्य करते-करते (स्मर) स्मरण कर (किलबे स्मर) विशेष कसक के साथ स्मरण कर (कृतुम् स्मर) मानव जीवन का मूल कर्तव्य जानकर स्मरण कर।

अर्थात् गर्म श्वांस से आरंभ कर अर्थात् जो श्वांस बाहर छोड़ा जाता है, वह गर्म है। जो सतनाम है, उसमें दो अक्षर है। एक (ओम्) और दूसरा तत् - यह गुप्त मंत्र है, उपदेश लेने वाले को दीक्षा के समय बताया जाता है। इनमें से एक अक्षर अर्थात् नाम बाहर छोड़ते समय श्वांस के द्वारा जपा जाता है। दूसरा श्वांस अंदर लेते समय उश्वांस द्वारा जपा जाता है। सिद्ध हुआ कि अपने सद्ग्रन्थ नाम स्मरण को अधिक महत्व देते हैं।

कबीर, जिन मुख आत्म राम है, दूजा दुःख अपार।
मनसा वाचा कर्मना, कबीर सुमिरन सार।।

भावार्थ –कबीर ने बताया है कि आत्मा को वास्तविक सुख परमात्मा से मिलता है। इसके अतिरिक्त सर्व असीमित दुख है। जैसे मानव जीवन में पूर्व जन्मों के पुण्य कर्मों से यहाँ पर कितना बड़ा पद प्राप्त है, चाहे राजा भी बना है, यदि नाम जाप अर्थात् भक्ति नहीं की तो 84 लाख प्रकार के प्राणियों के शरीरों में कष्ट उठाना पड़ेगा जो अपार दुःख है जिसका कोई अन्त नहीं है। अन्त नाम स्मरण से ही होगा, वह मानव जीवन में ही संभव है। इसलिए परमेश्वर कबीर जी ने अति दृढ़ता के साथ कहा है कि मैं मन-कर्म-वचन से कह रहा हूँ कि नाम का स्मरण मोक्ष के लिए मूल रूप है।

दुख में सुमिरन सब करैं, सुख में करे ना कोय।
जो सुख में सुमिरन करें, तो दुख काहे को होय।।

भावार्थ – आपत्ति आने पर तो सब परमात्मा को याद करते हैं, परंतु सुख के समय में याद नहीं करते। यदि सुख में परमात्मा का नाम स्मरण करते तो दुख नहीं होता।

कबीर, सुख में सुमिरन किया नहीं, दुख में किया याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद।।

भावार्थ –परमेश्वर कबीर जी ने कहा है कि जिस समय जीवन सुखी था, उस समय तो परमात्मा का नाम स्मरण किया नहीं, जिस समय पाप कम्मों के भोगने का दौर प्रारंभ हुआ, दुख आया, तब लगे

टिप्पणी

परमात्मा को याद करने। उस समय उस स्वार्थी की प्रार्थना परमात्मा कैसे सुनेगा अर्थात् फिर तो कष्ट भोगने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होगा।

विशेष – यहाँ पर यह स्पष्ट करना अनिवार्य समझता हूँ कि उपरोक्त वाणी संख्या 6 का अर्थ ऊपर किया, ठीक है। यह उनके लिए है जिनको दुख के समय परमात्मा की खोज में जाने के पश्चात् भी पूर्ण संत नहीं मिलता, नकली गुरुओं या जंत्र-मंत्र करने वाले तांत्रिकों की भेंट चढ़ जाते हैं। यदि दुख समय में भटकते व्यक्ति को पूर्ण संत मिल जाता है तो उसका संकट निवार्ण हो जाता है, दुख दूर हो जाता है। परमेश्वर कबीर जी ने कहा है–

कबीर, सतगुरू शरण में आने से, आई टलै बला।
जै भाग्य में शूली हो, कॉटे में टल जाय॥
कबीर, सांई यूंही मत जानियो, प्रीत घटे मम चित।
मरू तो सुमिरत मरूं, जीवित सिमरूं नित्य॥

भावार्थ –परमेश्वर कबीर जी भक्तों को समझाना चाहते हैं कि नामदान होने के पश्चात् परमेश्वर को सामान्य भाव से मत याद करना क्योंकि नाम को प्राप्त करके कुछ व्यक्ति यह समझत हैं कि यह कैसा नाम, कभी सुना ही नहीं। या फिर कई यह भावना बनाते हैं कि इतनी साधना कैसे बनेगी 108 मंत्र जाप करना संभव नहीं। इस प्रकार से भगवान को जानने से श्रद्धा कम हो जाती है। परमेश्वर कबीर जी ने श्रद्धा की दृष्टि से कहा है कि आप तो एक माला 108 नाम की जाप करने में कठिनाई मानते हो, में तो परमात्मा के नाम का स्मरण करते-करते प्राण त्यागने का वरदान माँगता हूं और जब तक जीवन है, तब तक परमेश्वर को नित्य अर्थात् सदा क्षण-क्षण स्मरण करूँ, ऐसा आशीर्वाद गुरुदेव दें, मैं मेरी मृत्यु हो तब भी मरते-मरते नाम को याद करता हुआ प्राण त्यागूँ और जीवन प्रयन्त कभी स्मरण न भूलूं।

कबीर, जप तप संयम साधना, सब सुमिरन के मांही।
कबीर, जानै राम जन, सुमिरन बिन कुछ नाहीं॥

भावार्थ –परमेश्वर कबीर जी ने कहा है कि हे भक्त! जो तुम अन्य मनमाने नामों का जप करते हो तथा हठयोग करके तप करते हो और अपनी इन्द्रियों पर संयम करने के लिए अनेकों क्रियाएँ करते हो, उसकी बजाय आप सतनाम का स्मरण करो, ये सर्व साधना अपने आप सिद्ध हो जाएँगी, इस रहस्य को रामजन अर्थात् पूर्ण संत का शिष्य जानता है कि सत्य साधना सतनाम से होती है, इसके बिना अन्य क्रियाएँ व्यर्थ हैं। जैसे कोई विष्णु संहस्रनामा का जाप करता है, कोई गायत्री मंत्र का (जो यजुर्वेद के अध्याय 36 का मंत्र 3 है, उससे पहले ओम् - अक्षर जोड़कर गायत्री मंत्र का बनाया है, उसका) जाप करते हैं। इन्द्रियों पर संयम करने के लिए श्रंगी ऋषि वन में चला गया। अभ्यास करके इतना संयम कर लिया कि दिन में एक बार वृक्ष की छाल को चाटने मात्र से भूख-प्यास शांत हो जाती थी। राजा दशरथ की लड़की ने वृक्ष के उस स्थान पर शहद लगा दिया जहाँ श्रृंगी ऋषि जीभ से चाटता था। तीसरे दिन श्रंगी ऋषि ने खीर खानी प्रारंभ कर दी, अंत में उस लड़की से विवाह करके ग्रहस्थ बन गया। सैंकड़ों वर्ष संयम बनाने के लिए साधना की, भक्ति की नहीं, अंत में पहले जैसे ही हो गए। इसलिए परमेश्वर कबीर जी से प्राप्त तत्वज्ञान में संत गरीबदास जी ने कहा है–

इन्द्री कर्म ना लगे लगारम, जो भजन करै निर्दुन्द रे।
गरीबदास, जग कीर्ति होगी, जब लग सूरज चंद रे॥

भावार्थ – यदि परमात्मा के नाम स्मरण में लीन रहे तो इन्द्रियों के विषय विकारों का चिंतन करने का समय ही नहीं मिलेगा। सत्यनाम की साधना से इन्द्री कर्म साधक में लिप्त नहीं होते। परमात्मा के लगातार नाम स्मरण करने से साधक का यश भी पृथ्वी पर बना रहता है। जैसे पुर्व के महान भक्त

ध्रूव, प्रहलाद, मीरा बाई, भीलनी, धन्ना भक्त, संत रविदास जी, परमेश्वर कबीर जी. सत नामदेव जी. संत गरीबदास जी आदि - महान भक्तों के नाम भक्त समाज में रोशन की तरह रोशन हैं।

कबीर, जिन हर जैसा सुमरिया, ताको तैसा लाभ।
ओसां प्यास न भागही, जब तक धसै नहीं आब॥

भावार्थ –जो भक्त जैसी श्रद्धा से तथा अधिकता तथा न्यूनता से भक्ति करता है, उसको उतना ही साधना का लाभ होता है। परमेश्वर कबीर जी ने सटीक उदाहरण दिया है कि जैसे ओम जल जो घास पर रात्रि के समय जमा होता है, यदि कोई उस ओस के जल को जीभ से चाटकर प्यास शांत करना चाहे तो संभव नहीं। प्यास शांत करने के लिए आब अर्थात् पानी में धंसना पडेगा अर्थात् प्यास शांत करने के लिए गिलास के गिलास जल पीना पड़ेगा। धँसना का अर्थ है किसी तरल पदार्थ में खड़ा होना, उदाहरण के लिए जब कोई दलदल गारा में प्रवेश कर जाता है तो कीचड़ उसके पैरों से चिपट जाती है उसको कहते हैं गारा में धँस गया। दूसरा उदाहरण यह जानें जैसे कोई लालची अधिक है तो उसका व्यवहार देखकर अन्य व्यक्ति कहते हैं कि यह तो लालच में धँसा है। इसी प्रकार ओस जल प्यास शांत करने के लिए पर्याप्त नहीं होता, प्यास शांत करने के लिए अधिक जल पीना पड़ता है। इसी प्रकार आत्मा की भक्ति वाली प्यास शांत करने के लिए अधिक स्मरण, दान-धर्म करना पड़ेगा। जैसे हम तत्वज्ञान न होने के कारण रूई की पतली - सी ज्योति घी में गीली करके जलाते थे। वह शीघ्र ही शांत हो जाती थी तथा मंगलवार को सवा रूपये या सवा दो रूपये की बून्दी प्रसाद बाँटकर अपने आपको धन्य मानते थे वह हम ओस चाट रहे थे। अब हम सुबह शाम ज्योति (दीप) देशी घी में जलाते हैं, लगभग 100 ग्राम घी प्रतिदिन हवन करते हैं, पाठ करते हैं, हजारों रूपये वर्ष में धर्म पर लगाते हैं, यह हम आब में धँस रहे हैं अर्थात् गट-गट पानी के गिलास पी रहे हैं।

कबीर, सुमिरन की सुध यूँ करो, जैसे दाम कंगाल।
कह कबीर विसरै नहीं, पल-पल लेत संभाल॥

भावार्थ –कबीर जी ने कहा है कि परमात्मा के नाम के स्मरण की सुध अर्थात् संभाल ऐसे करनी चाहिए जैसे किसी निर्धन ने कुछ रूपये उधार लिए। वे कुछ दिन बाद आने वाले किसी धनी का कर्ज देना था। निर्धन व्यक्ति उन रूपयों को दिन में तथा रात्रि में कई-कई बार संभालता है, देखता है सुरक्षित है, पूरे हैं कि नहीं, कहीं कोई चोर तो नहीं चुरा ले गया। इस प्रकार की चिंता उसको सताती रहती है और निर्धन व्यक्ति अपने दामों (रूपयों) की देखरेख करता है। वह चिंतित रहता है कि यदि रूपये (दाम) चोरी हो गये तो मेरा तो दिवाला ही निकल जाएगा। इसी प्रकार एक साधन को अपने नाम स्मरण रूपी धन की संभाल करनी चाहिए अर्थात् रह-रहकर स्मरण में लगन लगानी चाहिए, स्मरण करना चाहिए, भूल लगे तो फिर तुरंत स्मरण कर ध्यान केंन्द्रित करना चाहिए।

कबीर, सुमिरन स्यों मन लाईये, जेसे पानी मीन।
प्राण तजै पल बिछुडैं, सार कबीर कह दीन्ह॥

भावार्थ –स्मरण से मन को ऐसे लगाकर रखें जैसे मछली पानी से लगाती है। यदि मछली एक पल भी जल से बाहर निकाल दी जाए तो तड़फ-तड़फकर मर जाती है। परमेश्वर कबीर जी ने कहा है कि यह सार अर्थात् निचोड़ कह दिया है। भावार्थ है कि जैसे मछली जल के अभाव में प्राण त्याग देती है, उसके बिना मरना उचित समझती है। साधक को वह दिन तथा समय जिस दिन किसी कारण से स्मरण न कर सका हो, ऐसा लगना चाहिए जैसे सब कुछ लुट गया हो।

और तुरंत स्मरण में लगकर क्षतिपूर्ति करनी चाहिए।
कबीर, सत्यनाम सुमरले, प्राण जाहिंगे छूट।

टिप्पणी

घर के प्यार आदमी, चलते लेंगे लूट॥

भावार्थ –परमेश्वर कबीर जी ने मानव को सतर्क किया है, कहा है कि हे मानव! परमात्मा के सत्यनाम (वास्तविक नाम मंत्र) का स्मरण करले, न जाने कब जीवन का अंत हो जाएगा। मृत्यु के उपरांत जो आपके प्यारे व्यक्ति (पुत्र, पत्नी या पति, बेटी, भाई) आपकी जेब की तलाशी लेकर सब रूपया निकाल लेंगे तथा गले या नाक-कान में पहने हुए स्वर्ण के आभूषण निकाल लेंगे और वस्त्र भी उतार लेंगे, बिल्कुल नंगा करके एक कपड़े के टुकड़े (कफन) से ढककर शमशान घाट पर ले जाकर स्वाह कर देंगे। भावार्थ है कि अज्ञानता के कारण आप परमात्मा का स्मरण न करके परिवार के मोह में पड़कर सारा समय व्यर्थ कर रहे हो। मृत्यु के पश्चात् पता चलेगा कि कौन प्यारा है और कौन-सा धन तुम्हारा है। आपके साथ आपका सत्यनाम के स्मरण का धन चलेगा, दान-धर्म किया, वह तेरे साथ चलेगा। इसलिए हे मानव! सत्यनाम का स्मरण कर, तेरा कल्याण हो जाएगा।

कबीर, लूट सकै तो लूट ले, राम नाम की लूट।
फिर पीछै पछताएगा, प्राण जांहिंगे छूट॥

भावार्थ – हे मानव! तू भौतिक धन को संग्रह करने के लिए बेसब्रा होकर जनता को लूट रहा है। कोई रिश्वत लेकर, कोई चोरी करके, कोई मिलावट तथा हेराफेरी करके धन लूटने में लगा है, यह साथ चलना नहीं। जब मृत्यु होगी और परमात्मा से रूबरू होने का समय आएगा, तब तुझे याद आएगा कि मुझे मानव शरीर तो भक्ति करने के लिए मिला था, वह तो किया नहीं। जो सारे जीवन में भौतिक धन जोड़ा, वह सब यही रह गया। अब घर का रहा न घाट का। तब तुझे पाश्चाताप होगा। इसलिए कुछ समय धंधे (सांसारिक कार्य) से निकालकर राम के नाम की लूट कर ले, यह वास्तविक लूट है, यदि लूट सकता है तो भक्ति लूट ले।

कबीर, सोया तो निष्फल या, जागो सो फल लेय।
साहब हक ना राखसी, जब माँगे तब देय॥

भावार्थ –जो व्यक्ति मोह तथा अज्ञान रूपी निन्द्रा में सोये हैं अर्थात् भक्ति नहीं करते, उनका जीवन व्यर्थ गया और जो सन्तों के विचार सुनकर मोह तथा अज्ञान निन्द्रा से जाग गए, वे भक्ति का फल प्राप्त करते हैं। परमात्मा किसी के किए कर्म का हक अर्थात् हिस्सा नहीं रखते, जब माँगोगे, उसी समय आपको वह भक्ति धन प्रदान कर देंगे। आपको आपत्ति से बचा लेंगे।

कबीर, चिंता तो हरि नाम की, और न चिन्ता दास।
जो कुछ चितवै नाम बिना, सोई काल की फाँस॥

भावार्थ – हे दास अर्थात् मेरे (कबीर जी के) भक्त! यदि चिन्ता करे तो नाम स्मरण की करना। यदि नाम स्मरण के अतिरिक्त जो भी चिन्ता उत्पन्न होती है, वह काल पुरुष की फॉस अर्थात् बन्धन है। अन्य चिन्ता स्मरण से दूर होती है। नाम स्मरण की चिन्ता है, वह वास्तविक चिन्ता है, यह करनी चाहिए अर्थात् भक्ति कम होने की चिन्ता होती है तो स्मरण में लगन लगेगी और मोक्ष प्राप्त होगा। यह चिन्ता करने योग्य है, अन्य तो बिना किए ही हो जाती है।

कबीर, जब ही सत्यनाम हृदय धर्यो, भयो पाप को नाश।
मानो चिंगारी अग्नि की, पड़ी पुराणे घास॥

भावार्थ –कबीर परमेश्वर जी ने कहा है कि जिस समय साधक को सत्यनाम अर्थात् वास्तविक नाम मंत्र मिल जाता है और साधक हृदय से सत्यनाम का स्मरण करता है तो उसके पाप ऐसे नष्ट हो जाते हैं जैसे हजारों टन सूखा पुराने घास में अग्नि की एक छोटी-सी चिंगारी लगा देने से वह जलकर भस्म

हो जाता है। उसी प्रकार सत्यनाम के स्मरण से साधक का पाप नाश हो जाता है जो दुखों का मूल है। पाप नाश हुआ तो साधक सुखी हो जाता है।

कबीर, राम नाम को सुमरतां, अधम तरे अपार।
अजामेल गणिका स्वपच, सदना सबरी नारी॥

भावार्थ – राम नाम अर्थात् परमात्मा के सत्यनाम का स्मरण करने से बहुत से अधम (नीच कर्मी प्राणी) भी भव सागर से पार हो गए। उदाहरण दिया है कि अजामेल नामक शराबी-कबाबी दुराचारी व्यक्ति सन्तों की शरण में आकर सुधरकर भक्ति करके अपना कल्याण करा गया। इसी प्रकार गणिका (वैश्या) को ज्ञान हुआ, वह भी सुधर गई और सत्यनाम का स्मरण करके पार हो गई। एक सदना कसाई था, सुधरकर नाम स्मरण करके पार हुआ। इसी प्रकार भीलनी जाति की शबरी नारी भी शुद्र होते हुए भी सत्यनाम का स्मरण करके अपना कल्याण करा गई। इस प्रकार सत्यनाम का स्मरण करके अनेकों बुरे व्यक्ति भी सुधरकर पार हो गए तो अन्य व्यक्ति भी सत्यनाम का स्मरण करके अपना कल्याण आसानी से करा सकते हैं।

कबीर, स्वपन में बर्राय के, जो कोई कहे राम।
वाके पग की पांवड़ी, मेरे तन को चाम॥

भावार्थ –परमेश्वर कबीर जी ने भक्ति करने वाले मानव को कितना महान बताया है तथा उसका कितना सम्मान किया है, कहा कि यदि कोई मानव स्वपन में बरड़ाय कर भी परमात्मा के नाम का जाप कर देता है, वह मुझे इतना प्रिय है कि उसके पाँव की जूती अपने शरीर के चाम से बनवा दँ। कई व्यक्ति सोते समय स्वपन देखते हैं तो उस समय दृश्य को सोते-सोते बोलते हैं जो अस्पष्ट भाषा होती है, उसको बरड़ाना कहते हैं कि अमूक व्यक्ति सोते समय बरड़ाता है। स्वप्न में वही दृश्य दिखाई देते हैं, उसको बरड़ाना कहते हैं कि अमूक व्यक्ति सोते समय बरड़ाता है। स्वप्न में वही दृश्य दिखाई देते हैं जो दिन में देखे होते हैं। ऐसे ही एक किसान बाजरे की फसल की पक्षियों से रखवाली करता था। वह दिनभर कहता रहता था, हर चिड़िया........। कई बार सोते समय भी इसी प्रकार ऊँची आवाज में बोलता था। कारण यह है कि दिनभर किया अभ्यास ही स्वप्न बनकर रात्रि में दिखता है। इसी प्रकार स्वप्न में वही भक्त राम नाम का उच्चारण करेगा जो दिनभर परमात्मा का नाम जाप करता है। वह भक्त परमात्मा का प्रिय होता ही है। इसलिए परमेश्वर कबीर जी ने हम साधकों को संकेत दिया है कि भक्ति निर्धुंध करो अर्थात् भक्ति का तूफान उठा दो, अधिक से अधिक भक्ति करो। उस भक्त के लिए मैं (परमेश्वर) अनहोनी कर दूँगा।

कबीर, नाम जपत कन्या भली, साकट भला न पूत।
छेरी के गल गलथना, जिसमें दूध न मूत॥

भावार्थ – परमात्मा की भक्ति करने वाली बेटी अच्छी है साकट पुत्र से। साकट उसको कहते हैं जो स्वयं भक्ति नहीं करता तथा अन्य को भी बाधा उत्पन्न करता है। भक्ति करने वाली कन्या के जीवन में आने वाली कर्म की आपत्ति को परमात्मा दूर करेगा। बेटी जो भक्ति करती है. वह सदा सुखी रहेगी। माता-पिता भी अपनी बेटी को सुखी देखकर खुश रहते हैं। जो लड़का भक्ति नहीं करता तो वह कोई ऐसा कार्य करेगा जिसके कारण वह स्वयं तो जेल में जाएगा तथा पिता भी उसके दुख में दुखी रहेगा। माताजी भी उस नालायक के दुख से अत्यधिक दुखी रहती है। इसलिए परमात्मा ने उस साकट पुत्र को बकरी के गले में गलथना की उपमा दी है जो न तो पेशाब करने के काम आता और न उससे दूध ही निकलता, व्यर्थ में ही गले में भार बना होता है। वह साकट पुत्र माता-पिता के गले का गलथना सिद्ध होता है।

टिप्पणी

कबीर, सब जग निर्धना, धनवंता ना कोय।
धनवंता सो जानिये, जा पै राम नाम धन होय॥

भावार्थ – परमेश्वर कबीर जी ने कहा है कि जो व्यक्ति संसार में अधिक धन संपत्ति के स्वामी हैं, सामान्यत: जनता उनको धनवान कहती है। कबीर जी ने बताया है कि उस धनवान व्यक्ति की मृत्यु हो गई, सारा धन यहीं छोड़ गया। जब धन यहीं रह गया तो वह संसार से निर्धन बनकर गया। जो भक्त भक्ति करता है, वह राम नाम की कमाई करके राम नाम का धन संग्रहित करता है। भक्त को यहाँ पर भी परमात्मा धन देता है, मृत्यु के उपरांत भक्ति धन उसके साथ जाता है। धनवंता हे साहूकार तो वह है जिसके पास राम नाम की भक्ति का धन है। उदाहरण वह "काशी शहर में भोजन भण्डारा करना।" परमेश्वर कबीर जी ने स्वयं एक भक्त का अभिनय करके उपरोक्त अमृतवाणी की सत्यता दृढ़ की है।

सर्व विदित है कि काशी शहर में रहने वाला कबीर जुलाहा एक झोंपड़ी मे रहता था। कुल पाँच सदस्यों का परिवार था। दो मुँह बोले माता-पिता (नीमा तथा नीरू) जिनको परमेश्वर कबीर जी काशी शहर के बाहर लहरतारा नामक तालाब में कमल के फूल पर नवजात शिशु के रूप में मिले थे। एक लड़की मृत्यु के उपरांत उसके परिवार ने कब्र में दफना रखी थी। लड़की का पिता शेखतकी पीर था जो दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोधी का धार्मिक गुरु भी था। राजा सिकंदर का असाध्य रोग परमेश्वर कबीर जी के आशीर्वाद से ठीक हो गया था। जिस कारण से सिकंदर लोधी कबीर जी को अल्लाह की जात कहता था। जो उस धार्मिक पीर शेखतकी को गवारा नहीं था। वह कबीर जी से ईर्ष्या रखता था। कबीर जी को नीचा दिखाकर राजा की नजरों में अपनी महिमा रखना चाहता था। वह कबीर जी को अल्लाह तो छोड़, वह संत भी मानने को तैयार नहीं शर्त रखी कि यदि कबीर जी किसी मुर्दे को जीवित कर दे तो मैं इन्हें अल्लाह (भगवान) मान लूँगा।

एक 12 वर्षीय लड़के का शव गंगा मे बहता जा रहा था। शेखतकी ने राजा सिकंदर से कहा कि यदि कबीर जी इस मुर्दे बालक को जीवित कर दें तो मैं इन्हें अल्लाह मान लूँगा और इनका मुरीद (शिष्य) बन जाऊँगा। हजारों व्यक्तियों की उपस्थिति में परमेश्वर कबीर जी ने उस 12 वर्षीय लड़के को तत्काल जीवित कर दिया। दर्शकों ने कहा-कमाल कर दिया। बालक का नाम कमाल रख दिया और अपने पुत्र के रूप में कबीर जी ने रखा। शेखतकी ने कहा यह बालक सदमे में था, मृत नहीं था। एक दिन से अचेत था, ऐसा तो इत्तफाक (संयोग) से होना था, नाम कबीर का हो गया। मैं तो तब मानूं जब मेरी लड़की को जीवित करे जो 20 दिन से कब्र में है। परमेश्वर कबीर जी ने कहा कि आज से तीसरे दिन तेरी लड़की को जीवित कर दूँगा। ऐसा कर, दिल्ली शहर तथा आसपास में मुनादी (ंकअमतजपेमउमदज) करा दे, सब देखने आएँ। ऐसा ही किया गया। लड़की की कब्र खोद दी गई। परमेश्वर कबीर जी ने उस लड़की को तुरंत जीवित कर दिया। सर्व दर्शकों कहा-कमाल कर दिया। लड़की का नाम कमाली रखा। लाखों दर्शकों ने परमेश्वर कबीर जी से दीक्षा ली, परंतु भाग्यहीन शेखतकी फिर भी नहीं समझा। उसकी ईर्ष्या बढ़ती ही चली गई। उस लड़की ने अपने पिता शेखतकी के साथ जाने से मना कर दिया और घण्टे तक उपस्थित जनता को प्रवचन कर बताया कि ये स्वयं अल्लाह अकबर कबीर जी हैं, ये सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। आपने भी देख लिया है मेरे को जीवन दान दिया है। मेरे मानव जीवन का संस्कार शेष नहीं था। मुझे अपना वास्तविक पिता मिल गया है। मैं कबीर अल्लाह के साथ जाऊँगी। कबीर जी ने उस कमाली लड़की को अपनी बेटी के रूप में रखा। इस प्रकार परमेश्वर कबीर जी का परिवार पाँच सदस्यों का था। परमेश्वर कबीर जी जुलाहे का कार्य करते थे जो धन कमाने की दृष्टि से नहीं था। परमेश्वर ;;. कबीर जी तो लीला करके हमें सच्चे भक्त की भूमिका करके उदाहरण देना चाहते थे, उसी उद्देश्य से यह कार्य चुना था। कपड़ा बुनने से जो

टिप्पणी

कमाई (पदबवउम) होती थी, उससे कठिनता से निर्वाह चलता था। परमात्मा कबीर जी सत्यज्ञान अर्थात् तत्वज्ञान का प्रचार भी करते थे। हिन्दू धर्म के गुरुजन ब्राह्ममणों की अज्ञानता उजागर करते थे। जिस कारण से सर्व पंडित कबीर जी के विरोधी हो गए थे। दूसरी ओर मुसलमान धर्म के मुल्ला-काजी भी कबीर जी के यथार्थ ज्ञान से बौखला गए थे।

शेखतकी सब मुसलमानों का मुखिया अर्थात् मुख्य पीर था जो पहले से ही खार खाए था अर्थात् पहले से ही ईर्ष्या करता था। सर्व ब्राह्मणों तथा मुल्ला-काजियों व शेखतकी ने मजलिस (मीटिंग) करकेशड़यंत्र के तहत योजना बनाई कि कबीर निर्धन व्यक्ति है। इसके नाम से पत्र भेज दो कि कबीर जी काशी मे बहुत बड़े सेठ हैं। उनका पूरा पता है कबीर पुत्र नूरअली अंसारी, जुलाहों वाली कॉलोनी, काशी शहर। कबीर जी तीन दिन का धर्म भोजन-भण्डारा करेंगे। सर्व साधु संत आमंत्रित हैं। प्रतिदिन प्रत्येक भोजन करने वाले को एक दोहर (जो उस समय का सबसे कीमती कम्बल के स्थान पर माना जाता था), एक मोहर (10 ग्राम स्वर्ण से बनी गोलाकार की मोहर) दक्षिणा देंगे। प्रतिदिन जो जितनी बार भी भोजन करेगा, कबीर उसको उतनी बार ही दोहर तथा मोहर दान करेगा। भोजन में लड्डू, जलेबी, हलवा, खीर, दही बड़े, माल पूड़े, रसगुल्ले आदि। सब मिष्ठान खाने को मिलेंगे। सुखा सीधा (आटा, चावल, दाल आदि सूखे जो बिना पकाए हुए, घी-बूरा) भी दिया जाएगा। एक पत्र शेखतकी ने अपने नाम तथा दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोधी के नाम भी भिजवाया। निश्चित दिन से पहले वाली रात्रि को ही साधु-संत भक्त एकत्रित होने लगे। हा दिन भण्डारा होना था। परमेश्वर कबीर जी को संत रविदास-जी ने बताया कि आपके नाम के लगभग 18 लाख साधु-संत व भक्त काशी शहर में आए हैं। भण्डारा खाने के लिए आमंत्रित हैं। कबीर जी अब तो अपने को काशी त्यागकर कहीं और जाना पड़ेगा। कबीर जी तो जानीजान थे। फिर भी अभिनय कर रहे थे, बोले रविदास जी झोपड़ी के अंदर बैठ जा, सांकल लगा ले। अपने आप चले जाएँगे झख मारकर।

हम बाहर निकलेंगे ही नहीं। परमेश्वर कबीर जी अन्य वेश में अपनी राजधानी सत्यलोक में पहुँचे। वहाँ से नौ लाख बैलों के ऊपर गधों जैसा बौरा (थैला) रखकर उनमें पका-पकाया सर्व सामान भरकर तथा सूखा सामान (चावल, आटा, खाण्ड, बूरा, दाल, घी आदि) भरकर पृथ्वी पर उतरे। सत्यलोक से ही सेवादार आए। परमेश्वर कबीर जी ने स्वयं बनजारे का रूप बनाया और अपना नाम केशव बताया। दिल्ली के सिकंदर बादशाह तथा उसका धार्मिक पीर शेखतकी भी आया। काशी में भोजन-भण्डारा चल रहा था। सबको प्रत्येक भोजन के पश्चात् एक दोहर तथा एक मोहर (10 ग्राम सोना) दक्षिणा दी जा रही थी। कई बेईमान संत तो दिन में चार-चार बार भोजन करके चारों बार दोहर तथ मोहर ले रहे थे। कुछ सूखा सीधा (चावल, खाण्ड, घी, दाल, आटा) भी ले रहे थे। यह सब देखकर शेखतकी ने तो रोने जैसी शक्ल बना ली और जाँच करने लगा। सिकंदर लोधी राजा के साथ उस टैंट में गया जिसमें केशव नाम से स्वयं कबीर जी वेश बदलकर बनजारे (उस समय के व्यापारियों को बनजारे कहते थे) के रूप में बैठे थे। सिकंदर लोधी राजा ने पूछा आप कौन हैं, क्या नाम है आपका कबीर जी से क्या संबंध है। केशव रूप में बैठे परमात्मा जी ने कहा कि मेरा नाम केशव है, मैं बनजारा हूँ। कबीर जी मेरे पगड़ी बदल मित्र हैं। मेरे पास उनका चत्र गया था कि एक छोटा-श्सा भण्डारा (भोजन कराने का आयोजन) करना है, कुछ सामान लेते आइएगा। उनके आदेश का पालन करते हुए सेवक हाजिर है। भण्डारा चल रहा है। शेखतकी तो पकड़कर जमीन पर बैठ गया जब यह सुना कि एक छोटा-सा भण्डारा करना है जहाँ पर 18 लाख व्यक्ति भोजन करने आए हैं। प्रत्येक को दोहर तथा मोहर और आटा, दाल, चावल, घी, खांड भी दिए जा रहे हैं। इसको छोटा-सा भण्डारा कह रहे हैं। परंतु ईर्ष्या की अग्नि में जलता गृह में चला गया जहाँ पर राजा ठहरा हुआ था। सिकंदर लोधी ने केशव से

टिप्पणी

क्यों नहीं आए। केशव ने उत्तर दिया कि उनका गुलाम जो बैठा है, उनको तकलीफ उठाने की क्या आवश्यकता जब इच्छा होगी, आ जाएँगे। यह भण्डारा तो तीन दिन चलना है। सिंकदर लोधी हाथी पर बैठकर अंगरक्षको के साथ कबीर जी की झोंपड़ी पर गए। वहाँ से उनको तथा रविदास जी को साथ लेकर भण्डारा स्थल पर आए। सबसे कबीर सेठ का परिचय कराया तथा केशव रूप में स्वयं डबल रोल करके उपस्थित संतों-भक्तों का प्रश्न-उत्तर करके सत्संग सुनाया, जो 24 घंटे तक चला। कई लाख सन्तों ने अपनी गलत भक्ति त्यागकर कबीर जी दे दीक्षा ली, अपना कल्याण कराया। भण्डारे के समापन के बाद जब बचा हुआ सब सामान तथा टैंट बैलरों पर लादकर चलने लगे, उस समय सिकंदर लोधी राजा तथा शेखतकी, केशव तथा कबीर जी एक स्थान पर खड़े थे, सब बैल तथा साथ लाए सेवक जो बनजारों की वेशभूषा में थे, गंगा पार करके चले गए। कुछ ही देर के बाद सिकंदर लोधी राजा ने केशव से कहा आप जाइये आपके बैल तथा साथी जा रहे हैं।

जिस ओर बैल तथा बनजारे गए थे, उधर राजा ने देखा तो कोई भी नहीं था। आश्चर्यचकित होकर राजा ने पूछा कबीरजी! वे बैल तथा बनजारे इतनी शीघ्र कहाँ चले गए। उसी समय देखते-देखते केशव भी परमेश्वर कबीर जी के शरीर में समा गए। अकेले कबीर जी खड़े थे। सब माजरा (रहस्य) समझकर सिकंदर लोधी राजा ने कहा कि कबीर जी! यह सब लीला आपकी ही थी आप स्वयं परमात्मा हो। शेखतकी के तो तन-मन में ईर्ष्या की आग लग गई, कहने लगा ऐसे-ऐसे भण्डारे हम सौ कर दें, यह क्या भण्डारा किया है महौछा किया है। महौछा उस अनुष्ठान को कहते हैं जो किसी गुरु द्वारा किसी वृद्ध की गति करने के लिए थोपा जाता हैं उसके लिए सब घटिया सामान लगाया जाता है। जग जौनार करना उस अनुष्ठान को कहते हैं जो विशेष खुश के अवसर पर किया जाता है, जिसमें अनुष्ठान करने वाला दिल खोलकर रूपये लगाता है। संत गरीबदास जी ने कहा है कि वह–

गरीब, कोई कह जग जौनार करी है, कोई कहे महौछा।
बड़े बड़ाई किया रें, गाली काढ औछा।।

भावार्थ – वह कबीर जी ने भक्तों को उदाहरण दिया है कि यदि आप मेरी तरह सच्चे मन से भक्ति करोगे तथा ईमानदारी से निर्वाह करोगे तो परमात्मा आपकी ऐसे ही सहायता करता है। भक्त ही वास्तव में सेठ अर्थात् धनवंता है। भक्त के पास दोनों धन हैं, संसार में जो चाहिए वह भी धन भक्त के पास होता है तथा सत्य साधना रूपी धन भी भक्त के पास होता है।

कबीर, कहता हूँ कह जात हूँ, हूँ बजा कर ढोल।
श्वांस जो खाली जात है, तीन लोक का माल।।

भावार्थ – कबीर ने श्वांस के द्वारा सत्यनाम के स्मरण की कीमत बताई है कि एक श्वांस के द्वारा किए गए सत्यनाम के स्मरण की कीमत तीन लोक (1. स्वर्ग लोक, 2. पाताल लोक, 3. पृथ्वी लोक) के समान है। ऐसे महँगे (कीमती) श्वास को स्मरण के बिना गँवाना (खोना) भक्त के लिए हानिकारक है। यह बात मैं (कबीर जी) ढोल के डंके पर कह रहा हूँ अर्थात् पूरे विश्वास से कह रहा हूँ कि आपका एक श्वास भी स्मरण के बिना जाता है तो यह तीन लोक के समान कीमत का वाला है।

कबीर, ऐसे महँगे मोल का, एक श्वांस जो जाय।
चौदह लोक न पटतरे, काहे धूर मिलाय।।

भावार्थ – परमेश्वर कबीर जी ने एक श्वांस से सत्यनाम के स्मरण की ऊपर लिखी वाणी संख्या 21 में कीमत बताई है। उसके बाद इस वाणी 22 में दृढ़ किया है कि ऐसा कीमती श्वांस एक भी बिना स्मरण के जाता है तो आपको कितनी हानि होती है। फिर कहा है कि ऊपर की वाणी में जो एक श्वांस के स्मरण की कीमत तीन लोक कही है, वह तो थोड़ी है, इसकी कीमत के पटतरै अर्थात्

बराबर तो चौदह लोक भी नहीं हैं। चौदह लोक उपरोक्त तीन लोकों (1. स्वर्ग, 2. पाताल, 3. पृथ्वी) से भिन्न हैं। जैसे श्री विष्णु जी का लोक, श्री शिव जी का लोक, श्री दुर्गा जी का लोक, श्री इन्द्र जी का लोक, ब्रह्म लोक, गोलोक आदि-आदि 14 लोक तीन लोकों से भिन्न हैं। संत गरीबदास जी ने परमेश्वर कबीर जी से प्राप्त तत्वज्ञान में इसी श्वांस के द्वारा सत्यनाम के स्मरण की कीमत इस प्रकार बताई है– गरीब, सत्यनाम पालड़ै रंग होरी हो, चौदह लोक चढ़ाबै राम रंग होरी हो। तीन लोक पासंग धरै रंग होरी हो, तो ना तुलै तुलाय राम रंग होरी हो।।

सरलार्थ – सत्यनाम दो अक्षर का मंत्र है। इसमें एक ओम् अक्षर है, दूसरा सांकेतिक 'तत्' मन्त्र है। इन दोनों अक्षरों का स्मरण एक का श्वांस से (जो श्वांस बाहर छोड़ते हैं) तथा दूसरे का उश्वांस (जो श्वांस अंदर लेते हैं) से किया जाता है। संत गरीबदास जी ने बताया है कि इस प्रकार सत्यनाम को स्मरण करने की कीमत है कि तुला (तराजु ठंसंदबम) के एक पलड़े में यह श्वांस-उश्वांस का सत्यनाम का स्मरण रख दे, दूसरे पालड़े में चौदह (14) लोक रख दें और तीन लोक तो पासंग के स्थान पर रख दे तो भी सत्यनाम के स्मरण की कीमत अधिक होगी। तुला का वह पलड़ा जिसमें सत्यनाम रखा है, फिर भी भारी रहेगा अर्थात् सत्यनाम का श्वांस से किया जाने वाला स्मरण अनमोल है। इस प्रकार स्मरण करने वाले साधक का भक्ति धन अधिक संग्रहित (इकट्ठा) होता है। शीघ्र भक्ति का धनी बनकर मोक्ष प्राप्त करता है।

कबीर, जीवन तो थोड़ा भला, जे सत्य सुमिरन होय।
लाख वर्ष का जीवना, लेखे धरे ना कोय।।

भावार्थ – जैसा कि ऊपर बताया है कि वह सत्य स्मरण विधि है। यदि ऐसी विधि से स्मरण किया जाए तो यदि थोड़ा जीवनकाल भी बचा हो तो भी मोक्ष प्राप्त हो जाएगा। सत्य स्मरण न करके अन्य विधि से साधना चाहे लाख वर्ष की लम्बी आयु तक करते रहो, उसका कोई लेखा (बबवनदज) नहीं होगा, व्यर्थ प्रयत्न होगा।

वाणी-कबीर, कहता हूँ कह जात हूँ, सुनता है सब कोय।
सिमरन से भला होएगा, नातरै भला न होय।।

भावार्थ –कबीर परमेश्वर जी ने स्पष्ट किया है कि भक्ति की साधना में नाम स्मरण सर्वोत्तम है। जैसे कुछ साधक ज्ञान यज्ञ अर्थात् सदग्रन्थों का स्वाध्याय या सत्संग करना, कीर्तन-जागरण करना अधिक पसंद करते हैं। कुछ साधक हवन यज्ञ को अधिक महत्व देते हैं। कुछ धर्म यज्ञ को ही करके मोक्ष मानते हैं। परमेश्वर कबीर जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि--

जप-तप सयंग साधना, सब स्मरण के मांहीं।
कबीर जाने रामजन, सुमिरन सम कछु नाहीं।।

भावार्थ – कबीर जी के कहने का तात्पर्य है कि यज्ञ भी करना है, परंतु नाम बिना यज्ञ व्यर्थ है। उदाहरण के लिए - जैसे किसाने गेहूँ बीजता है। उसके पश्चात खाद भी डालता है, सिंचाई भी करता है। यदि किसान खेत में बीज डाले नहीं और खाद-पानी डालता रहे तो उसको गेहूँ प्राप्त नहीं हो सकते। अब गेहूँ के बीज को तो नाम मानो और खाद-पानी को यज्ञ। यज्ञों की जानकारी पूर्व में बता दी है। (धर्म यज्ञ, ध्यान यज्ञ, ज्ञान यज्ञ, हवन यज्ञ और प्रणाम यज्ञ) इसलिए उपरोक्त वाणी संख्या 24 में कहा है कि नाम स्मरण से भला होगा अन्यथा लाभ नहीं होगा।

कबीर, हरि की भक्ति बिन, धिक जीवन संसार।
धूवें जैसा धौलहरा, जात न लागै बार।।

भावार्थ – परमेश्वर की भक्ति के बिना मनुष्य का जीवन धिक्कार हैं जिस परिवार तथा सम्पति को

टिप्पणी

अपना मानकर फूला फिरता है, यह तो जैसे धुआँ बहुत फैला नजर आता है, हवा चलते ही पता नहीं चलता, धुँआ कहाँ चला जाता है। इसी प्रकार जिस बड़ी कोठी और कार को प्राप्त करके परमात्मा की भक्ति भूल गया है। इन सबको जाते तथा जीवन अन्त होते देर नहीं लगेगी। इसलिए कहा है कि परमात्मा की भक्ति बिना मनुष्य जन्म धिक्कार है।

वाणी-कबीर, भक्ति भाव भादौ नदी, सभी चलैं गहराय।
सरित सोय जानियो, जो ज्येष्ठ मास ठहराय॥

भावार्थ – जैसे भादो मास में वर्षा अधिक होती है, जिस कारण से सर्व नाले भी विशाल रूप धारण करके बहने लगते हैं और नदी जैसे दिखाई देते हैं। परंतु सरिता अर्थात् दरिया तो उसके मानो जिसमें ज्येष्ठ महीने में भी पर्याप्त जल बह रहा हो। जैसे भक्तों को परमात्मा सुख दे रहा है तो सबका भाव-श्रद्धा उमड़ती देती है। सब ही परम भक्त नजर आते हैं क्योंकि उस समय उन पर परमेश्वर की कृपा बरस रही होती है वह समझें भादौ मास। जब कभी ज्येष्ठ मास आए अर्थात् कोई आपत्ति का समय आ जाए। उस समय भी परमात्मा में श्रद्धा और विश्वास बना रहता है तो समझें वह परम भक्त है।

कबीर, भक्ति बीज बिनसे नहीं, आ पड़े सौ झोल।
जै कंचन बिष्टा पड़ै, घटै न ताका मोल॥

भावार्थ –कबीर परमेश्वर जी ने भक्त के लक्षण तथा महिमा बताई है। कहा है कि जो भक्ति बीज अर्थात् सच्चा भक्त होगा, उसका नाश नहीं होता। वह भक्ति नहीं छोड़ता चाहे सैंकड़ों आपत्तियाँ आ पड़ें। चाहे संसार के लोग उसे कितना ही बदनाम करें, चाहे कितना ही अपमानित करें। परमात्मा के दरबार में उसकी महिमा कम नहीं होती। जैसे स्वर्ण यदि बिष्टे (टट्टी-गोबर) में गिर जाए तो भी उसकी कीमत कम नहीं होती।

कबीर, कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करै कोई सूरमा, जाति वर्ण सब खोय॥

भावार्थ – कामी जो विषय-वासना में लिप्त हो, जो क्रोधी है, लालची है, उससे भक्ति नहीं होती। भक्ति तो कोई शूरवीर करेगा जो जाति तथा कुल से ऊपर उठकर विचार करेगा और कुल की लाज को समाप्त करके अपना कल्याण कराएगा।

कबीर, जब तक भक्ति सकामना, तब लग निष्फल सेवा
श्कहैं कबीर वह क्यों मिले, निष्कामी निज देव॥

भावार्थ –जब तक भक्त स्वार्थ पूर्ति के लिए भक्ति करता है, कभी कार माँगता है, कभी कोठी। तब तक उसकी सेवा अर्थात् पूजा व्यर्थ है। परमेश्वर कबीर जी समझा रहे हैं कि ऐसे साधक को वह परम पुरुष प्राप्त नहीं होता। केवल आत्म कल्याण के लिए भक्ति करने वाले को संसारी लाभ तथा मोक्ष दोनों मिलते हैं। उदाहरण– जैसे किसान गेहूँ की फसल उगाता है। उसका उद्देश्य भूसा प्राप्त करना नहीं होता। उसका उद्देश्य जीवनदाता अन्न गेहूँ प्राप्त करना होता है। फिर भूसा तो अपने आप ही प्राप्त हो जाता है। यदि किसान भूसा प्राप्त करने घास बीजकर सर्व लाभ की इच्छा करे तो वह व्यर्थ है। इसी प्रकार ऐसी भक्ति करें जिसका उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति हो, उससे सांसारिक लाभ भी अवश्य मिलेंगे, वे तो भक्ति के इल च्तवकनबज होते हैं अर्थात् भक्ति के साथ मुफ्त मिलते हैं।

टिप्पणी

2.3 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कबीर ग्रंथावली के संपादक डॉ० श्याम सुंदर दास का जीवन परिचय लिखिए।
2. गुरुदेव को अंग में साखियों का विषय क्या है?
3. डा. श्यामसुन्दर दास द्वारा संकलित की कबीर ग्रन्थावली भूमिका पर टिप्पणी करें।
4. कबीर ग्रन्थावली की व्याख्या करे।
5. इस दोहे का भावार्थ सपष्ट करें।
   "सतगुर सवांन को सगा, सोधी सई न दाति॥
   हरि जी सवान को हितू, हरिजन सई न जाति।"

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. "समिरण को अंग" को अपने शब्दों मे समझाएँ।
2. कबीर का जीवन परिचय सक्षिंप्त में लिखे।
3. दिए गए दोहें का भावार्थ सपष्ट करें ।
   "राम - नाम के पटंतरै, देबे कौं कछु नाहि ।
   क्या ले गुर संतोषिए, हौंस रही मन माहिं।"
4. नीचे दिए गए दोहे को पूरा करें तथा सपष्ट रूप से सरलार्थ करें।
   "कबीर, ऐसे महँगें मोल का, ----------।
   -----------, काहे - धाूर मिलाय॥"
5. श्याम सुंदर दास की मौलिक व संपादित कृतियाँ लिखें ।

♦♦♦♦♦

इकाई 3

मलिक मुहम्मद जायसी: पद्मावत

संरचना

3.1 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 मलिक मुहम्मद जायसी: जीवन-परिचय
3.4 जायसी की रचनाएँ
3.5 काव्यगत विशेषताएँ
3.6 पद्मावत की कथा
3.7 नागमती का विरह वर्णन
3.8 नागमती का वियोग खंड से कुछ महत्वपुर्ण पदयांशों की व्याख्या
3.9 अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई इस पाद्यक्रम की द्वितीय इकाई है। इस इकाई में मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत का 'नागमती वियोग खंड' का विशेष अध्ययन प्रस्तुत है। इस इकाई को पढ़ने के बाद विदयार्थी–

1. मलिक मुहम्मद जायसी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में जान सकेंगे।
2. मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत की विशेषताओं को जान सकेंगे।
3. नागमती वियोग खंड के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में मलिक मुहम्मद जायसी कृत 'पद्मावत' का अध्ययन किया जायेगा। जायसी की कीर्ति का मुख्य आधार 'पद्मावत' नामक प्रबन्ध काव्य है, जो हिन्दी में अपने ढंग का अनोखा है। यह एक प्रेमाख्यान काव्य है, जिसका पूर्वार्द्ध कल्पित और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक है। पूर्वार्द्ध में चित्तौण के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती की प्रेमगाथा है। सूफी सिद्धांतानुसार कवि ने रत्नसेन को साधक और पद्मावती को ब्रह्म के रूप में प्रस्तुत किया है। रत्ससेन अनेक बाधाओं को पार करता और कष्टों को सहता हुआ अन्त में पद्मावती को प्राप्त करता है। उत्तरार्द्ध में पद्मिनी और अलाउद्दीन वाली ऐतिहासिक गाथा है। इस भाग में पद्मावती ब्रह्म रूप में नहीं, प्रत्युत एक सामान्य नारी के रूप में प्रस्तुत की गयी है।

3.3 मलिक मुहम्मद जायसी: जीवन परिचय

मलिक मुहम्मद जायसी 'प्रेम की पीर' के गायक के रूप में विख्यात हैं और हिन्दी के गौरव ग्रन्थ 'पद्मावत' नामक प्रबन्ध काव्य के रचयिता हैं। ये हिन्दी-काव्य की निर्गुण प्रेमाश्रयी शाखा के सर्वाधिक प्रमुख एवं प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। जायसी के अपने कथन के अनुसार उनका जन्म 900 हिजरी (1492 ई०) में हुआ था– 'भा औतार मौर नौ सदी।' जायसी को जन्म-स्थान रायबरेली जिले का जायस नामक स्थान था, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है– जायसनगर मोर अस्थानू। इसी कारण ये 'जायसी' कहलाए। इनके पिता का नाम शेख ममरेज था। इनके माता-पिता की मृत्यु इनके बचपन में ही हो गयी थी। फलत: ये फकीरों और साधुओं के साथ रहने लगे। जायसी का व्यक्तित्व आकर्षक न था। इनके बायें कान की श्रवण-शक्ति एवं बायीं आँख सम्भवत: चेचक से जाती रही थी, जिसका उल्लेख इन्होंने स्वयं श्पद्मावतश में किया है– मुहम्मद बाईं दिसि तजा, एक सरवन एक आँखि। जायसी के सम्बनध में प्रसिद्ध है कि वे एक बार शेरशाह के दरबार में गये। शेरशाह उनके कुरूप चेहरे पर हँस पड़ा। इस पर कवि ने बड़े शान्त भाव से पूछा– 'मोहिका हँसेसि कि कोहरहि?' अर्थात् तुम मुझ पर हँसे थे या उस कुम्हार (सृष्टिकर्ता ईश्वर) पर? इस पर शेरशाह ने लज्जित होकर इनसे क्षमा माँगी थी। कवि जायसी का कण्ठस्वर बड़ा ही मीठा था और काव्य था 'प्रेम की पीर' से लबालब भरा हुआ। मुख की कुरूपता को देखकर जो हंसे थे, वे ही इस प्रेमकाव्य को सुनकर आँसू भर लाये--जेइमुख देखा तेइ हँसा, सुना तो आये आँसु। कवि का आध्यात्मिक अनुभव बहुत बढ़ा-चढ़ा था। सूफी मुसलमान फकीरों के अतिरिक्त कई सम्प्रदायों (जैसे– गोरखपन्थी, रसायनी, वेदान्ती आदि) के हिन्दू साधुओं के सत्संग से इन्हें हठयोग, वेदान्त, रसायन आदि से सम्बद्ध बहुत-सा ज्ञान प्राप्त हो गया था, जो इनकी रचना में सन्निविष्ट है। इन्हें इस्लाम और पैगम्बर पर पूरी आस्था थी। ये निजामुद्दीन औलिया की शिष्य-परम्परा

टिप्पणी

में थे। ये बड़े भावुक भगवद्भक्त थे और अपने समय के बड़े ही सिद्ध और पहुँचे हुए फकीर माने जाते थे। सच्चे भक्त का प्रधान गुण प्रेम इनमें भरपूर था। अमेठी के राजा रामसिंह इन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे।

जीवन के अन्तिम दिनों में ये अमेठी से कुछ दूर एक घने जंगल में रहा करते थे। यहीं पर एक शिकारी की गोली से इनकी मृत्यु हो गयी। इनका निधन 949 हिजरी अर्थात् सन् 1542 ई० में हुआ बताया जाता है।

3.4 जायसी की रचनाएं

जायसी की तीन रचनाएँ प्रमाणिक रुप से इन्हीं की मानी जाती हैं। ये हैं– पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम।

पद्मावत –जायसी की कीर्ति का मुख्य आधार श्पद्मावतश नामक प्रबनूध काव्य है, जो हिन्दी में अपने ढंग का अनोखा है। यह एक प्रेमाख्यानक काव्य है, जिसका पूर्वार्द कल्पित और उत्तराद्ध ऐतिहासिक है। पूर्वार्द में चित्तेण के राजा रलसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती की प्रेमगाथा है। सूफी सिद्धान्तानुसार कवि ने रत्ससेन को साधक और पद्मावती को ब्रह्म के रूप में प्रस्तुत किया है। रत्नसेन अनेक बाधाओं को पार करता और कष्टों को सहता हुआ अन्त में पद्मावती को प्राप्त करता है। उत्तराद्ध में पद्मिनी और अलाउद्दीन वाली ऐतिहासिक गाथा है। इस भाग में पद्मावती ब्रह्म रूप में नहीं, प्रत्युत एक सामान्य नारी के रूप में प्रस्तुत की गयी है।

आखिरी कलाम -यह रचना दोहे-चौपाइयों में और बहुत छोटी है। इनमें मरणोपरान्तं जीव की दशा और कयामत (प्रलय) के अन्तिम न्याय आदि का वर्णन है।

अखराबट –इसमें वर्णमाला के एक- एक अक्षर को लेकर इस्लामी सिद्धान्त-सम्बन्धी कुछ बातें कही गयी हैं। इसमें ईश्वर, जीव, सृष्टि आदि से सम्बन्धित दार्शनिक वर्णन है।

चित्ररेखा – यह प्रेमकाव्य है, जिसमें कन्नौज के राजा कल्याणसिंह के पुत्र राजकुमार प्रतिम सिंह तथा चन्द्रपुर-नरेश चन्द्रभानु की राजकुमारी चित्ररेखा की प्रेमकथा वर्णित है।

3.5 काव्यगत विशेषताएँ

भावपक्ष की विशेषताएँ

रस-योजना –'पद्मावत' प्रबन्ध काव्य होते हुए भी एक श्रृंगारप्रधान प्रेमकाव्य है; अत: श्रंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का वर्णन इसमें मिलता है। यद्यपि अन्य रसों की भी योजना की गयी है, परन्तु गौण रूप में ही। ये गौण रस हैं– करुण, वात्सल्य, वीर, शान्त और अद्भुत।

संयोग-पक्ष – जायसी के प्रमुख काव्य श्पद्मावतश में संयोग-पक्ष का उतना विशद् और विस्तृत चित्रण नहीं है, जितना वियोग-पक्ष का; क्योंकि संयोग-पक्ष से कवि के आध्यात्मिक उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती थी। रहस्यवादी कवि होने के नाते इन्होंने रतलसेन और पद्मावती के संयोग-वर्णन को इन्होंने अधिक महत्तव दिया है। संयोग के अन्तर्गत नवोढ़ा स्त्री की भावनाओं का अत्यधिक सुंदर चित्र निम्नांकित पंक्तियों में मिलता है–

हौं बौरी औ दुलहिन, पीउ तरुन सह तेज।
ना जानौं कस होइहिं, चढ़त कंते के सेज॥

विरह-वर्णन –जायसी का विरह-वर्णन अद्वितीय है। नागमती और पद्मावती दोनों के विरह-चित्र हमें श्पद्मावतश में मिलते हैं। यद्यपि इस वर्णन, में अत्युक्तियों का सहारा भी लिया गया पर उसमें जो बेदना

की तीव्रता है, वह हिन्दी-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। उसका एक-एक पद विरह का अगाध सागर है। पति के प्रवासी होने पर नागमती बहुत दु:खी है। वह सोचती है कि वे स्त्रियाँ धन्य हैं, जिनके पति उनके पास हैं--

जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्ब।
कन्त पियारा बाहिरे, हम सुख भूला सर्ब॥

करुणरस – श्रंगार के उपरान्त करुण रस का जायसी ने विशेष वर्णन किया है। करुणा का प्रथम दृश्य वहाँ आता है, जहाँ रत्लसेन योगी बनकर घर से निकलने लगता है और उसकी माता-पत्नी विलाप करती हुई उसे समझाती हैं–

रोवत मायन बहुरत बारा। रतन चला घर भा अँधियारा॥
रोवहिं रानी तजहिं पराना। नोचहिं बार करहिं खरिहाना॥

रहस्यवाद –कविवर जायसी ने अपने श्पद्मावतश नामक महाकाव्य में लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम का चित्रण किया है। 'पद्मावत' में ऐसे अनेक स्थल हैं, जहाँ लौकिक पक्ष से अलौकिक की ओर संकेत किया गया है। नागमती का हृदयद्रावक सन्देश निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है–

पिउ सौ कहेउ सँदेसड़ा, हे भौंरा! हे काग।
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहि क धुवाँ हम्ह लाग॥

प्रकृति-चित्रण – मानव-प्रकृति के चित्रण के अतिरिक्त जायसी ने बाह्य दृश्यों का भी बहुत ही उत्कृष्ट चित्रण किया है। यद्यपि इनके काव्य में प्रकृति का आलम्बन-रूप में चित्रण नहीं मिलता, तथापि उद्दीपन और मानवीकरण अलंकारों के रूप में प्रकृति के अनेक रम्य चित्र उपलब्ध होते हैं।

भावपक्ष के उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि जायसी वास्तव में रससिद्ध कवि हैं।

कलापक्ष की विशेषताएँ

भावपक्ष के साथ ही जायसी का कलापक्ष भी पुष्ट, परिमार्जित और प्रांजल है, जिसका विवेचन निम्नवत् है–

छन्दोविधान

जायसी ने अपने काव्य के लिए दोहा-चौपाई की पद्धति चुनी है। इस पद्धति में कवि ने चौपाई की सात पंक्तियों के बाद एक दोहे का क्रम रखा है, जब कि तुलसी ने आठ पंक्तियों के बाद। इस छंद-विधान के लिए जायसी तुलसी के पथ-प्रदर्शक भी जा सकते हैं।

भाषा

जायसी की भाषा ठेठ अवधी है। इसमें बोलचाल की अबधी का माधुर्य पाया जाता है। इसमें शहद की सहज मिठास है, मिश्री का परिमार्जित स्वाद नहीं। लोकोक्तियों के प्रयोग से इसमें प्राण-प्रतिष्ठा भी हुई है। कहीं-कहीं शब्दों को तोड़-मरोड़ दिया गया है और कहीं एक ही भाव या वाक्य के कई स्थानों पर प्रयुक्त होने के कारण पुनरुक्ति दोष भी आ गया है। भाषा की स्वाभाविकता, सरसता और मनोगत भावों की प्रकाशन पद्धति ने जायसी को अवधी साहित्य के क्षेत्र में मान्य बना दिया है।

शैली

काव्य-रूप की दृष्टि से जायसी ने प्रबन्ध शैली को अपनाया है। उस समय फारसी में मसनवी शैली और हिन्दी में चरितकाव्यों की एक विशेष शैली प्रचलित थी। जायसी ने दोनों का समन्वय कर एक नवीन शैली को जन्म दिया। 'पद्मावत' में शैली का यही मिश्रित-नवीन रूप मिलता है। 'पद्मावत' के

टिप्पणी

आरम्भ में मसनवी शैली और भाषा, छन्द आदि में चरित-काव्य की शैली मिलती है। इन्होंने चौपाई और दोहा छन्दों में भाषा-शैली को सुन्दर निर्वाह किया है। समग्र रूप में जायसी की भाषा-शैली सरल, सशक्त एवं प्रवाहपूर्ण है।

अलंकार – अलंकारों का प्रयोग जायसी ने काव्य-प्रभाव एवं सौन्दर्य के उत्कर्ष के लिए ही किया है, चमत्कार-प्रदर्शन के लिए नहीं। इनके काव्य में सादृश्यमूलक अलंकारों की प्रचुरता है। आषाढ़ के महीने के घन-गर्जन को विरहरूपी राजा के युद्ध-घोष के रूप में प्रस्तुत करते हुए बिजली में तलवार का और वर्षा की बूंदों में बाणों की कल्पना कर कितना सुन्दर रूपक बाँधा गया

खड़गे बीजु चमकै चहूँ ओरा। बूंद बान बरसहिं घन घोरा॥

यहाँ रूपक के साथ-साथ अनुप्रास का भी सुन्दर एवं कलातूमक प्रयोग हुआ है।

साहित्य में स्थान – डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने जायसी की सराहना करते हुए लिखा है कि, "जायसी अत्यंत संवेदनशील कवि थे। संस्कृत के महाकवि बाण की भाँति वे शब्दों के चित्र लिखने के धनी हैं। वे अमर कवि हैं।

मलिक मोहम्मद जायसी: नागमती वियोग खंड

3.6 पद्मावत की कथा

पद्मावत हिंदी साहित्य के अन्तर्गत सूफी परम्परा का प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसके रचनाकार मलिक मोहम्मद जायसी हैं। दोहा और चौपाई हन्द में लिखे गए इस महाकाव्य की भाषा अवधी है। चौपाई की प्रत्येक सात अर्धालियों के बाद दोहा आता है और इस प्रकार आए हुए दोहें की संख्या 653 है।

इसकी रचना सन् 947 हिजरी (संवत् 1540) में हुई थी। इसकी कुछ प्रतियों में रचनातिथि 927 हि. मिलती है, किंतु वह असंभव है। अन्य कारणों के अतिरिक्त इस असंभावना का सबसे बड़ा कारण यह है कि मलिक साहब का जन्म ही 900 या 906 हिजरी में हुआ था। ग्रंथ के प्रारंभ में शाहेवक्त के रूप में शेरशाह की प्रशंसा है, यह तथ्य भी 947 हि. को ही रचनातिथि प्रमाणित करता है। 927 हि. में शेरशाह का इतिहास में कोई स्थान नहीं था। इस रचना में उन्होंने नायक रतनसेन और नायिका पद्मिनी की प्रेमकथा को विस्तारपूर्वक कहते हुए प्रेम की साधना का संदेश दिया है। रतनसेन ऐतिहासिक व्यक्ति है, वह चित्तौड़ का राजा है, पद्मावती उसकी वह रानी है जिसके सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर तत्कालीन सुल्तान अलादद्दीन उसे प्राप्त करने के लिये चित्तौड़ पर आक्रमण करता है और यद्यपि युद्ध में विजय प्राप्त करता है तथापि पद्मावती के जल मरने के कारण उसे नहीं प्राप्त कर पाता है। इसी अर्ध ऐतिहासिक कथा के पूर्व रतनसेन द्वारा पदमावती के प्राप्त किए जाने की व्यवस्था जोड़ी गई है, जिसका आधार अवधी क्षेत्र में प्रचलित हीरामन सुग्गे को एक लोककथा है। कथा संक्षेप में इस प्रकार है–

हीरामन की कथा

सिंहल द्वीप (श्रीलंका) का राजा गंधर्वसेन था, जिसकी कन्या पदमावती थी, जो पद्मिनी थी। उसने एक सुग्गा पाल रखा था, जिसका नाम हीरामन था। एक दिन पदमावती की अनुपस्थिति में बिल्ली के आक्रमण से बचकर वह सुग्गा भाग निकला और एक बहेलिए के द्वारा श्फँसा लिया गया। उस बहेलिए से उसे एक ब्राह्मण ने मोल ले लिया, जिसने चित्तौड़ आकर उसे वहाँ के राजा रतनसिंह राजपूत के हाथ बेच दिया। इसी सुग्गे से राजा ने पद्मिनी (श्पदमावती) के अद्भुत सौंदर्य का वर्णन सुना, तो उसे प्राप्त करने के लिये योगी बनकर निकल पड़ा।

अनेक वनों और समुद्रों को पार करके वह सिंहल पहुँचा। उसके साथ में वह सुग्गा भी था। सुग्गे

के द्‌वारा उसने पदमावती के पास अपना प्रेम संदेश भेजा। पदमावती जब उससे मिलने के लिये एक देवालय में आई, उसको देखकर वह मूर्छित हो गया और पदमावती उसको अचेत छोड़कर चली गई। चेतना में आने पर रतनसेन बहुत दु:खी हुआ। जाते समय पदमावती ने उसके हृदय पर चंदन से यह लिख दिया था कि उसे वह तब पा सकेगा जब वह सात आकाशों (जैसे ऊँचे) सिंहलगढ़ पर चढ़कर आएगा। अत: उसने सुग्गे के बताए हुए गुप्त मार्ग से सिंहलगढ़ के भीतर प्रवेश किया। राजा को जब यह सूचना मिली तो उसने रतनसेन को शूली पर चढ़ा देने का आदेश दिया किंतु जब हीरामन से रतनसिंह राजपूत के बारे में उसे यथार्थ तथ्य ज्ञात हुआ, उसने पदमावती का विवाह उसके साथ कर दिया।

रतनसिंह राजपूत पहले से ही विवाहित था और उसकी उस विवाहित रानी का नाम नागमती था। रतनसेन के विरह में उसने बारह महीने कष्ट झेल कर किसी प्रकार एक पक्षी के दवारा अपनी विरहगाथा रतनसिंह राजपूत के पास भिजवाई और इस विरहगाथा से द्रवित होकर रतनसिंह पदमावती को लेकर चित्तौड़ लौट आया।

यहाँ, उसकी सभा में राघव नाम का एक तांत्रिक था, जो असत्य भाषण के कारण रतनसिंह दवारा निष्कासित होकर तत्कालीन सुल्तान अलाउद्दीन की सेवा में जा पहुँचा और जिसने उससे पदमावती के सौंदर्य की बड़ी प्रशंसा की। अलाउद्दीन पदमावती के अद्‌भत सौंदर्य का वर्णन सुनकर उसको प्राप्त करने के लिये लालायित हो उठा और उसने इसी उद्देश्य से चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। दीर्घ काल तक उसने चित्तौड़ पर घेरा डाल रखा, किंतु कोई सफलता होती उसे न दिखाई पड़ी, इसलिये उसने धोखे से रतनसिंह राजपूत को बंदी करने का उपाय किया। उसने उसके पास संधि का संदेश भेजा, जिसे रतन सिंह राजपूत ने स्वीकार कर अलाउद्दीन को विदा करने के लिये गढ़ के बाहर निकला, अलाउद्दीन ने उसे बंदी बनाकर दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया।

चित्तौड़ में पदमावती अत्यंत दु:खी हुई और अपने पति को मुक्त कराने के लिये वह अपने सामंतों गोरा तथा बादल के घर गई। गोरा बादल ने रतनसिंह राजपूत को मुक्त कराने का बीड़ा लिया। उन्होंने सोलह सौ डोलियाँ सजाई जिनके भीतर राजपूत सैनिकों को रखा और दिल्ली की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने यह कहलाया कि पद्मावती अपनी चेरियों के साथ सुल्तान की सेवा में आई है और अंतिम बार अपने पति रतनसेन से मिलने के लिये आज्ञा चाहती है। सुल्तान ने आज्ञा दे दी। डोलियों में बैठे हुए राजपूतों ने रतनसिंह राजपूत को बेड़ियों से मुक्त किया और वे उसे लेकर निकल भागे। सुल्तानी सेना ने उनका पीछा किया, किंतु रतन सिंह राजपूत सुरक्षित रूप में चित्तौड़ पहुँच ही गया।

जिस समय वह दिल्ली में बंदी था, कुंभलनेर के राजा देवपाल ने पदमावती के पास एक दूत भेजकर उसमें प्रेम प्रस्ताव किया था। रतन सिंह राजपूत से मिलने पर जब पदमावती ने उसे यह घटना सुनाई, वह चित्तौड़ से निकल पड़ा और कुंभलनेर जा पहुँचा। वहाँ उसने देवपाल को द्वंद्व युद्ध के लिए ललकारा। उस युद्ध में वह देवपाल की सेल से बुरी तरह आहत हुआ और यद्यपि वह उसको मारकर चित्तौड़ लौटा किंतु देवपाल की सेल के घाव से घर पहुँचते ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। पदमावती और नागमती ने उसके शव के साथ चितारोहण किया। अलाउद्दीन भी रतनसिंह राजपूत का पीछा करता हुआ चित्तौड़ पहुँचा, किंतु उसे पदमावती न मिलकर उसकी चिता की राख ही मिली।

इस कथा में जायसी ने इतिहास और कल्पना, लौकिक और अलौकिक का ऐसा सुंदर सम्मिश्रण किया है कि हिंदी साहित्य में दूसरी कथा इन गुणों में "पदमावत" की ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकी है। प्राय: यह विवाद रहा है कि इसमें कवि ने किसी रूपक को भी निभाने का यत्न किया है। रचना के कुछ संस्करणों में एक छंद भी आता है, जिसमें संपूर्ण कथा को एक आध्यात्मिक रूपक बताया गया है और कहा गया है कि चित्तौड़ मानव का शरीर है, राजा उसका मन है, सिंहल उसका हृदय है,

टिप्पणी

पदमिनी उसकी बुद्धि है, सुग्गा उसका गुरु है, नागमती उसका लौकिक जीवन है, राघव शैतान है और अलाउद्दीन माया है; इस प्रकार कथा का अर्थ समझना चाहिए। किंतु यह छंद रचना की कुछ ही प्रतियों में मिलता है और वे ग्रतियाँ भी ऐसी ही हैं जो रचना की पाठ परंपरा में बहुत नीचे आती है। इसके अतिरिक्त यह कुंजी रचना भर में हर जगह काम भी नहीं देती है: उदाहरणार्थ गुरु-चेला-संबेध सुग्गे और रतनसेन में ही नहीं है, वह रचना के भिन्न-भिन्न प्रसंगों में रतनसेन-पदमावती, पदमावती-रतनसेन और रतनसेन तथा उसके साथ के उन कुमारों के बीच भी कहा गया है जो उसके साथ सिंहल जाते हैं। वस्तुत: इसी से नहीं, इस प्रकार की किसी कुंजी के द्वारा भी कठिनाई हल नहीं होती है और उसका कारण यही है कि किसी रूपक के निर्वाह का पूरी रचना में यत्न किया ही नहीं गया है। जायसी का अभीष्ट केवल प्रेम का निरूपण करना ज्ञात होता है। वे स्थूल रूप में प्रेम के दो चित्र प्रस्तुत-करते हैं: एक तो वह जो आध्यात्मिक साधन के रूप में आता है, जिसके लिये प्राणों का उत्सर्ग भी हँसते हँसते किया जा सकता हैं रतनसेन और पदमावती का प्रेम इसी प्रकार का है: रतनसेन पदमावती को पाने के लिये सिंहलगढ़ में प्रवेश करता है और शूली पर चढ़ने के लिये हँसते हँसते आगें बढ़ता है; पदमावती रतनसेन के शव के साथ हँसते हँसते चितारोहण करती है और अलाउद्दीन जैसे महान सुल्तान की प्रेयसी बनने का लोभ भी अस्वीकार कर देती है। दूसरा प्रेम वह है जो अलाउद्दीन पदमावती से करता है। दूसरे की विवाहिता पत्नी को वह अपने भौतिक बल से प्राप्त करना चाहता है। किंतु जायसी प्रथम प्रकार के प्रेम की विजय और दूसरे प्रकार के प्रेम की पराजय दिखाते हैं। दूसरा उनकी दृष्टि में हेय और केवल वासना है; प्रेम पहला ही है। जायसी इस प्रेम को दिव्य कहते हैं।

3.7 नागमती का विरह वर्णन

जायसी के विरहाकुल हृदय की गहन अनुभूति का सर्वाधिक मार्मिक-चित्रण नागमती के विरह-वर्णन में प्राप्त होता है। डॉ० कमल कुलकश्रेष्ठ के शब्दों में, "वेदना का जितना निरीह, , मार्मिक, गम्भीर, निर्मल एवं पावन स्वरूप इस विरह-वर्णन में मिलता है, उतना अन्यत्र वास्तव में इसको पद्मावत का प्राण-बिन्दु माना जा सकता है। विरह-विदग्ध हृदय की संवेदनशीलता के इस चरम उत्कर्ष को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे प्रेम के चतुर चितेरे कवि ने नागमती को स्वयं में साकार कर लिया हो। नागमती विरह-वर्णन में जैसे व्यथा स्वयं ही मुखारित होने लगी है। इसके लिए नागमती के विरह का आधार भी एक कारण है।

नागमती का पतिप्रेम विरहावस्था में प्रगातर हो गया। संयोग-सुख के समान उसने विरह का भी अभिनन्दन किया। स्मृतियों के सहारे, पति के ग्रत्यागमन की आशा में उसने पथ पर पलकें बिछा दीं। किन्तु निर्मोही लौटा नहीं। एक वर्ष व्यतीत हो गया, प्रवास आजीवन प्रवास में बदल न जाए, इस आशंका मात्र से ही उसका हृदय दूक-टूक हो गया। जायसी ने उसका चित्रण इस प्रकार किया है–

नागमती चितउरपथ हेरा। पिउ जो गए पुनि कीन्ह न फेरा॥
नागर काहु नारि बस परा। तेइ मोर पिउ मोसौं हरा॥
सुआ काल होई लेइगा पीऊ। पीउ नहिं जात, जात बरऊ जीऊ। ॥
सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह।
झुरि झुरि पंजर हौ भई, विरह काल मोहि दीन्ह॥

विरह व्यथिता नागमती महलों के वैभव, विलास और साज-सज्जा में कोई आकर्षक अनुभव नहीं करती है, उसके लिए प्रकृति का सौन्दर्य, स्निग्ध कमनीयता, मनयज मोहकता और वासन्ती कौमार्य आदि सभी तत्व कष्टदायक हो जाते हैं।

टिप्पणी

प्रकृति अपना परिधान बदलती है किन्तु नागमती की विरह-व्यथा तो बढती ही जाती है। उसके लिए सारा संसार भयावह लगता है। नागमती की सखियाँ उसे धीरज देने का प्रयास करती हैं, किन्तु सखियों का समझाना भी निरर्थक रह जाता है। इसी स्थल पर जायसी ने बारहमासे का वर्णन किया है।

जायसी ने एक-एक माह के क्रम से नागमती की वियोग-व्यथा का सजीव चित्रण किया है। संयोग के समय जो प्रेम सृष्टि के सम्पूर्ण उपकरणों से आनन्द का संचय करता था, वियोग के क्षणों में वही उससे दुख का संग्रह करता है। कवि ने जिन प्राकृतिक उपकरणों और व्यापारों का वर्णन किया है, उसके साहचर्य का अनुभव राजा से लेकर रंक तक सभी करते हैं। उदाहरण स्वरूप कुछ पंक्तियाँ हैं–

चढा असाढ, गगन घन गाजा। साजा बिरह दुन्द दल बाजा।।
घूम, साम, धौरे घन धाए। सेत धजा बग- पाँति देखाए।।

चारों ओर फैली घटाओं को देखकर नागमती पुकारती है- 'ओनई घटा आइ चहूँ फेरी, कन्त! उबारु मदन हौं घेरी'। उस समय नागमती की मनोदशा का यह चित्र तो अत्यन्त मार्मिक है–

जिन्ह घर कन्ता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्ब।
कन्त पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्व।।

श्रावण में चारों ओर जल ही जल फैल जाता है, नागमती की नाव का नाविक तो सात समुद्र पार था। भादों में उसकी व्यथा ओर भी बढ़ जाती है। शरद ऋतु प्रारम्भ हुई, जल कुछ उतरा तो वह प्रियतम के लौटने की प्रार्थना करने लगी। भ्रमर ओर काग द्वारा पति को संदेश भेजते हुए वह कहती है–

पिउ सौ कहेहु संदेसडा, हे भौंरा! हे काग!
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहि क धुवाँ हम्ह लाग।।

किन्तु पति न लौटा, वनस्पतियाँ उल्लासित हो गयीं किन्तु नागमती की उदासीना बढती ही गयी।

नागमती का विरह वर्णन

'बारहमासा' का महत्त्व बताते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं– "वेदना का अत्यन्त निर्मल और कोमल स्वरूप, हिन्दू दाम्पत्य जीवन का अत्यन्त मर्मस्पर्शी माधुर्य, अपने चारों ओर को प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों के साथ विशुद्ध भारतीय हृदय की साहचर्य भावना तथा विषय के अनुसार भाषा का अत्यन्त स्निग्ध, सरल, मृदुल और अकृत्रिम प्रवाह देखने योग्य है।

पर इन कुछ विशेषताओं की ओर ध्यान जाने पर भी इसके सौन्दर्य का बहुत कुछ हेतु अनिर्वचनीय रह जाता है।" इस प्रलाप के विषय में आचार्य शुक्ल का यह कथन महत्त्वपूर्ण है– "यह आशिक-माशुकों का निर्लज्ज प्रलाप नहीं है, यह हिन्दू गृहिणी की विरह वाणी है। इसका सात्विक मर्यादापूर्ण माधुर्य परम मनोहर है। वन-वन भटकती नागमती अपनी वेदना व्यक्त करती है। आखिर वह पुण्यदशा प्राप्त होती है जहाँ सम्पूर्ण जड-चेतन एक हो जाते हैं। मानवी संवेदना पशु-पक्षियों तक भी व्यापक हो जाती है।" फिर फिर रोव, कोई नहिं बोलाश में रानी के अकेलेपत और व्यथा की झलक है तो "आधी रात विहंगम बोला में विरह-वर्णन के चरमोत्कर्ष के दर्शन होते हैं। नागमती पदमावती को भी एक संदेश भेजती है, जिसमें व्यथा के साथ-साथ एक आदर्श हिन्दू गृहिणी का तपोमय स्वरूप भी दिखाई पड़ता है।

निष्कर्ष – नागमती के विरह-वर्णन की सबसे बडी विशेषता नागमती का अपने रानीपन को भूलकर सामान्य नारी की भाँति विरह-व्यथित होकर अपने हृदयोदगारों को प्रकट करना है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में, "जायसी ने स्त्री जाति की या कम से कम हिन्दू गृहिणी मात्र की सामान्य स्थिति के भीतर विप्रलम्भ श्रृंगार के अत्यन्त समुज्ज्वल रूप का विकास दिखाया गया है।" कवि ने विरह के बेदनात्मक स्वरूप का चित्रण करते हुए संवेदनशीलता, विरहजन्य कृशता, करुणा और विश्वव्यापी भावुकता का भी

टिप्पणी

स्वाभाविक, किन्तु मार्मिक चित्रण किया है। इन सभी विशेषताओं के कारण जायसी को विरह-वर्णन का सम्राट और उनके विरह-वर्णन को हिन्दी साहित्य में अद्वितीय और अमूल्य माना गया है। वस्तुत: व्यथा की सम्पूर्ण मधुरता, विरह की अपनी सारी मिठास, प्रणय के स्थायित्व और नारी की चरम भावुकता को साकार करने में जायसी को साहित्य में अन्यतम स्थान दिया गया है।

नागमती का वियोग खंड से कुछ महत्वपूर्ण पद्यांशों की व्याख्या

नागमती चितउर पथ हेरा। पिउ जो गए पुनि कीन्ह न फेरा॥
नागर काहु नारि बस परा। तेइ मोर पिउ मोसौं हरा॥
सुआ काल होइ लेइगा पीऊ। पिउ नहिं जात, जात बरु जीऊ॥
भयउ नरायन बावन करा। राज करत रोजा बलि छरा॥
श्करन पास लीन्हेछ कै छंदू। विप्र रूप धरि झिलमिल इंदू॥
मानत भोग गोपिचंद भोगी। लेइ अपसवा जलंधर जोगी॥
लै कान्हहिं भी अकरूर अलोपी। कठिन बिछोह जियहिं किमि गोपी॥
सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह।
झुरि-झुरि पजर हौं भई, बिरह काल मोहि दीन्ह॥

सप्रंसग व्याख्या – प्रस्तुत पद्य हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' में 'नागमती-वियोग-वर्णन' शीर्षक के अन्तर्गत संकलित एवं मलिक मुहम्मद जायसी दूवारा रचित 'पद्मावत' महाकाव्य से उद्धत है। नागमती चित्तौड़ में अपने पति राजा रत्ससेन की बाट जोह रही थी और कहती थी कि सारस की जोड़ी में से एक (नर) को मारकर किस व्याध (बहेलिये) ने मादा को उससे अलग कर दिया और यह विरहरूपी काल मुझे दे दिया है, जिसके कारण मैं सूखकर हड्डियों का ढाँचामात्र नागमती रह गयी हूँ।

विशेष –

1. नागमती चित्तौड़ में अपने राजा रत्नसेन की राह देख रही है।
2. विष्णु ने वामन रूप धारण करके राजा बलि को छला था।
3. नागमती अपने प्रीतम से अलग होकर विरह काल के कारण सूखकर हड्डियों का ढाँचामात्र रह गयी है।

चढा आसाढ गगन घन गाजा। साजा विरह दुंद दल बाजा॥
घूम, घाम, घौरे घन धाए। सेत धजा बग पाँति देखाए॥
खडक बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरसहिं घन घोरा॥
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी। कंत! उबारू मदन हाँ घेरी॥
दादुर मोर कोकिला पीऊ। गिरै बीजु, घट रहै न जीऊ॥
पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हां बिनु नाह, मंदिर को छावा॥
अद्रा लागि लाग भुई लेई। माहि बिनु पिउ को आदर देई॥
जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौं औ गर्व।
कंत पियारा बाहिरै हम सुख भूला सर्व॥

सप्रसंग व्याख्या –प्रस्तुत पद्मावतरण जायसी कृत पद्मावत काव्य के 'नागमती वियोग खण्ड' से लिया गया है। इस अंश के अन्तर्गत कवि जायसी ने नागमती के वर्षाकालीन विरहोद्दीपन का चित्र खींचा है। कवि जायसी कह रहे हैं कि आषाढ मास आते ही आकाश में मेघ गूँजने लगे हैं। विरह ने द्वंद्व युद्ध के लिए अपनी सेना सजा ली है।

घुमेले काले, धौले बादल सैनिकों की भाँति गगन में दौड़ने लगे हैं। बगुलों की पक्तियाँ श्वेत ध्वजा–सी दिखने लगी हैं। खड्ग बिजली के रूप में चारों ओर चमक रहे हैं तथा घोर घनवानों भयानक बूँदों के बाण बरस रहे हैं। आद्रा नक्षत्र लग गया है और भूमि बीज ग्रहण करने लगी है अर्थात् खेत बोये जाने लगे हैं।

इतना सब होने पर भी प्रिय के बिना मुझे कौन आदर दे सकता है? चारों ओर घटा झुक आई है। हे कंत! हे प्रियतम! मदन अर्थात् कामदेव ने मुझे चारों ओर से घेर लिया है। ऐसी स्थिति में मुझे आकर बचाओ। दादुर, मोर, कोयल और पपिहे पिउ–पिउ करके मुझे बेघ रहे हैं, अब ऐसा प्रतीत होता है कि घट में प्राण नहीं रहेगा। पुष्य नक्षत्र सिर के ऊपर आ गया है, अब शीघ्र ही आने वाला है, परन्तु मैं बिना स्वामी की हूँ, मेरे मन्दिर–भवन को कौन छायेगा? जिनके घर पति हैं, वे सुखी हैं। उन्हीं को गौरव और गर्व है। मेरा प्यारा कंत तो परदेश में है, इसीलिए मैं सब सुख भूल गयी हूँ।

विशेष –

1. प्रस्तुत पद्यावतरण में असंगति अलंकार का सार्थक प्रयोग हुआ है। यहाँ पर उद्वेग, प्रलाप, जडता, व्याधि आदि काम दशाएँ व्यंजित हैं।
2. आषाढ मास के कृष्ण पक्ष में आद्रा बरसात होती है। आद्रा में किसान भूमि में बीच बोने लगते हैं। आद्रा के बाद पुनर्वस आषाढ शुक्ल में और उसके बाद पुष्य श्रावण कृष्ण पक्ष में आता है। पुष्य को लोक में चिरैया नक्षत्र कहते हैं। नागमती आषाढ शुक्ल में कह रही है कि पुष्य सिर पर आ गया है।

कातिक सरद चंद उजियारी। जग सीतल, हौं बिरहै जारी।।
चैदह करा चाँद परगासा। जनहुँ जरै सब धरति अकासा।।
तन-मन सेज करै अगिदाहू। सब कहँ चंद, भयऊ मोहि राहू।।
अबहूँ निठुर! आउ एहि बारा। परब देवारी होइ संसारा।।
सखि झूमक गावै अंग मोरी। हों झुराँव बिछुरी मारि जोरी।।
जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूजा। मो कहाँ विरह, सवति दुख दूजा।।
सखि मानैं तिउहार सब, गाड़ देवारी खेलि।
हौं का गावौं कंत बिनु, रही सार सिर मेलि।।

सप्रसंग व्याख्या – प्रस्तुत पद्यावतरण जायसी कृत 'पद्मावत' काव्य के 'नागमती वियोग खण्ड' से लिया गया है। प्रस्तुत अंश के अन्तर्गत विरह–विदग्धा नागमती के हृदयोगद्गारों को व्यक्त किया गया है।

कवि जायसी कह रहे है कि नागमती कह रही है कि कार्तिक मास आ गया है। चारों ओर शरद चन्द्र की चाँदनी छा रही है। सारा संसार शीतल और आनन्दित हो रहा है, किन्तु मैं विरहाग्नि में प्रज्ज्वलित हो रही हूँ। चन्द्रमा अपनी चौदह अर्थात् सम्पूर्ण कलाओं के साथ प्रकाशित हो रहा है, परन्तु मुझे ऐसा लग रहा है कि सारी धरती और आकाश जल रहे हैं। शैया मेरे तन और मन दोनों का अग्निदाह कर रही है।

भाव यह है कि शैया पर जाते ही मेरे तन और मन धू–धू करके जलने लगते हैं। यह चन्द्रमा सबके लिए तो शीतलता प्रदान करने वाला है, परन्तु मेरे लिए ये राहु के समान दुखदायी हो रहा है। यद्यपि चारों ओर चाँदनी छिटकी हुई है, किन्तु प्रिय स्वामी घर पर न हो तो विरहिणी को सारा संसार अंध कारपूर्ण दिखलाई देने लगता है। नागमती कहती है कि हे निष्ठुर! अब भी तुम इस समय आ जाओ। देखो तो सही, सारा संसार दीपावली का त्यौहार मना रहा है। सखियाँ अपने अंगों को मरोड़–मरोड़ कर

टिप्पणी

अर्थात् नृत्य करती हुई झूमक गीत गा रही हैं, परन्तु मैं सूखती जा रही हूँ। कारण यह कि मेरी जोडी बिछड़ गई है, मेरा प्रिय मुझसे बिछड़ गया है।

भाव यही है कि सारा संसार दीपावली की खुशियाँ मना रहा है और मैं विरह में तड़प रही हूँ। जिस घर में प्रिय होता है, उस घर की रानी की सारी मनोकामनाएँ पूरी होती रहती हैं। मेरे लिए तो विरह और सौत– इन दोनों का दुगुना दुख है। अर्थात् एक तो मैं विरह-दुख से व्याकुल हो रही हूँ और दूसरे सौतिया डाह के संताप से व्यथित हो रही हूँ। इस प्रकार मेरा दुख दुगुना हो उठा है। अन्त में नागमती ने कहा कि मेरी सारी सखियाँ गा-बजाकर त्यौहार मना रही हैं, दीपावली के विविध खेल खेल रही हैं, परन्तु मैं स्वामी के बिना क्या गीत गाऊँ! मैं दुखी होकर अपने सिर में धूल डाल रही हूँ।

विशेष –

1. 'जग सीतल हौं विरहै जारी' में विरोधाभास अलंकार का सौंदर्य देखते ही बनता है। 'रही छार सिर मेलि' में अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि हैं।
2. विरह के ऐसे वर्णन अन्य सूफी कवियों ने भी अपने काव्यों में किए हैं जो देखते ही बनते हैं। उदाहरणार्थ मंझन कृत 'मधुमालती' में आया यह वर्णन देखिए–

कातिक सरद सताई जारा।
अमी बुन्द बरखै विष धारा।।
मोहि तन विरह अगिनि परचारा।
सरद चाँद माँहि सेज अंगारा।।
सरद रैन तेहि सीतल जेहि पिय कंठ निवास।
सब कहै परब दिवारी मोहि कहूँ भा वनवास।।

3. इस पद्यावतरण में उद्वैग नामक विरहावस्था का व्यंजन हुआ है। आचार्य विश्वनाथ द्वारा विवेचित 'संताप' नामक विरह-दशा भी स्पष्ट है।

भा वैसाख तपनि अति लागी। चोआ चीर चंदन भा आगी।।
सूरज जरत हिवंचल ताका। विरह बजागि सौंह रथ हाँका।।
जरत बजागिनि करु, पिउ छाँरा। आई बझाउँ, अँगारन्ह माहाँ।।
तोहि दरसन होड़ सीतल नारी। आइ आगि तें करू फुलवारी।।
लागिउँ जरै, जरै जस भारू। फिरि-फिरि भूंजेसि, तजिउँ न बारू।।
सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइकि बिहराई।।
बिहरत हिया करहु पिउ! टेका। दीठि दवंगरा मरेवहु एका।।
कँवल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गएउ सुखाइ।
कबहुं बेलि फिरि पलुहै, जौ पिउ सींचै आइ।।

सप्रसंग व्याख्या – प्रस्तुत पद्यावतरण जायसी कृत पद्मावत काव्य के 'नागमती वियोग खण्ड' से लिया गया है। इस अंश के अन्तर्गत वैसाख की गर्मी का चित्रण किया गया है। कवि जायसी कह रहे हैं कि बैसाख मास आते ही गर्मी पड़नी शुरु हो जाती है। गर्मी विरहिणियों को बहुत दुखदायी होती है।

नागमती का विरह दुगुना हो जाता है। कवि जायसी ने इसी स्थिति का चित्रण इस अंश में किया है। कवि कह रहा है कि वैसाख का महीना आ गया है। अत्यन्त गर्मी पड़ने लग गयी है। यह इतनी अधिक हो गयी है कि रेशमी वस्त्र और चन्दन जैसे शीतल पदार्थ भी शरीर में अग्नि का-सा दाह उत्पन्न करते हैं। सूर्य जलता हुआ हिमालय की ओर जाना चाहता है। परन्तु उसने विरह की वज्राग्नि का अपना रथ

मेरे सम्मुख ही हाँक दिया है। इस विरह की वज्राग्नि के लिए छाया ही एकमात्र सहारा है। हे प्रियु तो आओ और भुजते अंगारों में गडी (जलती हुई) मुझ नागमती को आकर बुझाओ (शीतल करो) । तुम्हारे दर्शनों से यह नारी शीतल हो सकती है। इसलिए तुम आकर अग्नि की जगह पर मेरे लिए पुष्पवाटिका का निर्माण करो।

मेरा शरीर भाड़ के समान जल रहा है। विरह रूपी तप्त बालू में मेरे प्राण बार–बार भुन रहे हैं। भाव यह है कि जैसे जलती बालू में दाने भूने जाते हैं और बाहर नहीं निकल पाते हैं, उसी प्रकार मेरे प्राण विरह में तपते और भूनते हुए शरीर दोड़कर निकल नहीं पाते हैं। सरोवर की तरह मेरी ह्रदय प्रतिदिन घटता जा रहा है। एक दिन वह टुकड़े–टुकड़े होकर कट जायेगा। ह्रदय कट रहा है। हे प्रिय, तुम उसे सहारा दो और अपनी कृपा–दृष्टि रूपी दँवगरे से उसे एक में मिलाओ। अन्त में नागमती कहती है कि मानसरोवर में कमल खिला था वह बिना जल के सूख रहा है। हे प्रिय! यदि तुम आकर उसे अपने स्नेह के जल से सींचोगे तो उसमें फिर से नये पल्लव अंकुरित हो उठेंगे।

विशेष –

1. प्रस्तुत पद्यावतरण के अन्तर्गत हेतूत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक और अप्रस्तुतप्रशंसा जैसे अलंकारों का प्रयोग किया गया है।
2. यहाँ पर दुर्बलता नामक विरह अवस्था व्यंजित हुई है। जीवन के साम्य द्वारा वेदना की मार्मिक विवृत्ति हुई है। इस पद्यावतरण में आये "सरवर ...... एकाश अंश में प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण द्रष्टव्य है।
3. 'सूरज जरत हिवंचल ताका' से तात्पर्य है कि गर्मी से सूर्य जलने लगा है। उसने हिमालय की ओर जाना चाहा, परन्तु नागमती के शरीर में जलने वाली वज्राग्नि से ज्ञात होता है कि हिमालय की ओर न जाकर सूर्य ने अपना रथ नागमती की ओर हाँक दिया। इसी से नागमती के शरीर में विरह की अग्नि सूर्य जैसी धधक रही है। सूर्य की गर्मी से त्रस्त होकर हिमालय जाना चाहता है, परंतु वास्तविक बात यह है कि वह गर्मी में वहाँ जा नहीं पाता, अन्यथा ग्रीष्म ऋतु ही न हो।

भई पुछार लीन्ह बनवासू। बैरिनि संवति दीन्ह चिलबाँसू।।
घर बान विरह तनु लागा। जौ पिउ आवबै उडहिं तौ कागा।।
हारिल भई पंथ मैं सेवा। अब तहँ पठवौं कौन परेवा।।
धौरी पंडुक कहु पिउ कंठ लवा। करै मेराव सोड़ गौरवा।।
कोइल भई पुकारित रही। महरि पुकारै लेइ लेइ दही।।
पेडु तिलोरी औ जल हंसा। हिरदय पैठि विरह कटनंसा।।
जेहि पंखी के निअर होइ, कहै विरह कै बात।
सोइ पंखी जाइ परि, तखिर होड़ निपात।।

सप्रसंग व्याख्या – प्रस्तुत पद्यावतरण जायसी कृत पद्मावत काव्य के 'नागमति वियोग खण्ड' से लिया गया है। नागमती की वियोग वेदना जब चरम सीमा पर पहुँच जाती है तो वह अपने प्रिय का पता पूछने के लिए राजप्रसाद को छोड़कर जंगल में या खुले में आ जाती हैं। वन में उसे विभिन्न प्रकार के पक्षी मिलते हैं। वह उन सभी के समक्ष अपना दुखड़ा रोती हैं और अपना 'रानीपन' भूल जाती है। इसी स्थिति को इस पद्यांश में चित्रित किया गया है। इस पद्यांश के दो अर्थ किए गए हैं।

पहला अर्थ पक्षियों के संदर्भ से है और दूसरा अर्थ नागमती के संदर्भ से। श्लेष की सहायता से किये गये ये दोनों अर्थ क्रमशः इस प्रकार हैं–

टिप्पणी

पक्षियों के संदर्भ में –कवि कह रहा है कि नागमती ने मोरनी बनकर वनवास लिया, किन्तु बैरिन सौत ने उसे फँसाने के लिए वहाँ भी फंदा लगा रखा है जो विरह के तीक्ष्ण बाणों के समान उसके हृदय को व्यथित करता है। वह कौए को देखकर कहती है कि हे कौए! यदि स्वामी आ रहे हों तो उड़ जा। हारिल पक्षी मार्ग में ही टिक कर बैठ गया है। अब मैं किस पक्षी को स्वामी के पास भेजूँ? हे धौरी? हे पंडुक! तुम प्रिय के नाम का उच्चारण करो। जो जोड़े से रहता है, वह गोरैया पक्षी होता है। हे बया! तू जा। मैं प्यारे कंठलवा को लेती हूँ। कोयल बनकर मैं पुकारती रही। महरि (ग्वालिनि) 'लो दही, लो दही' पुकार रही है। पेड़ पर किलोरी तथा जल में हंस क्रीड़ा कर रहे हैं। नीलकंठ हृदय में घुसकर उड़ रहा है।

नागमती के संदर्भ में

कवि कह रहा है कि नागमती पति की खोज करने के लिए मोरनी के समान वन में जा पहुँची और वहीं विभिन्न पक्षियों से पूछने का प्रयत्न करती हुई भटकने लगी। यहाँ 'पुछार' शब्द पूछने में वाली के अर्थ में आया हैं नागमती ने अपने पति का पता पूछने वाली बनकर वनवास लिया, परंतु वहाँ उसकी बैरिन सौत ने पक्षियों को फँसाने वाला फंदा लगा रखा है।

अत: कोई पक्षी उसके पास तक नहीं पहुँचता है। यह देखकर नागमती को अपने पति की याद सताने लगी और विरह उसके हृदय में तीखे बाण के समान वेदना उत्पन्न करने लगा। वह एक वृक्ष पर कौए को देखकर उससे कहती है कि हे कौए! यदि मेरे स्वामी आ रहे हैं तो उड़जा। (कौए से इस प्रकार कहने से यदि कौआ उड़ जाता है तो शुभ शकुन माना जाता है जो प्रियतम के आने का सूचक माना जाता है।) नागमती कह रही है कि मैं मार्ग पर भटकती हुई बहुत थक गयी हूं। अब मैं किस पक्षी को अपने पति के पास भेजूँ क्योंकि सौत के फंदे के भय से कोई भी पक्षी मेरे पास तक नहीं आता है।

मैं प्रियतम का नाम रटते-रटते श्वेत और पीली पड़ गयी हूँ। यदि पति के हृदय में मेरे प्रति क्रोध की भावना है अर्थात् वह मुझसे रुष्ट हैं तो मेरे लिए इस संसार में अब कोई स्थान नहीं रह गया है, जहाँ मैं रह सकूँ। अत: तू जाकर मेरे पति से मेरा संदेश कहकर लौट आ और इस प्रकार मुझे अपने पति के कण्ठ से लगने का सौभाग्य प्रदान कर।

नागमती कहती है कि वही पक्षी गौरवशाली होगा जो पति से मेरा मिलन करायेगा। मैं पति का नाम पुकारते-पुकारते कोयल बन गयी हूँ। तू जाकर स्वामी से कहना कि तुम्हारी स्त्री बराबर 'बचाओ, बचाओ, विरह मुझे जलाये डाल रहा है' इस प्रकार निरन्तर पुकार रही है।

जब मैं वृक्ष पर तिलोरी को तथा जल में हंसों को क्रीडा करते हुए देखती हूँ तो मुझे अपने पति की स्मृति सताने लगती है और विरह मेरे हृदय में घुसकर मुझे नष्ट करने लगता है। अन्त में वह कहती है कि मैं जिस पक्षी के पास जाकर अपनी विरह-व्यथा निवेदित करती हूँ, वही पक्षी मेरी विहराग्नि की ज्वाला से जलकर भस्म हो जाता है और उस वृक्ष के सारे पत्र जल जाने के कारण वह पत्रहीन हो जाता है।

विशेष – प्रस्तुत पद्यावतरण के अन्तर्गत मुद्रा, श्लेष और ऊहा अलकारों का प्रयोग हुआ है, साथ ही मसनवी शैली का प्रयोग भी सार्थक बन पड़ा है।

पाट महादेइ! हिये न हारू। समुझि जीउ चित चेतु सँभारू॥
भौंर कँवल सँग होड़ मेरावा। सँवरि नेह मालति पहँ आवा॥
पपिहै स्वाती सौं जस प्रीती। टेकु पियास बाँधु मन थीती॥
धरतिहिं जैस गगन सौं नेहा। पलटि आव बरषा ऋतु मेहा॥

टिप्पणी

पुनि बसंत ऋतु आव नबेली। सो रसे सो मधुकर सो बेली॥
जिनि असे जीव करसि तू बारी। यह तरिबर पुनि उठिहिं सँवारी॥
दिन दस बिनु जल सूखि बिधंसा। पुनि सोई सरबर सोई हंसा॥
मिलहिं जो बिछुरे जन, अंकम भेटि गहंत।
तपनि मृगसिरा जे सहैं, ते अद्रा पलुहंत॥

सप्रसंग व्याख्या –प्रस्तुत पद्मावतरण जायसी कृत पद्मावत काव्य के 'नागमती वियोग खण्ड' से लिया गया है। नागमती पति-वियोग से पीड़ित है। उसकी सखियाँ उसे घीरज बँधाती हुई कहती हैं कि पटरानी जी! आप अपने हृदय में इतनी निराश न हों। धैर्य धारण कर स्वयं को संभालिए।

जब बिछुड़े हुए पति तुम्हें पुनः मिलेंगे तो वे (द्विगुणित अनुराग से) तुम्हें प्रगाढ़ आलिंगन में बाँध लेगे; क्योंकि जो मृगशिरा नक्षत्र (ज्येष्ठ मास) की तपन सहते हैं, वे आर्द्रा नक्षत्र (आषाढ़) की वर्षा से पुनः पल्लवित (हरे-भरे) हो उठते हैं। पति-वियोग से पीड़ित नागमती को उनकी सखियाँ यह धीरज बँधाती हैं कि महारानी आप निराश मत होइए। महाराज आपके पूर्व स्नेह को स्मरण करके पुनः वापस आ जाएँगे। आकाश पृथ्वी से मेघों की वर्षा की बूंदों के रूप में वापस आ मिलता है। पपीहा स्वाति नक्षत्र का जल पीकर अपनी प्यास बुझाता है।

चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा। साजा बिरह दुद दल बाजा॥
धूम, साम, धौरे घन धाए। सेत धजा बग पाँति देखाए॥
खड़ग श्बीजु चमकै चहूँ ओरा। बुंद बान बरसहिं घनघोरा॥
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी। कंत! उबारु मदन हाँ घेरी॥
दादुर मोर कोकिला पीऊ। गिरै बीजु घट रहै न जीऊ॥
पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हाँ बिनु नाह मंदिर को छावा?
अद्रा लाग लागि भुई लेई। मोहिं बिनु पिउ को आदर देई?
जिन्ह घर कंता ते सुखी , तिन्ह गारौ औ गर्ब।
कंत पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सबै॥

सप्रसंग व्याख्या – प्रस्तुत पद्मावतरण जायसी कृत पद्मावत काव्य के 'नागमती वियाग खंड' से लिया गया है। राजा रत्ससेन पद्मावती को पाने के लिए योगी बनकर सिंहलगढ़ की ओर चले गये हैं। लम्बे समय तक न लौटने पर रानी नागमती शंकित होती है तथा बिरह की अग्नि में जलने लगती है। आर्द्रा नक्षत्र के उदय होने पर घनघारे वर्षा होती है। ऐसे वातावरण में उसकी विरह-वेदना और बढ़ जाती है। वह अनुभव करती है कि जिन स्त्रियों के पति घर पर होते हैं, वे ही सुखी होती है। उन्हीं को पत्नी होने का गौरव प्राप्त होता है। विरहिणियों को तो दुःखी जीवन ही बिताना पड़ता है। मेरा पति बाहर है तो मैं तो सभी सुख भूल गयी हूं। आषाढ़ के महीने में नागमती को बिजली की चमक तलवार जैसी दिखाई पड़ती है तथा मेघों की गड़गड़ाहट युद्ध के जुगाड़ों के समान प्रतीत होती है। आषाढ़ माह में चारों ओर मेंढक, मोर तथा कोयलों की आवाजें सुनायी पड़ती हैं। आषाढ़ माह में जिन स्त्रियों के पति घर पर हैं, वे गर्व का अनुभव करती हैं।

3.8 नागमती-वियोग-खंड (पद्मावत): मलिक मोहम्मद जायसी

नागमती चितउर-पथ हेरा। पिउ जो गए पुनि कीन्ह न फेरा॥
नागर काहु नारि बस परा। तेड़ मोर पिठ मोसौं हरा॥
सुआ काल होड़ लेड़गा पीऊ। पिउ नहिं जात, जात बरू जीऊ॥
भएउ नरायन बावन करा। राज करत राजा बलि छरा॥

मलिक मुहम्मद जायसी: पद्मावत

टिप्पणी

करन पास लीन्हेउ कैं छंदू। बिप्र रूप धरि झिलमिल इंदू॥
मानत भोगगोपिचंद भोगी। लेइ अपसबा जलंधर जोगी॥
लेइगा कृस्नहि गरुड़ अलोपी। कठिन बिछोह, जियहिं किमि गोपी?॥
सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह?।
झुरि झुरि पींजर हौं भई, बिरह काल मोहि दीन्ह॥1॥

पिउ-बियोगअस बाउर जीऊ। पपिहा निति बोलै 'पिउ पीऊ'॥
अधिक काम दाधै सो रामा। हरि लेइ सुबा गएउ पिउ नामा॥
बिरह बान तस लाग न डोली। रकत पसीज, भीजि गइ चोली॥
सूखा हिया, हार भा भारी। हरे हरे प्रान तजहिं सब नारी॥
खन एक आव पेट महँ साँसा। खनहिं जाइ जिउ, होइ निरासा॥
पवन डोलावहिं, सीचहिं चोला। पहर एक समुजहिं मुख-बोला॥
प्रान पयान होत को राखा?। को सुनाव पीतम कै भाखा?॥
आजि जो मारै बिरह कै, आगि उठै तेहि लागि
हंस जो रहा सरीर मह, पाँख जरा, गा भागि॥2॥

पाट-महादेइ! हिये न हारू। समुझि जीऊ, चित चेतु सँभारू॥
भौंर कँवल सँग होइ मेरावा। सँवरि नेह मालति पहँ आवा॥
पपिहै स्वाती सौं जस प्रीती। टेकु पियास; बाँधु मन थीती॥
धरतहिं जैस गगन सौं नेहा। पलटि आव बरषा ऋतु मेह।
पुनि बसंत ऋतु आव नबेली। सो रस, सो मधुकर, सो बेली॥
जिनि अस जीव करसि तू बारी। यह तरिवर पुनि उठिहि सँवारी॥
दिन दस बिनु जल सूखि बिधांसा। पुनि सोई सरवर, सोई हंसा॥
मिलहिं जो बिछुरे साजन, अंकस भेंटि अहंत।
तपनि मृगसिरा जे सहैं, ते अद्रा पलुहंत॥3॥

चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा।
धूम, साम, धीरे घन धाए। सेत धजा बग-पाँति देखाए॥
खडग-बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुंद-बान बरसहिं घन घोरा॥
ओनई घटा आइ चहूँ फेरी। कंत! उबारु मदन हों घेरी॥
दादुर मोर कोकिला, पीऊ। गिरै बीजु, घट रहै न जीऊ॥
पुष्प नखत सिर ऊपर आवा। हों बिनु नाह, मँदिर को छाँवा?॥
अद्रा लाग, लागि भुइँ लेई। मोहिं बिनु पिउ को आद देई?॥
जिन्ह घर कता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्ब।
कंत पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्ब॥4॥

सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी, हौं बिरह झुरानी॥
लाग पुनरबसु पीउ न देखा। भड़ बाउरि, कहँ कंत सरेखा॥
रकत कै आँसु परहिं भुइँ टूटी। रेंगि चली जस बीरबहूटी॥

टिप्पणी

सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। हरियारि भूमि, कुसुंभी चोला॥
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा। बिरह झुलाड़ देह झकझोरा॥
बाट असूझ अथाह गँभीरी। जिउ बाउर, भा फिरै भँभीरी॥
जग जल बूड जहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी॥
परबत समुद, अगम बिच, बीहड़ घन बनढाँख।
किमि कै भेंटौ कंत तुम्ह? ना मोहि पाँव न पाँख॥5॥

भा भादों दूभर अति भारी। कैसे भौंर रैनि अँधियारी॥
मंदिर सून पिउ अनतै बसा। सेज नागिनी फिरि फिरि डसा॥
रहौं अकेलि गहे एक पाटी। नैन पसारि मरौं हिय फाटी॥
चमक बीजु, घन गरजि तरासा। बिरह काल होड़ जीउ गरासा॥
बरसै मघा झकोरि झकोरि। मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी॥
धनि सूखे भरे भादौं माहाँ। अबहुँ न आएन्हि सीचेन्हि नाहाँ॥
पुरबा लाग भूमि जल पूरी। आक जवास भई तस झूरी॥
थल जल भरे अपूर सब, धरनि गगन मिलि एक।
जनि जोबन अवगाह महँ दे बूडत, पिउ! टेक॥6॥

लाग कुवार, नीर जग घटा। अबहूँ आउ, कंत! तन लटा॥
तोहि देखे, पिउ! पलुहै कया। उतरा चीतु, बहुरि करू मया॥
चित्रा मित्र मीन कर आवा। पपिहा पीउ पुकारत पावा॥
उआ अगस्त, हरित-घन गाजा। तुरय पलानि चढ़े रन राजा॥
स्वाति-बूँद चातक मुख परे। समुद्र सीप मोती सब भरे॥
सरवर सँवरि हंस चलि आए। सारस कुरलहिं, खँजन देखाए॥
भा परगास, काँस बन फूले। कंत न फिरे, बिदेसहि भूले॥
बिरह-हस्ति तन सालै, घाय करै चित चूर।
वेगि आइ, पिउ! बाजहु, गाजहु होड़ सदूर॥7॥

कातिक सरद-चंद उजियारी। जग सीतल, हौं बिरहै जारी॥
चौदह करा चाँद परगासा। जनहुँ जरैं सब धरति अकासा॥
तम मन सेज करै अगिदाहू। सब कहँ चंद, खएउ मोहिं राहू॥
चहूँ खंड लागै अंधियारा। जौं घर नाहीं कंत पियारा॥
अबहूँ, निठुर! आउ एहि बारा। परब देवारी होड़ संसारा॥
सखि झूमक गावैं अँग मोरी। हौं झुरावँ, बिछुरी मोरि जोरी॥
जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूजा। मो कहँ बिरह, सवति दुख दूजा॥
सखि मानैं तिउहार सब गाइ, देवारी खेलि।
हौं का गावौं कंत बिनु, रही दार सिर मेलि॥8॥

अगहन दिवस घटा, निसि बाढ़ी। दुभर रैनि, जाइ किमि गाढ़ी?॥
अब यहि बिरह दिवस भा राती। जरौं बिरह जस दीपक बाती॥

टिप्पणी

काँपै हिया जनावै सीऊ। तौ पै जाइ होड़ सँग पीऊ॥
घर घर चीर रचे सब काहू। मोर रूप-रँग लेड़गा नाहू॥
पलटि त बहुरा गा जो बिछोई। अबहूँ फिरै, फिरै रँग सोई॥
वज्र-अगिनि बिरहिन हिय जारा। सुलुगि-सुलुगि दगथै हाइ छारा॥
यह दुख-दगध न जानै कंतु। जोबन जनम करै भसमंतू॥
श्पिउ सौ कहेहु सँदेसडा, हे भौंरा! हे काग!
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहि क धुवाँ हम्ह लाग॥9॥

पूस जाड़ थर थर तन काँपा। सुरुज जाइ लंका-दिसि चाँपा॥
बिरह बाढ़, दारुन भा सीऊ। कँपि कँपि मरौं, लेइ हरि जीऊ॥
कंत कहाँ लागौं ओहि हियरे। पंथ अपार, सूझ नहिं नियरे॥
सौंर सपेती आबै जूड़ी। जानहु सेज हिवंचल बूड़ी॥
चकई निसि बिछूरे दिन मिला। हां दिन राति बिरह कोकिला॥
रैनि अकेलि साथ नहिं सखी। कैसे जियै बिछोही पखी॥
बिरह सचान भएउ तन जाड़ा। जियत खाइ औ मुए न छाँडा॥
रक्त ढुरा माँसू गरा, हाड भएउ सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई, पाउ समेटहि पंख॥10॥

लागेउ माघ, परै अब पाला। बिरह काल भएउ जड काला॥
पहल पहल तन रूई झाँपै। हहरि हहरि अधिकौ हिय काँपै॥
आइ सूर होइ तपु, रे नाहा। तोहि बिनु जाड न छूटै माहा॥
एहि माह उपजै रसमूलू। तू सो भौंर, मोर जोबन फूलू॥
नैन चुवहिं जस महवट नीरू। तोहि बिनु अंग लाग सर-चीरू॥
टप टप बूँद परहिं जस ओला। बिरह पवन होइ मारै झोला॥
केहि क सिंगार, कौ पहिरू पटोरा। गीउ न हार, रही होइ डोरा॥
तुम बिनु कापै धनि हिया, तन तिनउर भा डोल।
तेहि पर बिरह जराइ कै चहै उढावा झोल॥11॥

फागुन पवन झकोरा बहा। चौगुन सीउ जाइ नहिं सहा॥
तन जस पियर पात भा मोरा। तेहि पर बिरह देइ झकझोरा॥
तरिवर झरहि झरहिं बन ढाखा। भइूट ओनंत फूलि फरि साखा॥
करहिं बनसपति हिये हुलासू। मो कहूँ भा जग दून उदासू॥
फागू करहिं सब चाँचरि जोरी। मोहि तन लाइ दीन्ह जस होरी॥
जौ पै पीउ जरत अस पावा। जरत-मरत मोहिं रोष न आवा॥
राति-दिवस सब यह जिउ मोरे। लगौं निहोर कंत अब तोरे॥
यह तन जारों छोर कै, कहौं कि 'पवन! उडाव'।
मकु तेहि मारग उडि परै कंत धरै जहँ पाव॥12॥

चैत बसंता होइ धमारी। मोहिं लेखे संसार उजारी॥

टिप्पणी

पंचम बिरह पंच सर मारे। रकत रोइ सगरौं बन ढारै॥
बूडि उठे सब तरिवर-पाता। भजि मजीठ, टेसु बन राता॥
बौरे आम फरैं अब लागै। अबहुँ आउ घर, कंत सभागे॥
सहस भाव फूलीं बनसपती। मधुकर घूमहिं सँवरि मालती॥
मोकहँ फूल भए सब काँटे। दिस्टि परत जस लागहिं चाँटे॥
फिर जोबन भए नारँग साख। सुआ-बिरह अब जाइ न राखा॥
घिरिन परेवा होइ, पिउ! आउ बेगि, परु टूटि।
नारि पराए हाथ है, तोह बिनु पाव न छूटि॥13॥

भा बैसाख तपनि अति लागी। चोआ चीर चंदन भा आगि॥
सूरुज जरत हिवंचल तअका। बिरह-बजागि सौंह रथ हाँका॥
जरत बजागिनि करु, पिउ! छाहाँ। आइ बुझाउ, अँगारन्ह माहाँ॥
तोहि दरसन होइ सीतल नारी। आइ आगि तें करु फुलवरी॥
लागिउँ जरै, जरै जस भारू। फिर फिर भूंजेसि, तजेउँ न बारू॥
सरवर-हिया घटत निति जाड़। टूक-टूक होड़ कै बिहराई॥
बिहरत हिया करहु, पिउ! टेका। दीठी-दबँगरा मेरवहु एका॥
कँवल जो मानसर बिनु जल गएउ सुखाइ।
कवहूँ बेलि फिरि पलुहै जौ पिउ सींचे आइ॥14॥

जेठ जरै जग चलै लुवारा। उठहि बवंडर परहिं अँगारा॥
बिरह गाजि हनुवंत होड़ जागा। लंका-दाह करै तनु लागा॥
चारिहु पवन झकोरे आगी। लंका दाहि पलंका लागी॥
दहि भइ साम नदी कालिंदी। बिरह क आगि कठिन अति मंदी॥
उठै आगि औ आवै आँधी। नैन न सूझ, मरौ दु:ख-बाँधी॥
अधजर भइउ, माँसु तनु सूखा। लागेउ बिरह काल होड़ भूखा॥
माँसु खाइ सब हाडन्ह लागै। अबहूँ आउ; आवत सुनि भागै॥
गिरि, समुद्र, ससि, मेघ, रबि सहि न सकहिं वह आगि।
मुहम्मद सती सराहिए, जरै जो अस पिउ लागि॥15॥

तपै लागि अब जेठ-असाढ़ी। मोहि पिउबिनु छाजनि भइ गाढ़ी॥
तन तिनउर भा, झूरौं खरी। भट्ट बरखा, दुख आगरि जरी॥
बंध नाहिं औ कंध न कोई। बात न आव कहां का रोई?॥
साँठि नाहिं, जग बात को पूछा?। बिनु जिउ फिरै मूँज-तनु छूँछा॥
भइ दुहेली टेक बिहूनी। थाँभ नाहि उठि सकै न थूनी॥
बरसे मेह, चुवहिं नैनाहा। छपर छपर होड़ रहि बिनु नाहा॥
कोरौं कहाँ ठाट नव साजा?। तुम बिनु कंत न छाजन छाजा॥
अबहूँ मया-दिस्ट करि, नाह निठुर! घर आउ।
मँदिर उजार होत है, नव कै आई बसाउ॥16॥

टिप्पणी

रोड़ गँवाए बारह मासा। सहस सहस दुख एक एक साँसा॥
तिल तिल बरख बरख परि जाई। पहर पहर जुग जुग न सेराई॥
सो नहिं आवै रूप मुरारी। जासौं पाव सोहाग सुनारी॥
साँझ भए झुरु झुरि पथ हेरा। कौनि सो घरी करै पिउ फेरा?॥
दहि कोइला भइ कंत सनेहा। तोला माँसु रही नहिं देहा॥
रकत न रहा, बिरह तन गरा। रती रती होइ नैनन्ह ढरा॥
पाय लागि जोरै धनि हाथा। जारा नेह, जुडावहु, नाथा॥
बरस दिवस धनि रोड़ कै, हारि परी चित झंखि।
मानुष घर घर बझि कै , बूझे निसरी पंखि॥7॥

भई पुछार, लीन्ह बनवासू। बैरिनि सवति दीन्ह चिलवाँसू॥
होड़ खर बान बिरह तनु लागा। जौ पिउ आवै उडहि तौ कागा॥
हारिल भई पंथ मैं सेवा। अब तहँ पठवौं कौन परेवा?॥
धौरी पंडुक कहु पिउ नाऊँ। जौं चित रोख न दूसर ठाऊँ॥
जाहि बया होड़ पिउ कँठ लवा। करै मेराव सोइ गौरवा॥
कोइल भई पुकारति रही। महरि पुकारै 'लेइ लेई दही'।
पेड़ तिलोरी औ जल हंसा। हिरदय पैठि बिरह कटनंसा॥
जेहि पखी के निअर होइ कहै बिरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात॥18॥

कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई। रकत-आँसु घुँघुची बन बोई॥
भइ करमुखी नैन तन राती। को सेराव? रकत-आँसु घुँघुचि बन बोई॥
भइ करमुखी नैन तन राती। को सेराव? बिरहा-दुख ताती॥
जहँ जहँ ठाढ़ि होइ वनबासी। तहँ तहँ होइ घुँघुँचि कै रासी॥
बूँद बूँद महँ जानहुँ जीऊ। गुंजा गूँजि करै 'पिउ पीऊ'॥
तेहि दुख भए परास निपाते। लोहू बुडि उठे होइ राते॥
राते बिंब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक, फाट हिय गोहूँ॥
दैखों जहाँ होइ सोइ राता। जहाँ सो रतन कहै को बाता?॥
नहिं पावस ओहि देसरा: नहिं हेवंत बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा, जेहि सुनि आवै कंत॥19॥

3.9 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पद्मावत का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. सूफी काव्यधारा के चार ग्रंथों का विस्तार से परिचय दीजिये।
3. नागमती वियोग खंड का सारांश लिखिए।
4. नागमती का चरित्र चित्रण कीजिए।
5. पद्मावत की विशेषताओं पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

टिप्पणी

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. पद्मावत सूफी काव्य धारा का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। इस कथन को सिद्ध कीजिए।
2. नागमती के संदर्भ में संक्षिप्त टिप्पणी करें।
3. नागमती का विरह वर्णन अपने शब्दों में करें। तथा इसका निष्कार्ष लिखें।
4. हीरामन की कथा संक्षेप में समझाएँ ।
5. "शैली" को अपने शब्दों में समझाऐं।

♦♦♦♦♦

इकाई 4

मलिक भ्रमरगीतः सूरदास

संरचना

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 जीवन परिचयः सूरदास
4.4 अष्टछाप के कवि
4.5 सूरदास की रचनाएँ
4.6 भ्रमरगीत
4.7 भ्रमरगीत परंपरा
4.8 सूरदास का भ्रमरगीत
4.9 भ्रमरगीत की प्रमुख व्याख्याएँ
4.10 अभ्यास प्रश्न

4.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई इस पाठ्यक्रम की तृतीय इकाई है। इस इकाई में सूरदास कृत भ्रमरगीत का शेष अध्ययन प्रस्तुत है। इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी–

1. सूरदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में जान सकेंगे।
2. सूरदास कृत भ्रमरगीत की विशेषताओं को जान सकेंगे।
3. भ्रमरगीत परम्परा के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना

'सूरदास' सूरदास जी का प्रधान एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें प्रथम नौ अध्याय संक्षिप्त है, दशम स्कन्ध का बहुत विस्तार हो गया है। इसमें भक्ति की प्रधानता है। इसके दो प्रसंग 'कृष्ण बाल-लीला' और 'भ्रमरगीत-प्रसंग' अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इसके विषय में आचार्य शुक्ल ने लगभग 400 पदों को सूरसागर के भ्रमरगीत से छांटकर उनको 'भ्रमरगीत सार' के रूप में संग्रह किया था। भ्रमरगीत में सूरदास ने उन पदों को समाहित किया है जिनमें मथुरा से कृष्ण द्वारा उद्धव को ब्रज संदेस लेकर भेजते हैं। उद्धव योग और ब्रह्म के ज्ञाता हैं। उनका प्रेम से दूर-दूर का कोई सम्बन्ध नहीं है। जब गोपियाँ व्याकुल होकर उद्धव से कृष्ण के बारे में बात करती हैं और उनके बारे में जानने को उत्सुक होती हैं तो वे निराकार ब्रह्म और योग की बातें करने लगते हैं तब खीजी हुई गोपियाँ उन्हें "काले भँवरेश की उपमा देती हैं। इन्हीं लगभग 100 पदों का समूह भ्रमरगीत या 'उद्धव-संदेश' कहलाता है। भ्रमरगीत में गोपियों की वचनवक्रता अत्यंत मनोहारिणी है। ऐसा सुंदर उपालंभ काव्य और कहीं नहीं मिलता।

4.3 जीवन परिचय: सूरदास

सूरदास हिन्दी के भक्तिकाल के महान कवि थे। हिन्दी साहित्य में भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक और ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि महात्मा सूरदास हिंदी साहित्य के सूर्य माने जाते हैं। सूरदास का जनम 1478 ई० में रुनकता क्षेत्र में हुआ। यह गाँव मथुरा-आगरा मार्ग के किनारे स्थित हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि सूर का जन्म दिल्ली के पास सीही नामक स्थान पर एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वह बहुत विद्वान थे, उनकी लोग आज भी चर्चा करते हैं। मथुरा के बीच गऊघाट पर आकर रहने लगे थे। सूरदास के पिता, रामदास बैरागी प्रसिद्ध गायक थे। सूरदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद है। साहित्य लहरीश सूर की लिखी रचना मानी जाती है। इसमें साहित्य लहरी के रचना-काल के सम्बन्ध में निम्न पद मिलता है–

मुनि पुनि के रस लेख।
दसन गौरीनन्द को लिख सुबल संवत् पेख॥

इसका अर्थ संवत् 1607 ई० में माना गया है, अतएव 'साहित्य लहरी का रचना काल संवत् 1607 वि० है। इस ग्रन्थ से यह भी प्रमाण मिलता है कि सूर के गुरु श्री वल्लभाचार्य थे। सूरदास का जन्म 1540 ई० के लगभग ठहरता है, क्योंकि वल्लभ सम्प्रदाय में ऐसी मान्यता है कि बल्लभाचार्य सूरदास से दस दिन बड़े थे और बललभाचार्य का जन्म उक्त संवत् की वैशाख कृष्ण एकादशी को हुआ था इसलिए सूरदास की जन्म-तिथि वैशाख शुक्ला पंचमी, संवत् 1535 वि० समीचीन जान पड़ती है। अनेक प्रमाणों के आधार पर उनका मृत्यु संवत् 1620 से 1648 ई० के मध्य स्वीकार किया जाता है। रामचन्द्र शुक्ल जी के मतानुसार सूरदास का जन्म संवत् 1540 वि० के सन्निकट और मृत्यु संवत् 1620 ई० के आसपास माना जाता है।

टिप्पणी

श्री गुरु बल्लभ तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो।

सूरदास की आयु 'सूरसारावली' के अनुसार उस समय 67 वर्ष थी। 'चौरासी वैष्णवन सूर वार्ता' के आधार पर उनका जन्म रुनकता अथवा रेणु का क्षेत्र (वर्तमान जिला आगरान्तर्गत) में हुआ था।

मथुरा और आगरा के बीच गऊघाट पर ये निवास करते थे। बल्लभाचार्य से इनकी भेंट वहीं पर हुई थी। 'भावप्रकाश' में सूर का जन्म स्थान सीही नामक ग्राम बताया गया है। वे सारस्वत ब्राह्मण थे और जन्म के अंधे थे। 'आइने अकबरी' में (संवत् 1653 ई०) तथा 'मुतखबुत-तवारीख' के अनुसार सूरदास को अकबर के दरबारी संगीतज्ञों में माना है।

4.4 अष्टछाप के कवि

1. कुम्भनदास
2. परमानन्द दास
3. कृष्ण दास
4. सूरदास
5. गोविंद स्वामी
6. छीत स्वामी
7. चतुर्भुज दास
8. नंददास

सूरदास जन्म से अंधे थे या नहीं, इस संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं। सूरदास श्रीनाथ की 'संस्कृतवार्ता मणिपाला', श्री हरिराय कृत 'भाव-प्रकाश', श्री गोकुलनाथ की 'निजवार्ता' आदि ग्रंथों के आधार पर, जन्म के अंधे माने गए हैं। लेकिन राधा-कृष्ण के रूप सौन्दर्य का सजीव चित्रण, नाना रंगों के वर्णन, सूक्ष्म पर्यवेक्षणशीलता आदि गुणों के कारण अधिकतर वर्तमान विद्वान सूर को जन्मान्ध स्वीकार नहीं करते। श्यामसुंदर दास ने इस सम्बन्ध में लिखा है– "सूर वास्तव में जन्मांध नहीं थे, क्योंकि शृंगार तथा रंग-रूपादि का जो वर्णन उन्होंने किया है वैसा कोई जन्मान्ध नहीं कर सकता।" डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है– "सूरसागर के कुछ पदों से यह ध्वनि अवश्य अवश्य निकलती है कि सूरदास अपने को जन्म का अंधा और कर्म का अभागा कहते हैं, पर सब समय इसके अक्षरार्थ को ही प्रधान नहीं मानना चाहिए।"

4.5 सूरदास की रचनाएँ

सूरसागर जी द्वारा लिखित पाँच ग्रंथ बताए जाते हैं–

१. **सूरदास** – जो सूरदास की प्रसिद्ध रचना है। जिसमें सवा लाख पद संग्रहित थे। किंतु अब सात-आठ हजार पद ही मिलते हैं।

२. **सूरसारावली**

३. **साहित्य-लहरी** –जिसमें उनके कूट पद संकलित हैं।

४. **नल-दमयन्ती**

५. **ब्याहलो**

टिप्पणी

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित पुस्तकों की विवरण तालिका में सूरदास के 16 ग्रंथों का उल्लेख है। इनमें सूरसागर, सूरसारावली साहित्य लहरी, नल-दमयन्ती, ब्याहलो के अतिरिक्त दशमस्कंध टीका, नागलीला, भागवत , गावर्धन लीला, सूरपचीसी, सूरसागर सार, ग्राणप्यारी आदि ग्रंथ सम्मिलित हैं। इनमें प्रारम्भ के तीन ग्रंथ ही महत्वपूर्ण समझे जाते हैं, साहित्य लहरी की प्राप्त प्रति में बहुत प्रक्षिप्तांश जुड़े हुए हैं।

साहित्य लहरी, सूरसागर, सूर की सारावली।
श्रीकृष्ण जी की बाल-छवि पर लेखनी अनुपम चली।।

1. सूरसागर का मुख्य वर्णन विषय श्री कृष्ण की लीलाओं का गान रहा है।
2. सूरसारावली में कवि ने जिन कृष्ण विषयक कथात्मक और सेवा परक पदों का गान किया। उन्हीं के सार के रूप में उन्होंने सारावली की रचना की है।
3. सहित्यलहरी में सूर के दृष्टिकूट पद संकलित हैं।

सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ

1. सूरदास के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह से मनुष्य को सद्गति मिल सकती है। अटल भक्ति कर्मभेद, जातिभेद, ज्ञान योग से श्रेष्ठ है।
2. सूर ने वात्सल्य, श्रृंगार और शांत रसों को मुख्य रूप से अपनाया है। सूर ने अपनी कल्पना और प्रतिभा के सहारे कृष्ण के बाल्य-रूप का अति सुंदर, सरस, सजीव और मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है। बालकों की चपलता, स्पर्धा, अभिलाषा, आकांक्षा का वर्णन करने में विश्वव्यापी द्य बाल-स्वरूप का चित्रण किया है। बाल-कृष्ण की एक-एक चेष्टा का चित्रण में कवि ने कमाल की होशियारी एवं सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है--

मैया कबहिं बढैगी चौटी?
किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।

3. सूर के कृष्ण प्रेम और माधुर्य प्रतिमूर्ति है। जिसकी अभिव्यक्ति बड़ी ही स्वाभाविक और सजीव रूप में हुई है। जो कोमलकांत पदावली, भावानुकूल शब्द-चयन, सार्थक अलंकार-योजना, धारावाही प्रवाह, संगीतात्मकता एवं सजीवता सूर की भाषा में है, उसे देखकर तो यही कहना पड़ता कि सूर ने ही सर्वप्रथम ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप दिया है।
4. सूर ने भक्ति के साथ श्रृंगार को जोड़कर उसके संयोग वियोग पक्षों को जैसा वर्णन किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।
5. सूर ने विनय के पद भी रचे हैं, जिसमें उनकी दास्य भावना कहीं कहीं तुलसीदास से आगे बढ़ जाती है–

हमारी प्रभु औगुन चित न धरौ।
समदरसी है मान तुम्हारौ, सोई पार करौ।

6. सूर ने स्थान-स्थान पर कूट पद भी लिखे हैं।
7. प्रेम के स्वच्छ और मार्जित रूप का चित्रण भारतीय साहित्य में किसी और कवि ने नहीं कया है। यह सूरदास की अपनी विशेषता है। वियोग के समय राधिका का जो चित्र सूरदास ने चित्रित किया है, वह इस प्रेम के योग्य है।
8. सूर ने यशोदा आदि के शील, गुण आदि का सुंदर चित्रण किया है।

टिप्पणी

9. सूर का भ्रमरगीत वियोग-शृंगार का ही उत्कृष्ट ग्रंथ नहीं है, उसमें सगुण और निर्गुण का भी विवेचन हुआ है। इसमें विशेषकर उद्धव-गोपी संवादों मे हास्य-व्यंग्य के अच्छे छींटे भी मिलते है।
10. सूर काव्य में प्रकृति-सौंदर्य का सूक्ष्म और सजीव वर्णन मिलता है।
11. सूर की कविता में पुराने आख्यानों और कथनों का उल्लेख बहुत स्थानों में मिलता है।
12. सूर के गेय पदों में हृदयस्थ भावों की बड़ी सुंदर व्यंजना हुई है। उनके कृष्ण-लीला संबंधी पदों में सूर के भक्त और कवि हृदय की सुंदर झाँकी मिलती है। सूर का काव्य भाव-पक्ष की दृष्टि से ही महान नहीं है, कला-पक्ष की दृष्टि से भी वह उतना ही महत्वपूर्ण है। सूर की भाषा सरल, स्वाभाविक तथा वाग्वैदिग्धपूर्ण है। अलंकार-योजना की दृष्टि से भी उनका कला-पक्ष सबल है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सूर की कवित्व-शक्ति के बारे में लिखा है– "सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन करते हैं तो मानो अलंकार-शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है। उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदास हिंदी साहित्य के महाकवि हैं, क्योंकि उन्होंने न केवल भाव और भाषा की दृष्टि से साहित्य को सुसज्जित किया, वरन कृष्ण-काव्य की विशिष्ट परंपरा को भी जन्म दिया।

4.6 भ्रमरगीत

भ्रमरगीत भारतीय काव्य की एक पृथक काव्य परम्परा है। हिन्दी में सूरदास, नंददास, परमानंददास, मैथिलीशरण गुप्त (द्वापर) और जगन्नाथदास रत्लाकर ने भ्रमरगीत की रचना की है। भारतीय साहित्य में 'भ्रमर' (भौंरा) रसलोलुप नायक का प्रतीक माना जाता है। वह व्यभिचारी है जो किसी एक फूल का रसपान करने तक सीमित नहीं रहता अपितु, विविध पुष्पों का रसास्वादन करता है।

4.7 भ्रमरगीत परम्परा

हिन्दी काव्य में भ्रमरगीत का मूलम्रोत, श्रीमद्भागवत पुराण है जिसके दशम स्कंध के 43वें एवं 47वें अध्याय में भ्रमरगीत प्रसंग है। श्रीकृष्ण गोपियों को छोड़कर मथुरा चले गए और गोपियों को छोड़कर मथुरा चले गए और गोपियाँ विरह विकल हो गई। कृष्ण मथुरा में लोकहितकारी कार्यों में व्यस्त थे किन्तु उन्हें ब्रज की गोपियों की याद सताती रहती थी। उन्होंने अपने अभिन्न मित्र उद्धव को संदेशंवाहक बनाकर गोकुल भेजा। वहाँ गोपियों के साथ उनका वार्तालाप हुआ तभी एक भ्रमर वहाँ उड़ता हुआ आ गया। गोपियों ने उस भ्रमर को प्रतीक बनाकर अन्योक्ति के माध्यम से उद्धव और कृष्ण पर जो व्यंग्य किए एवं उपालम्भ दिए उसी को "भ्रमरगीत" के नाम से जाना गया। भ्रमरगीत प्रसंग में निर्गुण का खण्डन, सगुण का मण्डन तथा ज्ञान एवं योग की तुलना में प्रेम और भक्ति को श्रेष्ठ ठहराया गया है।

ब्रजभाषा काव्य में भ्रमरगीत परम्परा के कई ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। विद्वान इस परम्परा का प्रारम्भ मैथिल कोकिल विद्यापति के पदों से मानते हैं किन्तु विधिवत रूप में भ्रमरगीत परम्परा सूरदास से ही प्रारम्भ हुई।

4.8 सूरदास का भ्रमरगीत

'सूरसागर' सूरदास जी का प्रधान एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें प्रथम नौ अध्याय संक्षिप्त हैं, पर दशम स्कन्ध का बहुत विस्तार हो गया है। इसमें भक्ति की प्रधानता है। इसके दो प्रसंग 'कृष्ण की बाल-लीला'

टिप्पणी

और 'भ्रमरगीत-प्रसंग' अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। इसके विषय में आचार्य शुक्ल ने कहा है, सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्श और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश भ्रमरगीत है। आचार्य शुक्ल ने लगभग 400 पदों को सूरसागर के भ्रमरगीत से छाँटकर उनको 'भ्रमरगीत सार' के रूप में संग्रह किया था।

भ्रमरगीत में सूरदास ने उन पदों को समाहित किया है जिनमें मधुरा से कृष्ण द्वारा उद्धव को ब्रज संदेस लेकर भेजते हैं। उद्धव योग और ब्रह्म के ज्ञाता है। उनका प्रेम से दूर-दूर का कोई सम्बन्ध नहीं है। जब गोपियाँ व्याकुल होकर उद्धव से कृष्ण के बारे में बात करती हैं और उनके बारे में जानने को उत्सुक होती हैं तो बे निराकार ब्रह्म और योग की बातें करने लगते हैं तो खीजी हुई गोषियाँ उन्हें श्काले भंवरेश की उपमा देती हैं। इन्हीं लगभग 100 पदों का समूह भ्रमरगीत या 'उद्धव-संदेश' कहलाता है। भ्रमरगीत में गोपियों की बचनवक्रता अत्यंत मनोहारिणी है। ऐसा सुंदर उपालंभ काव्य और कहीं नहीं मिलता।

उधो! तुम अपनी जतन करौ
हित की कहत कुहित की लागै,
किन बेकाज ररौ?
जाय करौ उपचार आपनो,
हम जो कहति हैं जी की।
कछू कहत कछुबै कहि डारत,
धुन देखियत नहिं नीकी।
सूरदास भ्रमरगीत सार
आमुखः विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

ज्ञान की कोरी वचनावली और योग की थोथी साधनावली का यदि साधारण लोगों में विशेष प्रचार हो तो अव्यवस्था फैलने लगती है। निर्गुन-पंथ ईश्वर की सर्वव्यापकता, भेदभाव की शून्यता, सब मतों की एकता आदि लेकर बढ़ा जिस पर चलकर अनपढ़ जनता ज्ञान की अनगढ़ बातों और योग के टेढ़े-मेढ़े अभ्यासों को ही सब कुछ मान बैठी तथा दंभ, अहंकार आदि दुर्वृत्तियों से उलझने लगी। ज्ञान का ककहरा भी न जानने वाले उसके पारंगत पंडितों से मुँहजोरी करने लगे। अज्ञान से जिनकी आँखें बंद थीं। वे ज्ञानचक्षुओं को आँख दिखाने लगे–

बादहि सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह तें कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर आँखि देखावहिं डाँटि॥ -'मानस'

जैसे तुलसी के 'मानस' में यह लोकविरोधी धारा खटकी वैसे ही सूर की आँखों में भी। तुलसी ने स्पष्ट शब्दों में और कड़ाई से इसका परिहार करने की ठानी। प्रबंध का क्षेत्र चुनने से उन्हें इसके लिए विस्तृत भूमि मिल गई। पर गीतों में सूर ने इसका प्रतिवाद प्रत्यक्ष नहीं, प्रच्छन्न रूप में किया। उन्होंने उद्धव-प्रसंग में 'भ्रमरगीत' के भीतर इसके लिए स्थान निकाला। उद्धव के योग एवं ज्ञान का जो प्रतिकार गोपियों ने 'सूरसागर' में किया, वह सूर की ही योजना है। श्रीमद्भागवत में, जिसकी स्थूल कथा के आधार पर 'सूरसागर' रचा गया, यह विधान है ही नहीं। उद्धव के ब्रज जाने, उपदेश देने, भ्रमर के आने और उसे खरी-खोटी सुनाने का वृत्त तो वहाँ हैं पर गोपियों द्वारा ज्ञान या योग का विरोध नहीं। ब्रज में उद्धव का केवल स्वागत-सत्कार ही हुआ, फटकार की मार उन पर नहीं पड़ी अतः यह तत्कालीन उद्वेगजनक प्रवृत्ति ही थी जिसका उच्छेद करने के लिए सूर ने 'सागर' की ये उत्ताल तरंगें लहराई। ज्ञान या येग की साधना भली न हो, सो नहीं। वस्तुतः वह कठिन है, सामान्य विद्या-बुद्धिवालों की पहुँच से परे है। पक्ष में उद्धव ऐसे ज्ञान-वरिष्ठ पुरुष और विपक्ष में ब्रजवासिनी ऐसी ज्ञान-कनिष्ठ स्त्रियों को खड़ा करके सूर ने ज्ञान एवं योग का प्रतिरोध साधारण जनता की दृष्टि से किया। ज्ञान की

टिप्पणी

ऊँची तत्त्वचिंता उनके लिए नहीं। ज्ञानयोग के प्रतिपक्ष में प्रेमयोग का मंडन करके यह प्रतिपन्न किया गया है कि भक्ति की भी वही चरमावधि है जो ज्ञान की–

अहो अजान! ज्ञान उपदेसत ज्ञानरूप हमहीं।
निसिदिन ध्यान सूर प्रभु को अलि! देखत जित तितहीं।।

सूर ने ज्ञान या योगमार्ग को संकीर्ण, कठिन और नीरस तथा भक्तिमार्ग को विशाल, सरल और सरस कहा है। ज्ञान या योग का अभ्यासी विश्व की विभूति से अपनी वृत्ति समेटकर अंतर्मुख हो जाता है। इसलिए गुह्य, रहस्य एवं उलझन की वृद्धि होती है। पर भक्ति का अनुरागी बहिर्मुख रहता है। वह जगत के विभूतिमत्, श्रीमत और ऊर्जस्वित रूपों में अपनी वृत्ति रमाए रहता है। इसलिए दुराव-छिपाव से दूर रहता है। उसके लिए सब कुछ सुलझा हुआ है। इस प्रकार भक्ति का राजमार्ग चौड़ा निष्कंटक और सीधा हैं उसमें गोपन, रहस्य या उलझाव कहीं नहीं–

काहे को रोकत मारग सूधो।
सुनहु मधुप! निर्गुन-कंटक तें राजपंथ क्यों रूँधो।।
राजपंथ तें टारि बतावत उरझ, कुबील, कुपैंड़ो।
सूरदास समाय कहाँ लौं अज के बदन कुम्हैंड़ो।।

विश्व की विभूति में मन को रमाने का जैसा अवसर भक्तिभावना में है बैसा अंत:साधना में नहीं। कल्याण का मार्ग अंतर्व्यापी नहीं, बहिर्व्यापी सत्ता से फूटता है–

दूरि नहीं दयाल सब घट कहत एक समान।
निकसि क्यों न गोपाल बोधत दुखिन के दुख जान।।

उर तें निकसि करत क्यों न सीतल जो पै कान्ह यहाँ है। सगुणोपासना साधार होती है, मन को रमाती है। निर्गुणोपासना निराधार होती है, मन को चक्कर में डालती है–

रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु निरालंब मन चक्कृत धावै।
सब बिधि अगम बिचारहि तातें सूर सगुन-लीला-पद गावै।।

इसी से योग-साधना या निर्गुणोपासना नीरस कही गई है–

ए अलि! कहा जोग में नीको।
तजि रस-रीति नंदनंदन की सिखवत निर्गुन फीको।।
सूर कहौ गुरु कौन करै अलि! कौन सुनै मत फीको।

सगुण-निर्गुण के विवाद से उद्धव-प्रसंग इतना खिला कि और भी कई समर्थ कवि उस पर रीझे। नंददास ने भी भावभरा 'भँवरगीत' गाया। उसकी टेकमिश्रित गीतशैली भ्रमरगीत की विशिष्ट पद्धति ही मान ली गई है। इनका भँवरगीत शुद्ध मुक्तक न होकर पद्य-निबंध के ढंग पर चला है। इसलिए उसमें गोपी-उद्धव-संवाद सधा हुआ आया है। उत्तर प्रत्युत्त भी तर्कबद्ध रीति पर है। सूर के भ्रमरगीत की सी विविधता उसमें नही, पर निबंध-रूप में होने से रसधारा का आनंद-प्रवाह अवश्य मिलता है। सूर के उद्धव की भाँति नंददास के उद्धव मौनाभ्यासी या अल्पभाषी नहीं है, भारी शस्त्रार्थी या विवादी हैं।

श्रीकृष्ण के वियोगवृत्त पर दो विशिष्ट रचनाएँ आधुनिक काल में भी प्रस्तुत हुई– एक रत्नाकर का 'उद्धव-शतक' और दूसरी सत्यनारायण कवि-रत्न का 'भ्रमर-दूत'। सूर के भ्रमरगीत में जो थोड़ी कमी थी वह 'उद्धव-शतक' में परिपूर्ण हो गई। कवित्त-शैली में कुछ नवीन उद्भावनाओं के साथ 'उद्धव-शतक' प्रस्तुत करके रत्नाकर ने अपनी कवित्व-शक्ति का सच्चा परिचय तो दिया ही, लाक्षणिक प्रयोगों और व्यंजक विधि की कसावट से भाषा-शक्ति का भी पूरा प्रमाण उपस्थित किया। इसमें

टिप्पणी

भ्रमर का वृत्त नहीं आया है। 'भ्रमर-दूत' में देशप्रेम की भी व्यंजना करके कविरन्तजी ने उसे सामयिक रंग में बड़ी ही विदग्धता के साथ रँगा है। यशोदा या भारतमाता श्रीकृष्ण के पास द्वारका भेजती हैं। इसकी रीति नंददासवाली टेकमिश्रित है। इस प्रकार उद्धव एवं भ्रमर के वृत्तांत पर हिंदी में एक पृथक् ही वाङ्मय खड़ा हो गया है, जो बहुत ही रसीला और मर्मस्पर्शी है।

प्रस्तुत 'भ्रमरगीत' सूरसागर की सर्वोत्कृष्ट रत्नराजि है। स्वर्गीय आचार्य शुक्लजी ने सूरसागर को मथकर भ्रमरगीत-सार कोई चार सौ पदों में संचित किया था। संग्रह थोड़ा-थोड़ा करके कई बार में किया गया था और जैसे-जैसे संग्रह होता जाता था, पुस्तक छपती जाती थी। इसी से इसमें कुछ पद पुनरुक्त हो गए और कुछ अस्थानस्थ। यहाँ तक कि एक पद संयोग-श्रृंगार का भी चिपका रह गया। पुस्तक का अधिक प्रचार हुआ और शुक्लजी के जीवनकाल में ही इसकी कई आवृत्तियाँ हो गईं। न तो प्रकाशक को पुनरावृत्ति रोक रखने का अवकाश मिला और न संपादक को उसकी पुनरावृत्ति करने का। फलस्वरूप पुस्तक प्रायः ज्यों की त्यों छपती रही। केवल थोड़ी सी छापे की वे अव्यवस्थाएँ दूर कर दी गईं जो पहली आवृत्ति होते ही ज्ञात हो गई थीं। अतः शुक्लजी जैसा चाहते थे वैसा परिष्कार करने की बारी ही नहीं आई।

काशी-हिंदू-विश्वविद्यालय में यह ग्रन्थ पढ़ाते समय मुझे शुक्लजी से कई स्थानों पर विचार-विमर्श करने का भी सुअवसर प्राप्त हो चुका है। प्रस्तुत आवृत्ति के समय जब प्रकाशक ने मुझसे इसके उत्पादन का अनुरोध किया तो मैंने शुक्लजी की नीति के अनुकूल इसमें कुछ उलट-फेर करने का दुस्साहस भी किया। फेर-फार करने में जो विशेषता आ गई हो उसे स्वर्गीय शुक्लजी का प्रसाद और जो त्रुटि बन पड़ी हो उसे मेरा ही प्रमाद समझना चाहिए।

छानबीन करने से निम्नलिखित पद संयोग-श्रृंगार का दिखाई पड़ा। अतः इसे हटा देना पड़ा–

देखु री, हरि जू के नैनन की छबि।
यह अनुमान मनि मन मानी अंबुज सेवत रबि॥
खंजरीट अतिब्यथा चपल भए, बन मृग, जल महँ मीन रहे दबि।
एते पै मानत न, कछू न कछू कहत हैं कुकबि॥
इनसे तो एई हरि, आबै न कछु फबि।
सूरदास उपमा जु गई सब ज्यों होमत हबि॥

उद्धव-गोपी-संवाद के एक ही लंबे पद (संख्या 379) के छः टुकड़े हो गए थे और उनमें पृथक्-पृथक् संख्याएँ लग गई थीं। ये संख्याएँ भी हटा दी गईं। पाँच पद दो-दो बार छप गए थे। ये पुनरुक्त पद भी कम कर दिए गए। ग्रन्थ में पहले कुल पद-संख्या 403 थी। उक्त परिशुद्धि से 11 संख्याएँ कम हो गईं और अब कुल पद-संख्या 392 ही रह गई। 8-9 पद नए जोड़कर 400 या 401 पद-संख्या कर देने का विचार था, पर कई कारणों से ऐसा नहीं किया।

भ्रमरगीत के कुछ पदों का आवश्यक अंश शुक्लजी ने अपनी भूमिका में भी उद्धृत किया है। मिलाने पर भूमिका और मूल के पदों में कहीं थोड़ा और कहीं विशेष पाठभेद दिखाई पड़ा। अधिकतर भूमिका के पाठ को ठीक मानकर जहाँ तक बन सका दोनों की एकरूपता स्थापित की गई। पदों में जो छापे की अशुद्धियाँ रह गई थीं उन्हें भी शुद्ध कर दिया गया। ब्रज में तालव्य 'श' नहीं होता इसलिए, सर्वत्र दंत्य श्सश का ही व्यवहार किया गया है। पहले इस नियम का पालन कहीं था कहीं नहीं।

पदों की दो-चार टिप्पणियों में मतभेद दिखाई पड़ा। इनमें कोई परिवर्तन न करके संपादक की मूल टिप्पणियों के नीचे दूसरे अक्षरों में नई टिप्पणियाँ अलग से लगा दी गई हैं। शुक्ल जी की टिप्पणियों

टिप्पणी

के अतिरिक्त बहुत से ऐसे शब्द और प्रयोग और दिखाई पड़े जिनकी व्याख्या आवश्यक प्रतीत हुई। इसलिए श्चूर्णिकाश नाम से पुस्तक के अंत में कुछ और टिप्पणियाँ भी जोड़ देनी पड़ी। अब आशा की जा सकती है कि यह पढ़ने-पढ़ाने वालों के लिए सुगम हो गया होगा।

ब्रह्मनाल, काशी

रथयात्रा, 1999

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

रामचन्द्र शुक्ल:वक्तव्य

'भ्रमरगीत' सूरसागर के भीतर का एक सार रल है। समग्र सूरसागर का कोई अच्छा संस्करण न होने के कारण श्सूरश के हृदय के निकली हुई अपूर्व रसधारा के भीतर प्रवेश करने का श्रम कम ही लोग उठाते हैं। मैंने सन् 920 में भ्रमरगीत के अच्छे पद चुनकर इकट्ठे किए और उन्हें प्रकाशित करने का आयोजन किया। पर कई कारणों से उस समय पुस्तक प्रकाशित न हो सकी। छपे फार्म कई बरसों तक पड़े रहे। इतने दिनों पीछे आज श्भ्रमरगीत-सहरश सहदय-समाज के सामने रखा जाता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि श्सूरसागरश के जितने संस्करण उपलब्ध हैं उनमें से एक भी ठिकाने से छपा हुआ नहीं है। सूर के पदों का ठीक पाठ मिलना एक मुश्किल बात हो रही है। 'वेंकटेश्वर प्रेस' का संस्करण अच्छा समझा जाता है पर उसमें पाठ की गड़बड़ी और भी अधिक है। उदाहरण के लिए दो पदों के टुकड़े दिए जाते हैं–

(क) अति रहति बृषभानु-कुमारी।

अधोमुख रहति, उर्ध नहिं चितवति ज्यों गथ हारे थकित जुआरी।।

(ख) मृग ज्यों सहत सहज सर दारुन, सन्मुख तें न टरै।

समुझि न परै कौन सचु पावत, जीवत जाय मरै।।

ये इस प्रकार छपे हैं–

(क) अधोमुख रहत ऊरथ नहिं चितवत ज्यों गथ हारे थकित जुथअरी।।

(ख) मग ज्यों सहत सहजसरदारन सनमुख तें न टरै।

समुझि न परै कवन सच पावत जीवत जाइ मरै।।

इस संग्रह में भ्रमरगीत के चुने हुए पद रखे गए हैं। पाठ, जहाँ तक हो सका है, शुद्ध किया है। कठिन शब्दों और वाक्यों के अर्थ फुटनोट में दे दिए गए हैं। सूरदास जी पर एक आलोचनात्मक निबंध भी लगा दिया गया है, जिसमें उनकी विशेषताओं के अन्वेषण का कुछ प्रयत्न है।

गुरुधाम, काशी

श्रीपंचमी, 1982

रामचन्द्र शुक्ल

4.9 भ्रमरगीत की प्रमुख व्याख्याए

उद्धव! यह मन निश्चय जानो।
मन क्रम बच मैं तुम्हें पठावत ब्रज को तुरत पलानों।

पूरन ब्रम्ह, सकल अबिनासी ताके तुम हौ ज्ञाता।
रेख न रूप, जाति, कुल नाहीं जाके नहिं पितु माता।।
यह मत दै गोपिन कहँ आवहु बिनह-नदी में भासति।
सूर तुरंत यह जसस्य कहौ तुम ब्रह्म बिना नहिं आसति।।7।।

शब्दार्थ – क्रम - कर्म। बच - वचन। पठावत - भेजता हूँ। तुरत - तुरंत। पलानों - जाओ प्रस्थान करो। प्रस्थान करो। अविनाशी - जिसका नाश न हो। जाके - जिसके। ज्ञाता - जानकार। भासित - सामीप्य या मुक्ति।

संदर्भ – प्रस्तुत पद्यांश हमारे हिंदी साहित्य के भ्रमरगीत सार से लिया गया है जिसके रचियता सूरदास जी हैं और सम्पादक आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी हैं।

प्रसंग – उद्धव को श्री कृष्ण शीघ्र ही ब्रज प्रस्थान करने को कह रहे हैं, जो बार-बार रट लगाते रहते हैं।

व्याख्या –श्री कृष्ण उद्धव से कहते हैं कि हे उद्धव तुम अपने मन में यह निश्चय जान लो कि मैं सम्पूर्ण सद्भावना एवं मन वचन कर्म के साथ ब्रज भेज रहा हूँ। इसलिए तुम तुरत वहाँ के लिए प्रस्थान करो। कवि का यह भाव है कि कृष्ण सच्चे ह्दय से उद्धव को ब्रज जाने को कह रहे हैं। इससे उन्हें दो कार्यो की सिद्धि अभीष्ट है एक तो उन्हें वहाँ का कुशल समाचार प्राप्त हो जाएगा और दूसरा गोपियों के अनन्य प्रेम को परखकर ज्ञान गर्वित उद्धव प्रेम के सरल व सीधे मार्ग को पहचान सकेंगे, प्रेम का महत्व जान सकेंगे।

कृष्ण उद्धव से कहते हैं--तुम्हारा ब्रम्ह, पूर्ण, अनीश्वर और अखंड रूप है और तुम्हें ऐसे अविनाशी ब्रम्ह का पूर्ण ज्ञान प्राप्त है। तुम्हारे ब्रम्ह की न तो कोई रूप रेखा है न ही कोई कुलवंश है। और न ही उसके कोई माता-पिता हैं। कहने का तात्पर्य या भाव यही है कि तुम्हारा ब्रम्ह अखंड अनादि, अजर, अमर और पूर्ण है। वह सब प्रकार के सांसारिक संबंधों से अछूता और स्वतंत्र है इसलिए कृपा करके तुम अपना यह ब्रम्ह ज्ञान ब्रज पल्लिवयों को सुनाकर आओ।

तुम वहाँ सीधा जाकर उन गोपियों को समझा बुझा कर आना क्योंकि वे मेरे विरह में निम्न पूर्ण होकर विरह की नदी में डूब रही हैं। तुरंत उससे जाकर कहो कि ब्रम्ह के बिना जीवन में मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती, वह ब्रम्ह ही जीवन का सार तत्व है। तुम जाकर यह समझाओ की प्रेम भाव त्यागकर अविनाशी ब्रम्ह का ध्यान करें और उसी में अपनी समस्त मोक्ष की प्राप्ति हो सकेगी अन्यथा नहीं।

विशेष–

1. श्री कृष्ण उद्धव को अभीष्ट कार्य के लिए प्रेरित कर रहे हैं।
2. निर्गुण सम्प्रदाय के अनुसार ब्रम्ह के बिना मुक्ति असम्भव है।
3. विरह नदी में निरंक रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है।
4. उद्धव! बेगि ही ब्रज जाहु।

सुरति सँदेस सुनाय मेटो बल्लभिन को दाहु।।
काम पावक तूलमय तन बिरह-स्वास समीर।
भसम नाहिं न होन पावत लोचनन के नीर।।
अजौ लौ यहि भाँति ह्वै है कछुक सजग सरीर।
इते पर बिनु समाधाने क्यों धरै तिय धीर।।

टिप्पणी

कहौं कहा बनाय तुमसों सखा साधु प्रबीन?
सुर सुमति बिचारिए क्यों जियै जब बिनु मीन।।

शब्दार्थ – बेगी - शीघ्र। जाहु - जाओ। सुरति - प्रेम। बल्लभभिन्न - गोपियाँ। दाहु - ग्रहजन्य, पीड़ा। काम पावक - काम की अग्नि, कामाग्नि। तूलमय - रुई के समान कोमल। तन - शरीर। समीर - वायु। लोचन - नेत्र। नीर - जल। अजौ लौं - आज-तक। वहै-है - होगा। समाधानों - समाधान, धीर - धीरज। तिय - नारियाँ। साधू - सज्जन। प्रवीन - निपुण। मीन - मछलियाँ।

संदर्भ – प्रस्तुत पद्यांश हमारे हिंदी साहित्य के भ्रमर गीत सार से लिया गया है जिसके रचियता सूरदास जी हैं और सम्पादक आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी हैं।

प्रसंग – श्री कृष्ण उद्धव को शीघ्र ही ब्रज जाने को कह रहे हैं या निर्देश दे रहे हैं और उन्हें कह रहे हैं कि वह विरह में संतृप्त गोपियों को तसल्ली दें।

व्याख्या – श्री कृष्ण कहते हैं– हे उद्धव तुम शीघ्र ही ब्रज चले जाओ और वहाँ जाकर ब्रज की नारियों को या संतृप्त गोपियों को तसल्ली दो। श्री कृष्ण कहते हैं--हे उद्धव शीघ्र ही ब्रज चले जाओ और वहाँ की नारियों को मेरा संदेश सुनाओ जिससे उनके चित्त में स्थित विरह जन्य पीड़ा समाप्त हो सके। रूई के समान कोमल शरीर कामामिन में प्रज्वलित हो रहे हैं। विरह आदि के कारण उनकी तीत्र साँसे वायु के समान उनकी कामाग्नि को और भी भड़का रही हैं। परन्तु उनके नेत्रों से होने वाली आंसुओं की वर्षा के कारण उनके शरीर कामाग्नि में जलने से बच गए हैं जो कवि को कहने का भाव यह है कि गोपियाँ रो-रो कर अपने इृदय में स्थित विरह के ताप को हल्का कर लेती हैं इस प्रकार उनका जीवन नष्ट होने से बच जाता है।

श्री कृष्ण कहते हैं– हे उद्धव इसी कारण उनके शरीर में अब भी सजगत-सी है। किन्तु इस सजगत-का सदा बना रहना कठिन है इसलिए यदि शीघ्र उन्हें ढाँढ़स न बंधया गया तो उनके लिए धैर्य धारण करना कठिन हो जायेगा। हे सखा! अब मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ और किस प्रकार बताकर कहूँ तुम स्वयं ही साधू स्वभाव के और विवेकशील हो इसलिए मेरे मन के भावों को समझ लेना तुम्हारे लिए कोई कठिन कार्य नहीं, तुम अपने विवेकशक्ति के बल पर स्वयं ही विचार करो। बिना जल के मछलियाँ किस प्रकार जीवित रह सकती हैं। अर्थात जैसे जल से विलग होकर मछली का जीवन नहीं चल सकता उसी प्रकार मेरे बिना गोपिकाओं का जीवन भी चलना कठिन है। मैं ही सर्वस्व हूँ अत: तुम शीघ्र ही जाकर उन्हें मेरा संदेश सुनाकर सांत्वना दो।

विशेष–

1. सखा साधू प्रवीण में परिकर अलंकार से विशेष अवधारणा।
2. काम, पावक, तुलमय तन विरहू स्वास समीर में सांग रूपक अलंकार है।
3. भसम नाहिन होन पावत लोचन के नीर में काव्यलिंग अलंकार।
4. सूर सुमति–, बिनु मीन में अप्रस्तुत काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग किया गया है।

राग काफी

आयो घोष बड़ो व्योपारी।
लादी खेप गुन ज्ञान-जोग की ब्रज में आन उतारी।।
फाटक दैकर हाटक माँगत भौरे निपट सुधारि।
धुर ही तें खोटो खायो है लये फिरत सिर भारि।।

इनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अजानी?
अपनों दूध छाँड़ि को पीवै खार कूप को पानी।।
ऊधो जाहु सबार यहाँ तें बेगि गहरु जनि लावौ।
मुँहमाँग्यो पैहा सूरज प्रभु साहुहि आनि दिखावौ।।

शब्दार्थ – घोष – अहीरों की बस्ती। खेप – माल का बोझ। फाटक – फटकन, तत्वहीन पदार्थ अनाज को फटकने से निकला हुआ भूषा, फटकन। हाटक – स्वर्ण। धारी – समझकर। धूर – मूल। डहकावे – धोखा खाए। अजानी – अज्ञानी। खार – खारा। कूप – कुआँ। सवार – सवेरे। साहुहि – साहूकार, महाजन। आनि – आकर।

संदर्भ –प्रस्तुत पद्यांश सूरदास भ्रमरगीत सार से लिया गया है। जिसके सम्पादक आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी हैं।

प्रसंग –निर्गुण ब्रह्म की उपासना की शिक्षा देने आये उद्धव को गोपियाँ खरी खोटी सुनाती हुई आपस में चर्चा करते हुए कह रही हैं।

व्याख्या – गोपियाँ आपस में बात करती हुई कहती हैं कि आज हीरों की बस्ती में एक बड़ा व्यापारी आया हुआ है। उसने ज्ञान और योग के गुणों से युक्त अपनी जो गठरी है वो लाकर ब्रज में उतार दी है। उसने हमें तो बिलकुल भोला और अज्ञानी समझ लिया है। क्योंकि वह फाटक देकर हाटक चाहता है अर्थात फटकन के समान जो तत्वहीन पदार्थ है जो भूषा है जो बेकार का कूड़ा चाहता है अर्थात सोने के समान बहुमूल्य श्री कृष्ण को मांग लिया है। ऐसा लगता है कि इसने आरंभ से ही लोगों को ठगा है तभी तो इस भारी बोझ को सिर पर लिए घूम रहा है। इसे हानि उठानी पड़ रही है इसका समान कोई भी नहीं खरीद रहा और इसलिए इसे अपने इस भारी बोझ को लादकर इधर-उधर भटकना पड़ रहा है।

यहाँ हम में से ऐसी कौन नासमझ है और अज्ञानी है है जो इसका माल खरीद कर धोखा खा जाएगी। आज तक ऐसा मूर्ख हमने नहीं देखा है जो अपना दूध छोड़कर के खारे जल के जो कुँए का पानी है उसे वह पिये। और गोपियाँ अंत में कहती हैं, हे उद्धव तुम शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ बिना देर किये तुम शीघ्र मथुरा चले जाओ और जो तुम्हारा महाजन है, तुम्हारा जो बड़ा सेठ है यदि तुम हमसे लाकर मिला दोगे, हमारा दर्शन करा दोगे तो तुम्हें मुँह माँगा पुरस्कार प्राप्त होगा अर्थात जो भी तुम माँगोगे वह हम तुम्हें दे देंगे।

विशेष –

1. इस पद में गोपियों ने उद्धव को व्यापारी बना दिया है।
2. जो योग और ज्ञान रूपी तुच्छ वस्तु के लिए उनसे कृष्ण के प्रेम रूपी स्वर्ण मुद्रा ठगना चाहता है।
3. कृष्ण के प्रेम को दुग्ध के समान और ज्ञान योग को खारे पानी के समान बताया है।
4. भाषा लाक्षणिक और व्यंजना शब्द शक्ति से सम्पन्न है। सम्पूर्ण पद में अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है, उद्धव के ज्ञान वस्तु को निस्सार घोषित कर दिया गया है और उसका तिरस्कार किया गया है।
5. फाटक और हाटक में अत्यंत सुंदर शब्द शैली है।
6. खोटा खाना मुहावरे का प्रयोग किया गया है।
7. प्रसाद और माधुर्य गुण से सम्पन्न शैली प्रयोग सूरदास जी के द्वारा किया गया है।

टिप्पणी

8. सम्पूर्ण पद में रूपक और अन्योक्ति का मिश्रित रूप है।
9. खार कूप को पानी में दृष्टांत अलंकार का प्रयोग किया गया है।
10. गुण ज्ञान खोटो-खायो तथा मुंह मांगी में अनुप्रास अलकार का प्रयोग किया गया है।

30. राग धनाश्री

कहतें हरि कबहूँ न उदास।
राति खबाय पिवाय अधरस क्यों बिसरत सो ब्रज को बास॥
तुमसों प्रेम कथा को कहिबो मनहुं काटिबो घास।
बहिरो तान-स्वाद कहूँ जानै, गूंगो-बात-मिठास।
सुनु री सखी, बहुरि फिरि ऐहैं वे सुख बिबिध बिलास।
सूरदास ऊधो अब हमको भयो तेरहों मास॥

शब्दार्थ –कबहूँ - कभी भी। राति - प्रेमपूर्वकद्य पिवास - पिलाकर। विसरत - भूलना। काटिबो घास - घास काटना, बेकार मगझ मारना। तान स्वाद - संगीत का आनन्द। बात मिठास - बातों का मीठापन। बहुरि - फिर। तरहों मास - अवधि बीत जाना।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पद्यांश हमारे हिंदी साहित्य से भ्रमर गीत सार नामक पाठ से लिया गया है जिसके सम्पादक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी है।

प्रसंग – प्रस्तुत गूंगे बहरों का उदाहरण देते हुए गोपियाँ उद्धव को विरह की व्यथा गान सुना रही हैं।

व्याख्या – हमारे प्रभु श्री कृष्ण हमसे कभी न उदास अथवा उदासीन नहीं हो सकते हैं क्योंकि उन्हें ब्रज भूमि में बिताया हुआ समय कभी भी भूल नहीं पायेगा क्योंकि वे जब हमारे पास थे तो हमने उन्हें प्रेमपूर्वक माखन खिलाया था और प्रेम की अवस्था में हमने अपने अघरों से अमृत रस का पान कराया था और इसीलिए भी इस ब्रज भूमि का अपना निवास कभी भी भुला नहीं पाएँगे। लेकिन तुम्हारे सामने तो इस प्रेम कथा का वर्णन करना इसका बखान करना मानों घास काटने के समान है अर्थात तुमसे माथा पच्ची करना है न तो तुम इसके महत्व को जान सकते हो और न इससे अदीत हो सकते हो। तुम्हारी यति या स्थिति तो उस भौरे के समान है जो संगीत के उतार-चढ़ाव से विस्मृत मधुर तानों का स्वाद नहीं जानता और गुंगा व्यक्ति प्रेमालाप से उपलब्ध रस को ग्रहण नहीं कर सकता या तो तुम बहरे हो या गूंगे हो या तो तुम्हारी गति उस बहरे मनुष्य के समान है अथवा गूंगे व्यक्ति के समान।

एक गोपी अपनी दूसरी सखी से कहती है कि हे सखी सुनो क्या हमारे जीवन में वही सुख अनेक प्रकार की प्रेम कलियाँ क्या फिर कभी आएगी क्या कभी हमारे श्री कृष्ण पुनः ब्रज आएँगे और हमारे साथ वहीं प्रेम क्रीडाएँ करेंगे। अब तो उनके आने का समय भी आ गया है। सूरदास जी कहते हैं कि गोपी अपनी सखी से कह रही है कि अब तो उनके आने का समय भी आ गया है क्योंकि जितनी अवधी के लिये वह मथुरा गए थे। कुछ समय के लिए गए थे और वह अवधी समाप्त हो रही है और इसलिए हमें आशा है कि वे शीघ्र ही लौटकर वह आएँगे।

विशेष –

1. प्रस्तुत पद में सूरदस जी ने मनहु काटिबो घास और भयो तरसों मास आदि ग्रामीण मुहावरों का प्रयोग किया है।

टिप्पणी

2. मनहु काटीबो घास में उत्प्रेक्षा अलंकार है। अंतिम पंक्ति में तेरह मास का तात्पर्य यह है कि अब अवधि समाप्त हो गयी है क्योंकि वर्ष में बारह महीने होते हैं तेरहवा महीना आ गया अर्थात जो बारह महीने थे, वे बीत गए अर्थात जो विरह की अवस्था होती है। उसे कवियों ने बारह मास का नाम दिया है तो बारह मासा बीत चुका है और तेरहवाँ मासा आ गया है अर्थात अब मिलन की आशा जगमगा जगमगा गई है क्योंकि वह अवधी जो विरह की थी वह समाप्त हो गयी है।

राग धनाश्री

हम तौ कान्ह केलि की भूखी।
कैसे निरगुन सुनहिं तिहारो बिरहिनि बिरह-बिदूखी?
कहिए कहा यहौ नहिं जानत काहि जोग है जोग।
पा लागों तुमहीं सों, वा पुर बसत बावरे लोग॥
अंजन, अभरन, चीर, चारु बरु नेकु आप तन कीजै।
दंड, कमंडल, भस्म, अधारी जौ जुवतिन को दीजै॥
सूर देखि दृढ़ता गोपिन की ऊधो यह ब्रत पायो।
कहै 'कृपानिधि हो कृपाल हो! प्रेमै पढ़न पठायो'॥41॥

अँखिया हरि-दरसन की भूखी।
कैसे रहैं रूपरसराची ये बतियाँ सुनि रूखी॥
अवधि गनत इकटक मग जोबत तब एती नहिं झूखी।
अब इन जोग-सँदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी॥
बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी।
सूर सिकत हठि नाव चलाओ ये सरिता हैं सूखी॥42॥

राग सारंग पद 52

हमारे हरि हारिल की लकरी।
मन बच क्रम नंदनंदन सो उर यह दृढ़ करि पकरी॥
जागत, सोबत, सपने सौंतुख कान्ह-कान्ह जक री।
सुनतहि जोग लगत ऐसो अलि! ज्यों करूई ककरी॥
सोई व्याधि हमें लै आए देखी सुनी न करी।
यह तौ सूर तिन्हैं लै दीजै जिनके मन चकरी॥

शब्दार्थ –हारिल की लकरी – हारिल नामक पक्षी सदैव अपनी पंजों में कोई न कोई लकड़ी का टुकड़ा या तिनका पकड़े रहता है। बच – वचन। क्रम – कर्म। उर – हृदय। सौंतुख – प्रत्यक्ष। कान्ह – कन्हैया, कृष्ण। जकरी – रट, धुन। करुई – कड़वी। सोई वही। व्याधि – रोग, बीमारी। तिन्हैं – उनको। चकरी – चंचल चकई के समान सदैव अस्थिर रहने वाली।

संदर्भ – प्रस्तुत पद्यांश हमारे हिंदी साहित्य के भ्रमर गीत से लिया गया है जिसका सम्पादन आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भ्रमर गीत सार के नाम से किया है।

प्रसंग –प्रस्तुत पद में गोपियाँ उद्धव को कह रही हैं कि कृष्ण उनके लिए हारिल पक्षी की लकड़ी के समान बन गए हैं।

टिप्पणी

व्याख्या –जिस प्रकार हारिल पक्षी कहीं भी हो वो किसी भी दशा में हो, वह सहारे के लिए अपने मेने में किसी न किसी लकड़ी को अथवा किसी तिनके को पकड़े रहता है, उसी प्रकार हम गोपियाँ श्री कृष्ण के ध्यान में निमग्न रहती हैं। हमने अपने मन , वचन और कर्म से श्री कृष्ण रूपी लकड़ी को अपने हृदय में दृढ़ करके पकड़ लिया है अर्थात श्री कृष्ण का रूप सौंदर्य हमारे हृदय में गहराई तक बैठ गया है और यह अब जीवन का एक अंग बन गया है। हमारा मन तो जागते-सोते स्वप्न अवस्था में प्रत्यक्ष रूप में अर्थात सभी दशाओं में कृष्ण की नाम की रट लगाता रहता है। श्री कृष्ण का स्मरण ही एक मात्र कार्य रह गया है, हमारे लिए जिसे हमारा मन सभी अवस्थाओं में करता है। हे भ्रमर तुम्हारे निर्गुण ब्रम्ह संबंधी ज्ञान उपदेश की बातें सुनकर हमें ऐसे लगता है जैसे कोई कड़वी ककड़ी हमने मुंह में रख ली हो।

गोपियाँ कहती हैं – हे उद्धव इस निर्गुण ब्रम्ह के रूप में तुम हमारे लिए ऐसा रोग ले आये हो जिसे न तो हमने कभी देखा है न सुना है न कभी उसका भोग किया है इसीलिए इस योग ज्ञान रूपी बीमारी को तुम उन लोगों को दो जिनका मन चकरी के समान अथवा चकरी के समान सदैव चंचल रहता है। वे इसका आदर करेंगे। गोपियाँ कहती है। कि उनका हृदय तो कृष्ण प्रेम में दृढ़ एवं स्थिर है। उनके हृदय में योग ज्ञान और निर्गुण ब्रम्ह संबंधी बातों के लिए कोई स्थान नहीं। उद्धव की योग बातें वहीं लोग स्वीकार कर सकते हैं जो अपनी आस्था में दृढ़ नहीं होते भावावेश में अपनी आस्था और विश्वास को बदलते रहते हैं और इसीलिए ऐसे अस्थिर चित्त वालों के लिए ही योग का उपदेश उचित है।

विशेष –

1. गोपियाँ निर्गुण के उपदेश के लिए व्याधी शब्द का प्रयोग करती है और ऐसा करके सूरदास जी ने उन्हें परोक्ष रूप से स्वयं निर्गुण ब्रह्म की अवहेलना की है और साथ ही साथ यह स्पष्ट किया है कि योग साधना चंचल व अस्थिर चित्त वालों के लिए ही उचित है, स्थिर प्रेममार्गियों के लिए यह व्यर्थ है।
2. सुनतहि जोग लगत ऐसा अलि! ज्यों करुई ककरी में उपमा अलंकार।

57. निरख अंक स्यामसुंदर के बारबार लावति छाती।
लोचन-जल कागद-मिसि मिलि कै है गई स्याम स्याम की पाती।।
गोकुल बसत संग गिरिधर के कबहुँ बयारि लगी नहिं ताती।
तब की कथा कहा कहौं, ऊधो, जब हम बेनुनाद सुनि जाती।।
हरि के लाड़ गनति नहिं काहू निसिदिन सुदिन रासरसमाती।
प्राननाथ तुम कब धौं मिलोगे सूरदास प्रभु बालसँघाती।।

शब्दार्थ –संदर्भ - संबंधित। निरख - देखते ही। अंक - अक्षर, पत्री। लावती - लगाती हैं। लोचन - नेत्र। जल - आँसू। कागदमसि - कागज पर की स्याही। पाती - चिट्ठी, पत्री। बयारि हवा। ताती - गरम। बेनुनाद - मुरली की मधुर ध्वनि। लाड़ - प्रेम। गनती - गिनती, समझती। काहू - किसी को। निसीदीन - रात दिन। रासरसमाति - रास-रंग में उन्मत। बालसंघाती - बालपन के साथी, बालमित्र।

संदर्भ –प्रस्तुत पद्यांश हमारे हिंदी साहित्य के भ्रमर गीत सार से लिया गया है जिसके सम्पादक आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी हैं। जिसे उन्होंने सूरसागर से लिया है।

प्रसंग – गोपियाँ उस पत्र का चर्चा कर रहीं हैं जिसमें श्री कृष्ण ने अपना संदेश भिजवाया था।

व्याख्या– उद्धव के हाथों कृष्ण की चिट्ठी को पाकर वे अत्यंत भाव विभोर हो गई थी। उसी समय की स्थिति का वर्णन करते हुए सूरदास जी कहते हैं कि कृष्ण के पत्र में लिखे उनके अक्षरों को देख

टिप्पणी

देखकर गोपियाँ बार-बार उस पत्र को अपने हृदय से लगाने लगी, अपनी छाती से लगाने लगी और प्रेमावेश के कारण उनकी आँखों में आँसु आ गए और आँखों से जब आँसू बह रहे हैं तो स्याम के द्वारा जो चिट्ठी भेजी गई है वह भीग जाती है और नेत्रों के जल से कागज पर जो लिखा हुआ है, उसकी स्याही और नेत्रों का जल आपस में मिल जाने से सारे कागज में स्याही फैल जाती है और उसकी पूरी चिट्ठी काली हो जाती है। स्याम अर्थात कृष्ण की पाती है इसलिए काली हो जाती है। इस पत्र को निहारते ही गोपियों की पूर्व काल की स्मृतियाँ जो हैं वह साकार हो उठती है।

जब गोकुल में हम श्री कृष्ण के साथ रहा करती थीं तो हमें कभी वायु की गर्माहट नहीं लगी गोपियाँ कहना चाहती हैं कि हमें किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। हमें कोई भी विपत्ती नहीं आई है उद्धव हम उस समय की क्या चर्चा तुमसे करें जब हम श्री कृष्ण की मुरली की मधुर ध्वनि सुनकर उनके पास वन में दौड़ी चली जाती थी और अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ उनके साथ किया करती थी। हम कृष्ण के प्रेम में अनेक प्रकार की रास क्रीड़ाएँ किया करते थे और उससे आनंदित हुआ करते थे। कृष्ण के प्रेम को पाकर हम इतनी गर्वित होती थीं कि अपने सम्मुख किसी को कुछ भी नहीं समझती थीं और इस प्रकार पुरानी बातें याद करके गोपियाँ अत्यंत भाव विभोर हो गई हैं और कृष्ण को पुकार रही हैं। कृष्ण को कहती हैं हे प्राणनाथ हे बचपन के साथी आप हमें कब मिलेंगे कब हमें दर्शन देंगे और कब आपका और हमारा मिलन हो सकेगा।

विशेष –

1. "स्याम-स्याम की पाती" में यमक अलंकार है।
2. "लोचन-जल कागद मसि" में ततगुण अलंकार का प्रयोग किया गया है।

64. राग सारंग

निर्गुन कौन देस को बासी?
मधुकर! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति साँच, न हाँसी॥
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी?
कैसो बरन, भेस है कैसो केहि रस कै अभिलासी॥
पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे! कहैगो गाँसी।
सुनत मौन है रहो ठग्यो सो सूर सबै मति नासी॥

शब्दार्थ –वासी - निवासी। मधुकर - भ्रमर। सौह दै - सौगंध देकर। बुझति - पूछती हैं। साँच - सत्य बात। हाँसी - हँसी नहीं कर रहीं। जनक - पिता। जननि - माता। नारि - पत्नी। दासी - सेविका। वरन - वर्ण, रंग। भेश - वेश - भूषा। गाँसी - कपट की बात। नासी - नष्ट हो गई। मति - बुद्धि, विवेक।

संदर्भ – प्रस्तुत पद्यांश हमारे हिंदी साहित्य के भ्रमर गीत सार से लिया गया है जिसके संपादक रामचंद्र शुक्ल जी हैं।

प्रसंग – गोपियाँ निर्गुण ब्रम्ह के विषय में अत्यंत मनोरंजक प्रश्न पूछकर उद्धव का हँसी उड़ा रही हैं।

व्याख्या –सूरदास जी कहते हैं कि गोपियाँ भ्रमर के माध्यम से पूछ रहीं हैं, हे उद्धव तुम्हारा ये निर्गुण किस देश में निवास करता है। कहाँ का रहने वाला है कि उसका पता ठिकाना कया है, हे मधुकर हम कसम खाकर कहती हैं, कि हमें नहीं पता, वह कहाँ रहता हैं किस देश में निवास करता है और इसलिए हम तुमसे सच-सच पूछ रही हैं कोई हँसी मजाक नहीं कर रहीं हैं और इसलिए हमें इस निर्गुण ब्रह्म के निवास के बारे में ठीक-ठीक बता दो। तुम हमें बताओ कि तुम्हारे इस निर्गुण ब्रह्म का पिता कौन है, इसकी माता कौन है, इसकी दासी कौन हैं और ये जो तुम्हारा निर्गुण ब्रह्म हैं उसका रूप

टिप्पणी

रंग उसकी रूचि किस प्रकार की है और उसकी रुचि किस प्रकार के रस में है। अर्थात उसकी रुचि किस प्रकार के कार्यों में है और आगे उद्धव को सावधान करते हुए गोपियाँ कहती हैं, कि हे उद्धव सुन लेना कि तुमने अपने निर्गुण ब्रह्म के बारे में यदि कोई झूठी बात कही, कोई कपट पूर्ण बात कहि तो फिर इस करनी का फल भी तुम्हें ही भुगतना पड़ेगा। गोपियों के मुँह से इस प्रकार की बातों को सुनकर उद्धव थका सा रह गया, मौन रह गया, चुप रह गया।

गोपियों की इस प्रकार चतुराई पूर्ण बातों को सुनकर उद्धव जो है मौन खड़े रह गए। उनके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला ऐसा प्रतीत हुआ मानो इनका समस्त ज्ञान और विवेक उनका साथ छोड़ गया हो प्रस्तुत पद व्यंग्य काव्य का सुंदर उदाहरण है। सम्पूर्ण पद में गोपियों का उद्धव के प्रति व्यंग्य भाव प्रस्तुत हुआ है। अपने वाग वैदग्ध से उद्धव की हंसी उड़ाती हैं परन्तु साथ ही साथ उन्हें यह विश्वास भी दिलाती हैं कि की वे ब्रम्ह के विषय में जिज्ञासा रखती हैं।

विशेष –

1. गोपियों द्वारा उद्धव की हंसी उड़ाई गई है।
2. गोपियाँ उद्धव को नीचा दिखाने की कोशिश कर रही हैं।

69. राग धनाश्री

प्रकृति जोई जाके अंग परी।
स्थान-पूँछ कोटिक जा लागै सूधि न काहु करी॥
जैसे काग भच्छ नहिं छोड़े जनमत जौन धरी।
धोये रंग जात कहु कैसे ज्यों कारी कमरी?
ज्यों अहि डसत उदर नहिं तैसे हैं एउ री।

शब्दार्थ – प्रकृति - स्वभाव, आदत। स्वान - कुत्ता। कोटिक - करोड़ो। सूधी - साधी। न काहूकरी - कोई नहीं कर सका। काग - कौआ। भच्छ - न खाने योग्य। कारी कमरी - काला कंबल। अहीर - सर्प। जनमत - जन्म लेते ही। जौन धरी - जिस समय। धरती धरि - जिस समय। धरनी धरि - टेक पकड़ रखी है, स्वभाव बन गया है। एउ - यह।

संदर्भ –प्रस्तुत पद्यांश हमारे हिंदी साहित्य के भ्रमर गीत सार से लिया गया है जिसके संपादक आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी हैं।

प्रसंग – गोपियों के द्वारा उद्धव की तुलना श्वान अर्थात कुत्ते से की जा रही है।

व्याख्या –एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है कि आज तक करोड़ो प्रयतत करके भी कोई कुत्ते के पूँछ को सीधा नहीं कर पाया और इसका कारण क्या बताया? इसका कारण यह है कि पूँछ का स्वभाव सदा टेढ़ा है और स्वभाव को बदला नहीं जा सकता और इसलिए अब से सीधा नहीं किया जा सकता। एक और उदाहरण देते हुए कहती है कि कौआ जन्म से ही न खाने योग्य पदार्थ को खाना प्रारंभ कर देता है। कौआ अभक्षी को भी अर्थात न खाने योग्य पदार्थ को भी खाना प्रारम्भ कर देता है और पूरे जीवन इस स्वभाव को नहीं छोड़ता तुम्हीं बताओ कि धोने से काले कंबल का रंग उतर सकता है क्या? जैसे साप है वह दूसरों को डसने का काम करता है लेकिन दूसरों को डसने से उसका पेट नहीं भरता क्योंकि उसके पेट में तो कुछ जाता ही नहीं फिर भी उसका स्वभाव पड़ गया है डसना और इसलिए वह इसे छोड़ता नहीं और ऐसे ही यह उद्धव है, दूसरों को दुखी करना इनका स्वभाव बन गया है।

इन्हें इस बात की कोई चिंता नही है कि इनके व्यवहार का क्या परिणाम होगा? बस ये तो ऐसे ही हैं अर्थात दूसरों को दुखी करना इनका स्वभाव बन गया है। इन्हें इसी बात में आनंद मिलता है।

विशेष –

1. गोपियों ने मानव स्वभाव का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है।
2. दूसरे पंक्ति से चौथे पंक्ति तक स्वभावोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ हे।
3. स्वान-पूँछ कोटिक जो लागे सुधि न काहूकरी में अर्थातर उपन्यास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

70. राग रामकली

तौ हम मानैं बात तुम्हारी।
अपनो ब्रम्ह दिखावहु ऊधो मुकुट-पितांबरधारी॥
भजि हैं तब ताको सब गोपी सहि रहि हैं बरू गारी।
भूत समान बतावत हमको जारहु स्थाम बिसारो॥
जे मुख सदा सुधा अँचवत हैं ते विष क्यों अधिकारी।
सूरदास प्रभु एक अंग पर रीझि रही ब्रजनारी।

शब्दार्थ –वरु - भले ही। गरी - गाली, चरित्र हीन होने की गाली। भूत समान - छाया मात्र, आकार रहित। जारहु - दग्ध करते हो। बिसारी - भुलाकर। अँचवत - आचमन करते हैं, पान करते हैं। रीझी - मुग्द्ध हुई।

संदर्भ – प्रस्तुत पद्यांश हमारे हिंदी साहित्य के भ्रमर गीत सार से लिया गया हे जिसके सम्पादक आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी हैं।

प्रसंग –यहाँ गोपियाँ उद्धव के ज्ञान योग को स्वीकार करने के लिए एक शर्त रख रहीं हैं जिसका वर्णन प्रस्तुत पद में किया गया है।

व्याख्या –प्रस्तुत पद में गोपियाँ उद्धव से कहती हैं की हम तुम्हारी बात को मानकर तुम्हारे ब्रह्म को स्वीकार कर लेंगी। लेकिन एक शर्त है कि तुम अपने ब्रम्ह के मोर मुकुट और पीतांबर धारण किया हुआ दर्शन करा दो यानी यदि तुम्हारा ब्रह्म कृष्ण का वेश धारण करके हमारे सम्मुख आ जाता है तो हम उसे स्वीकार कर लेंगे। ऐसा करते हुए हम बिलकुल भी संकोच नहीं करेंगे। हम तुम्हारी बात मान जाएँगे फिर हम सब मिलकर उसे भेजेंगे, उसका ध्यान करेंगे चाहे हमें इसके लिए यह सामार गाली ही क्यों न दे, हमें चरित्रहीन क्यों न बताये, कुलटा क्यों न बताये हम सब सहन कर लेंगी लेकिन हमें ऐसा लगता नहीं है कि तुम हमें अपने ब्रम्ह का कृष्ण रूप में दर्शन करा दोगे।

क्योंकि तुम तो अपने ब्रम्ह को छायाहीन बताते हो आकारहीन बताते हो, भूत के समान बताते हो, और इसलिए उनका मोर मुकुट और पीतांबर धारण करना असम्भव है और इसलिए हम कृष्ण को भूलाकर उसे स्वीकार नहीं कर पायेंगी।

हम तो सदा अपने मुख से अमृत का पान करते आई हैं और उसी मुख से आज विष का पान कैसे कर सकती हैं अर्थात हमारा मुख अमृत के समान प्राणदायक और मधुर कृष्ण का नाम स्मरण करने का आदि हो चुका है। वह आज तुम्हारे विष के समान घातक और कट् ब्रम्ह का नाम कैसे जप सकता है। हे उद्धव हम सम्पूर्ण ब्रज की नारियाँ अपने कृष्ण के मनोहर शरीर पर मुग्ध हैं और इसलिए उन्हें त्यागकर हमारे शरीर विहीन निराकार ब्रम्ह को स्वीकार नहीं कर सकती।

विशेष –गोपियाँ उद्धव के सम्मुख ऐसी शर्त रख रही हैं जिसकी पूर्ति करना सम्भव नहीं हें। प्रस्तुत पद में कृष्ण के प्रति अटूट प्रेम का चित्रण किया गया है। मधुकर भावों की अभिव्यक्ति की गई है।

टिप्पणी

पराकर्षक नम्न विधान का प्रयोग किया गया है।

85. राग सारंग

बिन गोपाल बैरनि भई कुंजै।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजै॥
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल फूलैं, अलि गुंजै।
पवन पानि घनसार संजीवनि दधिसुत किरन भानु भई भुंजै॥
ए, ऊधो, कहियो माधव सों बिरह कदन करि मारत लुंजै।
सूरदास प्रभु को मग जोवत आँखियाँ भई बरन ज्यों गुंजैं।

शब्दार्थ –बैरिन - शत्रु। विषम - भयंकर। पूजै - समूह। वृथा - व्यर्थ। अलि गूंजै - भ्रमर गुंजार करते हैं। घनसार - चंदन। दधिसुत - चन्द्रमा। भानु - सूर्य। भुंजै - भूनती हैं। कदन - छुरी। लुंजैं - लुंज-पुंज बनाना। बरन - वर्ण या रंग। ज्यों - जैसे। गूंजै - गुंजा का लाल पुष्प।

संदर्भ –प्रस्तुत पद भ्रमरगीत सार से लिया गया है जिसका संपादन आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने किया है।

प्रसंग – संयोग में जो वस्तुएँ आनंददायक प्रतीत होती हैं; वह वियोग काल में दुखदाई प्रतीत होने लगती है। कृष्ण के साथ जो कुंज बड़े-भले और सुंदर प्रतीत होते थे वे ही अब कृष्णाभाव में बड़े कड़वे और कष्टदायक प्रतीत हो रहे हैं। इसी भाव की व्यंजना करती हुई गोपियाँ कह रही हैं–

व्याख्या –कृष्ण के साथ ये कुंजै बड़ी भली प्रकार से सुखद और आनंद प्रद प्रतीत होती थीं। लेकिन अब उनके अभाव में रस-युक्त क्रीडाओं के आधार कुंज भी हमारे लिए शत्रु बन गए हैं। संयोग काल में ये लताएँ बड़ी शीतल लगती थी और उनके विरह में ये कठोर लपटों के समान बन गई हैं। वह कहती हैं कि कृष्णा की उपस्थिति में तो सभी की सार्थकता है किंतु उनके बिना यमुना का जल बहना भी व्यर्थ प्रतीत होता है। इतना ही क्यों पक्षियों का कलरव भी महत्वहीन प्रतीत होता है। कमल व्यर्थ ही बोलते हैं और यह भ्रमर व्यर्थ ही गुलजार करते फिरते हैं। शीतल-पवन, कपूर एवं संजीवनी, चंद्र किरणे अब सूर्य के समान भुने डालती हैं। भावार्थ यह है कि पवन की शीतलता अब दाहक बन गई है। हे उद्धव तुम माधव से जाकर कहना की विरह कि कटार हमें काटकर लंगड़ा बना रही है। सुर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि हे उद्धव! प्राणेश कृष्ण की प्रतीक्षा करते करते यह आंखें गुंजा के समान लाल हो गई हैं।

विशेष –अलंकारों में छेका अनुप्रास, अन्त्या अनुप्रास, उपमा आदि अलंकारों का प्रयोग किया गया है। पद्माकर की इन पंक्तियों की तुला पर रखकर इस वर्णन को पढ़ा जा सकता है–

ऊधै यह सूधो सो संदेशो कहि दीजो भले,
हरि सो हारो ह्यां ने फुले बन कुंज हैं।
किंसुक गुलाब कचनार और अनारन को,
डारन पै डोलत अंगारन के पुँज हैं।
से द्य मधुकर! है काहे की प्रीति?
रवि औ जलधर की सी रीति॥

९०. राग नट

नंदनंदन मोहन सों मधुकर! है काहे की प्रीति?

जौ कीजै तौ है जल, रवि औ जलधर की सी रीति।।
जैसे मीन, कमल, चातक, को ऐसे ही गई बीति।
तलफत, जरत, पुकारत सुनु, सठ! नाहिं न है यह रीति।।
मन हठि परे, कबंध जुध्द ज्यों, हारेहू भइ जीति।
बँधन न प्रेम-समुद्र सूर बल कहुँ बारुहि की भीति।

शब्दार्थ – नंदनंदन - कृष्ण। काहे की - किस बात की। जलधर - जलाशय या बादल। गइ बीति - यों ही व्यतीत हो गई। कवंध - धड़। वारुहि - बालू की। भीति - दीवार।

संदर्भ - प्रस्तुत पद्यांश हमारे हिंदी साहित्य के भ्रमरगीत सार से लिया गया है जिसके संपादक आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी हैं।

प्रसंग –प्रस्तुत पद्यांश में गोपियाँ कृष्ण की निध्लुरता पर व्यंग्य करती जो कह रही हैं उसका वर्णन इस पद में किया गया है।

व्याख्या – उद्धव के वचन को सुनकर गोपियो को जो कष्ट हुआ वह बताया नहीं जा सकता है। कहने की आवश्यकता नही है कि कृष्ण का व्यवहार गोपियों के प्रति निष्लुरतापूर्ण था। इसी निष्ठुरता पर व्यंग्य करती हुई गोपियों कह रहीं हैं कि हे भ्रमर! नंदनंदन कृष्ण से हमारी प्रीति किस बात की है। भाव यह है कि वे हमें प्रेम ही नहीं करते हैं। उनसे जो भी प्रेम करता है वह पछताता रहता है। कारण कृष्ण का व्यवहार तो अपने प्रियजनों के प्रति उसी प्रकार का है जैसा की जल, सूर्य और बादल का। जल से मछली प्रेम करती है, सूर्य से कमल और बादल से चातक प्रेम करता है पर इन प्रेम करने वालों की स्थिति ऐसी है कि स्वयं तो प्रेम में तड़फते रहते हैं और अपने प्रिय से कुछ प्रेम प्राप्त नहीं करते।

जल के अभाव में मछली तड़पती रहती है। सूर्य के अभाव में कमल जलकर ही चैन पाता है– अर्थात विनष्ट हो जाता है। इसी प्रकार बादल के बिना चातक पी पी की पुकार लगाता रहता है। हे शठ! अर्थात हे मूर्ख भ्रमर तू इस बात को अच्छी तरह समझ ले कि प्रेम का यह नियम नहीं है। प्रेम तो दोनों ओर से होता है। कोई उसे एक ओर से निभाना चाहे तो वह सम्भव नहीं हैं।

अत: प्रेम का यह नियम नहीं है जो तुम या तुम्हारे आराध्य अपना रहे हो। मीन, कमल और चातक अपने मन से प्रेम करते हैं और उनके मर जाने पर प्रिय को प्राप्त करने में असफल हो जाने पर भी उसकी जीत ही मानी जानी चाहिएद्य योद्धा युद्ध में लड़ते हैं फिर लड़ते लड़ते उनका सिर कट जाता है तो उनका धड़ ही लड़ता रहता है। यह उनकी निष्ठा है और इसी कारण उसके निमित्त उन्हें प्रतिष्ठा सम्मान की प्राप्ति होती है। मछलियाँ और चातक आदि भी अपनी प्रेमजनित निष्ठा के कारण ही ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि हे उद्धव! प्रेम का सागर कहीं बालू या रेत की दीवार के द्वारा वश में किया जा सकता है। भाव यह है कि यह सम्भव नहीं है तो हमारा व्यक्तित्व भी इसे कैसे सम्पन्न करे। तुम्हारा निर्गुण ब्रम्ह का उपदेश हमारे हृदयों में प्रवाहित प्रेम के सागर को कैसे बाँध सकता है। इतने पर भी यदि तुम यही समझते हो कि यह संभव है तो यह तुम्हारा भ्रम है। गोपियाँ यह कहना चाहती हैं कि हम अपने प्रेम–मार्ग से पूर्णत: दृढ़ता से सलग्न हैं। उसमें कोई भी कमजोरी नहीं है।

विशेष –

1. इस पद में यथाक्रम और उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग किया गया है।
2. पाँचवीं पंक्ति– 'मन हठि.....रीति।' निदर्शना अलंकार तथा श्प्रेम–समुद्र में रूपक का वैभव पूरी कलात्मकता के साथ सुरक्षित है।

टिप्पणी

4.10 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भ्रमरगीत का अर्थ स्पष्ट कीजिए एवं भ्रमरगीत परम्परा का विस्तृत परिचय कीजिये।
2. सूर के भ्रमरगीत की क्या विशेषताएं हैं?
3. सूरदास को भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए।
4. अष्टछाप के कवियों का नामोल्लेख करते हुए विशद विवेचन कीजिए।
5. सूरदास के जीवन वृत्त एवं रचनाओं के संबंध में निष्कर्ष दीजिए।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. सूरदास किस रस के सम्राट कहे गए हैं और क्यों? विस्तृत उत्तर दीजिये।
2. सूरदास जी का जीवन परिचय लिखें।
3. 'अष्टछाप के कवि' को अपने शब्दों में समझाएँ।
4. भ्रमरगीर को समझायें । तथा दिए गाए दोहे का सरलार्थ करें-
   "उधोां। तुम अपनी जतन करौ
   हित की कहत कुहित की लागै
   किन बैकाज ररौ?"
5. राग नट में दिए गए छंद के विषय में शब्दार्थ, संदर्भ, प्रसंग तथा व्याख्या करें।
   नंदनंदन मोहन सों मधुकर! है काहे की प्रीति?
   जौ कीजै तौ है जल, रवि औ जलधर की सी रीति॥
   जैसे मीन, कमल, चातक, को ऐसे ही गई बीति।
   तलफत, जरत, पुकारत सुनु, सठ! नाहिं न है यह रीति॥
   मन हठि परे, कबंध जुध्द ज्यों, हारेहू भइ जीति।
   बँधन न प्रेम-समुद्र सूर बल कहुँ बारुहि की भीति।

♦♦♦♦♦

इकाई 5

तुलसीदासः रामचरितमानस (उत्तरकांड)

संरचना

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 तुलसीदासः जीवन परिचय
5.4 तुलसीदास की रचनाएँ
5.5 रामचरितमानस
5.6 रामचरितमानस के सात काण्ड (अध्याय)
5.7 संक्षिप्त रामचरितमानस कथा
5.8 उत्तरकाण्ड के चयनित भाग की व्याख्या
5.9 अभ्यास प्रश्न

5.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई इस पाठ्यक्रम की चतुर्थ इकाई है। इस इकाई में तुलसीकृत रामचरितमानस के उत्तरकांड का अध्ययन यहाँ पर प्रस्तुत है। इस इकाई को पढ़ने के बाद छात्र–

1. तुलसीदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में जान सकेंगे।
2. तुलसीदास कृत रामचरितमानस की विशेषताओं को जान सकेंगे।
3. उत्तरकांड के विषय-वस्तु की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
4. रामचरितमानस में रामराज की अवधारणा से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

5.2 प्रस्तावना

उत्तरकाण्ड वाल्मीकि कृत रामायण और गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री रामचरितमानस का एक भाग (काण्ड या सोपान) है। उत्तरकाण्ड राम कथा का उपसंहार है। सीता, लक्ष्मण और समस्त वानर सेना के साथ राम अयोध्या वापस पहुँचे। राम का भव्य स्वागत हुआ, भरत के साथ सर्वजनों में आनन्द व्याप्त हो गया। बेदों और शिव की स्तुति के साथ राम का राज्याभिषेक हुआ। वानरों की विदाई दी गई। राम ने प्रजा को उपदेश दिया और प्रजा ने कृतज्ञता प्रकट की। चारों भाइयों के दो-दो पुत्र हुये। रामराज्य एक आदर्श बन गया।

विशेष – मूल वाल्मिकी रामायण में उत्तर काण्ड नहीं है। केवल युद्ध काण्ड सहित छः काण्ड हैं। उत्तर काण्ड को बाद में जोड़ गया है।

5.3 तुलसीदासः जीवन परिचय

गोस्वामी तुलसीदास सगुण काव्यधारा के रामभक्त सन्त कवि थे। रामचरितमानस इनका गौरव ग्रन्थ है। इन्हें आदि काव्य रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि का अवतार भी माना जाता है। राजापुर उत्तर प्रदेश के चित्रकूट जिला के अंतर्गत स्थित एक गाँव है। वहाँ आत्माराम दुबे नाम के एक प्रतिष्ठित कवि नंददास भक्तिकाल में पुष्टिमार्गीय अष्टछाप के कवि थे। नंददास जी का जन्म जनपद-कासगंज के सोरों शूकर क्षेत्र अन्तवेंदी रामपुर (वर्तमान-श्यामपुर) गाँव निवासी भारद्वाज गोत्रीय सनाद्य ब्राह्मण पं० सच्चिदानंद शुक्ल के पुत्र पं० जीवाराम शुक्ल की पत्नी चंपा के गर्भ से सम्वत्–1572 विक्रमी में हुआ था। पं० सच्चिदानंद के दो पुत्र थे, पं० आत्माराम शुक्ल और पं० जीवाराम शुक्ल। पं० आत्माराम शुक्ल एवं हुलसी के पुत्र का नाम महाकवि गोस्वामी तुलसीदास था, जिन्होंने श्रीरामचरितमानस महाग्रंथ की रचना की थी। नंददास जी के छोटे भाई का नाम चँदहास था। नंददास जी, तुलसीदास जी के सगे चचेरे भाई थे। नंददास जी के पुत्र का नाम कृष्णदास था। नंददास ने कई रचनाएँ-रसमंजरी, अनेकार्थमंजरी, भागवत्-दशम स्कंध, श्याम सगाई, गोवर्द्धन लीला, सुदामा चरित, विरहमंजरी, रूप मंजरी, रुक्मिणी मंगल, रासपंचाध्यायी, भँवर गीत, सिद्धांत पंचाध्यायी, नंददास पदावली हैं। तुलसीदास का जन्म स्थान विवादित हैं। कुछ लोग मानते हैं कि इनका जन्म सोरों शूकरक्षेत्र, वर्तमान में कासगंज (एटा) उत्तर प्रदेश में हुआ था। कुछ विद्वान इनका जन्म राजापुर जिला बाँदा (वर्तमान में चित्रकूट) में हुआ मानते हैं। जबकि कुछ विद्वान तुलसीदास का जन्म स्थान राजापुर को मानने के पक्ष में हैं।

संवत् 1554 के श्रावण मास के शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि के दिन अभुकत मूल नक्षत्र में यहाँ तुलसीदास का जन्म हुआ। प्रचलित जनश्रुति के अनुसार शिशु बारह महीने तक माँ के गर्भ में रहने के कारण अत्यधिक हृष्ट पुष्ट था और उसके मुख में दाँत दिखायी दे रहे थे। जन्म लेने के साथ ही उसने

टिप्पणी

राम नाम का उच्चारण किया जिससे उसका नाम रामबोला पड़ गया। उनके जन्म के दूसरे ही दिन माँ का निधन हो गया। पिता ने किसी ओर अनिष्ट से बचने के लिये बालक को चुनियाँ नाम की एक दासी को सौंप दिया और स्वयं विरक्त हो गये। जब रामबोला साढे पाँच वर्ष का हुआ तो चुनियाँ भी नहीं रही। वह गली-गली भटकता हुआ अनाथों की तरह जीवन जीने को विवश हो गया।

भगवान शंकरजी की प्रेरणा से रामशैल पर रहने वाले श्री अनन्तानन्द जी के प्रिय शिष्य श्रीनरहर्यानन्द जी (नरहरि बाबा) ने इस रामबोला के नाम से बहुचर्चित हो चुके इस बालक को ढूँढ निकाला और विधिवत उसका नाम तुलसीराम रखा। तदुपरान्त वे उसे अयोध्या (उत्तर प्रदेश) ले गये और वहाँ संवत् 1561 माघ शुक्ल पंचमी (शुक्रवार) को उसका यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न कराया। संस्कार के समय भी बिना सिखाये ही बालक रामबोला ने गायत्री-मन्त्र का स्पष्ट उच्चारण किया, जिसके देखकर सब लोग चकित हो गये। इसके बाद नरहरि बाबा ने वैष्णवों के पांच संस्कार करके बालक को राम-मन्त्र की दीक्षा दी और अयोध्या में ही रहकर उसे विद्याध्ययन कराया। बालक रामबोला की शद्धि बड़ी प्रखर थी। वह एक ही बार में गुरु-मुख से जो सुन लेता, उसे वह कंठस्थ हो जाता। वहाँ से कुछ काल के बाद गुरु-शिष्य दोनों शूकर क्षेत्र (सोरों) पहुंचे। वहाँ नरहरि बाबा ने बालक को राम-कथा सुनायी किन्तु वह उसे भली-भाँति समझ न आयी।

ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी , गुरुवार, संवत् 1583 को 29 वर्ष की आयु में राजापुर से थोड़ी ही दूर यमुना के उस पार स्थित एक गाँव की अति सुन्दरी भारद्वाज गोत्र की कन्या रत्नावली के साथ उनका विवाह हुआ। चूँकि गौना नहीं हुआ था अत: कुछ समय के लिये वे काशी चले गये और वहां शेषसनातन जी के पास रहकर वेद-वेदांग के अध्ययन में जुट गये। वहाँ रहते हुए अचानक एक दिन उन्हें अपनी पत्नी की याद आयी और वे व्याकुल होने लगे। जब नहीं रहा गया तो गुरुजी से आज्ञा लेकर वे अपनी जन्मभूमि राजापुर लौट आये। पत्नी रत्नावली चूँकि मायके में ही थी क्योंकि तब तक उनका गौना नहीं हुआ था अत: तुलसीराम ने भयंकर अँधेरी रात में उफनती यमुना नदी तैरकर पार की और सीधे अपनी पत्नी के शयन-कक्ष में जा पहुँचे। रत्नीवली इतनी रात गये अपने पति को अकेले आया देखकर आश्चर्यचकित हो गयी। उसने लोक-लाज के भय से जब उन्हें चुपचाप वापस जाने को कहा तो वे उससे उसी समय घर चलने का आग्रह करने लगे। उनकी इस अप्रत्याशित जिद से खीझकर रत्नावली ने स्वरचित एक दोहे के माध्यम से जो शिक्षा उन्हें दी, उसने ही तुलसीदास बना दिया। रत्नावली ने जो दोहा कहा था वह इस प्रकार है–

अस्थि चर्म मय देह यह, ता सों ऐसी प्रीति!
नेकु जो होती राम से, तो काहे भव-भीत?

यह दोहा सुनते ही उन्होंने उसी समय पत्नी को वहीं उसके पिता के घर छोड़ दिया और वापस अपने गाँव राजापुर लौट गये। राजापुर में अपने घर जाकर जब उन्हें यह पता चला कि उनकी अनुपस्थिति में उनके पिता भी नहीं रहे और पूरा घर नष्ट हो चुका है तो उन्हें और भी अधिक कष्ट हुआ। उन्होंने विधि-विधान पूर्वक अपने पिता जी का श्राद्ध किया और गाँव में ही रहकर लोगों को भगवान राम की कथा सुनाने लगे।

कुछ काल राजापुर रहने के बाद वे पुन: काशी चले गये और वहाँ की जनता को राम-कथा सुनाने लगे। एक श्रुति कथा है कि कथा के समय उन्हें एक दिन मनुष्य के वेष में एक प्रेत मिला, जिसने उन्हें हनुमान जी का पता बतलाया। हनुमान जी से मिलकर तुलसीदास ने उनसे श्रीरघुनाथजी का दर्शन कराने की प्रार्थना की। हनुमानजी ने कहा– "तुम्हें चित्रकूट में रघुनाथजी दर्शन होंगे।" इस पर तुलसीदास जी चित्रकूट की ओर चल पड़े।

टिप्पणी

चित्रकूट पहुँचकर उन्होंने रामघाट पर अपना आसन जमाया। एक दिन वे प्रदक्षिणा करने निकले ही थे कि यकायक मार्ग में उन्हें श्रीराम के दर्शन हुए। उन्होंने देखा कि दो बड़े ही सुन्दर राजकुमार घोड़ों पर सवार होकर धनुष-बाण लिये जा रहे हैं। तुलसीदास उन्हें देखकर आकर्षित तो हुए, परन्तु उन्हें पहचान न सके। तभी पीछे से हनुमान जी ने आकर जब उन्हें सारा भेद बताया तो वे पश्चाताप करने लगे। इस पर हनुमान जी ने उन्हें सांत्वना दी और कहा कि प्रात:काल फिर दर्शन होंगे।

संवत् 1607 की मौनी अमावस्था को बुधवार के दिन उनके सामने भगवान श्री राम जी पुन: प्रकट हुए। उन्होंने बालक रूप में आकर तुलसीदास से कहा--"बाबा! हमें चन्दन चाहिये क्या आप हमें चन्दन दे सकते हैं।" हनुमान जी ने सोचा, कहीं वे इस बार भी धोखा न खा जायें, इसलिये उन्होंने तोते का रूप धारण करके यह दोहा कहा–

चित्रकूट के घाट पर, भइ संतन की भीर।
तुलसिदास चंदन घिसें, तिलक देत रघुबीर॥

तुलसीदास भगवान श्री राम जी की अद्‌भुत छवि को निहार कर अपने शरीर की सुध-बुध ही भूल गये। अंततोगत्वा भवान ने स्वयं अपने हाथ से चन्दन लेकर अपने तथा तुलसीदास जी के मस्तक पर लगाया और अन्तर्ध्यान हो गये।

संवत् 1628 में वह हनुमान जी की आज्ञा लेकर अयोध्या की ओर चल पड़े। उन दिनों प्रयाग के माघ मेला लगा हुआ था। वे वहाँ कुछ दिन ठहर गये। पर्व के छ: दिन बाद एक वटवृक्ष के नीचे उन्हें भारद्वाज और याज्ञवल्क्य मुनि के दर्शन हुए। वहाँ उस समय वही कथा हो रही थी, जो उन्होंने सूकरक्षेत्र में अपने गुरु से सुनी थी। माघ मेला समाप्त होते ही तुलसीदास जी प्रयाग से पुन: वापस काशी आ गये और वहाँ के प्रह्लादघाट पर एक ब्राह्मण के घर निवास किया। वहीं रहते हुए उनके अंदर कवित्व-शक्ति का प्रस्फुरण हुआ और वे संस्कृत में पद्य-रचना करने लगे। परन्तु दिन में वे जितने पद्य रचते, रात्रि में वे सब लुप्त हो जाते। यह घटना रोज घटती। आठवें दिन तुलसीदास जी को स्वप्न आया। भगवान शंकर ने उन्हें आदेश दिया कि तुम अपनी भाषा में काव्य रचना करो। तुलसीदास जी की नींद उचट गयी। वे उठकर बैठ गये। उसी समय भगवान शिव और पार्वती उनके सामने प्रकट हुए। तुलसीदास जी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। इस पर प्रसन्न होकर शिव जी ने कहा– "तुम अयोध्या में जाकर रहो और हिन्दी में काव्य-रचना करो। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी कविता सामवेद के समान फलवती होगी।" इतना कहकर गौरीशंकर अन्तर्धान हो गये। तुलसीदास जी उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर काशी से सीधे अयोध्या चले गये।

रामचरितमानस की रचना का प्रारम्भ संवत् 1631 में हुआ। दैवयोग से उस वर्ष रामनवी के दिन वैसा ही योग आया जैसा त्रेतायुग में राम-जन्म के दिन था। उस दिन प्रात:काल तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस की रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष, सात महीने और छब्बीस दिन में यह अद्‌भुत ग्रन्थ सम्पन्न हुआ। संवत् 633 के मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में राम-विवाह के दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये। इसके बाद भगवान की आज्ञा से तुलसीदास जी काशी चले आये। वहाँ उन्होंने भगवान विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा को श्रीरामचरितमानस सुनाया। रात को पुस्तक विश्वनाथ-मन्दिर में रख दी गयी। प्रात:काल जब मन्दिर के पट खोले गये तो पुस्तक पर लिखा हुआ पाया गया--सत्यं शिवं सुन्दरम् जिसके नीचे भगवान शंकर की सही (पुष्टि) थी। उस समय वहाँ उपस्थित लोगो ने "सत्यं शिवं सुन्दरम्" की आवाज भी कानों से सुनी।

इधर काशी के पण्डितों को जब यह बात पता चली तो उनके मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वे दल बनाकर तुलसीदास जी की निन्दा और उस पुस्तक को नष्ट करने का प्रयल करने लगे। उन्होंने पुस्तक चुराने

के लिये दो चोर भी भेजे। चोरों ने जाकर देखा कि तुलसीदास जी की कुटी के आसपास दो युवक धनुषबाण लिये पहरा दे रहे हैं। दोनों युवक बड़े ही सुन्दर क्रमशः श्याम और गौर वर्ण के थे। उनके दर्शन करते ही चोरों की बुद्धि शुद्ध हो गयी। उन्होंने उसी समय से चोरी करना छोड़ दिया और भगवान के भजन में लग गये। तुलसीदास जी ने अपने लिये भगवान को कष्ट हुआ जान कुटी का सारा सामान लुटा दिया और पुस्तक अपने मित्र टोडरमल (अकबर के नौरत्नो में एक) के यहाँ रखवा दी। इसके बाद उन्होंने अपनी विलक्षण स्मरण शक्ति से एक दूसरी प्रति लिखी। उसी के आधार पर दूसरी प्रतिलिपियाँ तैयार की गयीं और पुस्तक का प्रचार दिनों-दिन बढ़ने लगा।

इधर काशी के पण्डितों ने और कोई उपाय न देख श्री मधुसूदन सरस्वती नाम के महापण्डित को उस पुस्तक को दिखकर अपनी सम्मति देने की प्रार्थना की। मधुसूदन सरस्वती जी ने उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उस पर अपनी ओर से यह टिप्पणी लिख दी–

आनन्दकानने हयास्मिंजंगमस्तुलसीतरुः।
कवितामंजरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥

इसका हिन्दी में अर्थ इस प्रकार है–"काशी के आनन्द-वन में तुलसीदास साक्षात तुलसी का पौधा है। उसकी काव्य-मंजरी बड़ी ही मनोहर है, जिस पर श्रीराम रूपी भँवरा सदा मँडराता रहता है।" पण्डितों को उनकी इस टिप्पणी पर भी संतोष नहीं हुआ। तब पुस्तक की परीक्षा का एक अन्य उपाय सोचा गया। काशी के विश्वनाथ-मन्दिर में भगवान विश्वनाथ के सामने सबसे ऊपर वेद, उनके नीचे शास्त्र, शास्त्रों के नीचे पुराण और सबके नीचे रामचरितमानस रख दिया गया। प्रातःकाल जब मन्दिर खोला गया तो लोगों ने देखा कि श्रीरामचरितमानस वेदों के ऊपर रखा हुआ है। अब तो सभी पण्डित बड़े लज्जित हुए। उन्होंने तुलसीदास जी से क्षमा माँगी और भक्ति-भाव से उनका चरणोदक लिया। तुलसीदास जी जब काशी के विख्यात् घाट असीघाट पर रहने लगे तो एक रात कलियुग मूर्त रूप धारण कर उनके पास आया और उन्हें पीड़ा पहुँचाने लगा। तुलसीदास जी ने उसी समय हनुमान जी का ध्यान किया। हनुमान जी ने साक्षात प्रकट होकर उन्हें प्रार्थना के पद रचने को कहा, इसके पश्चात् उन्होंने अपनी अन्तिम कृति विनय-पत्रिका लिखी और उसे भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया। श्रीराम जी ने उस पर स्वयं अपने हस्ताक्षर कर दिये और तुलसीदास जी को निर्भय कर दिया। संवत् 680 में श्रावण कृष्ण तृतीया शनिवार को तुलसीदास जी ने 'राम-राम' कहते हुए अपना शरीर परित्याग किया।

तुलसीदास जी की हस्तलिपि अत्यधिक सुन्दर थी लगता है जैसे उस युग में उन्हें कैलोग्राफी की कला आती थी। उनके जन्म-स्थान राजापुर के एक मन्दिर में श्रीरामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड की एक प्रति सुरक्षित रखी हुई है।

5.4 तुलसीदास की रचनाएँ

अपने 126 वर्ष के दीर्घ जीवन-काल में तुलसीदास ने कालक्रमानुसार निम्नलिखित कालजयी ग्रंथों की रचनाएँ कीं–

गीतावली (1571), कृष्ण-गीतावली (1571), रामचरितमानस (574), पार्वती-मंगल (1582), विनय-पत्रिका (1582) जानकी-मंगल (1582), रामललानहछू (1582), दोहावली (1593), वैराग्यसंदीपनी (1612), रामाज्ञाप्रश्न (1612), सतसई, बरवै रामायण (1612), कवितावली (1612), हनुमान बाहुक।

रामचरितमानस तुलसीदास जी का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ रहा है। उन्होंने अपनी रचनाओं के संबंध में कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है, इसलिए प्रामाणित रचनाओं के सम्बन्ध में अन्तःसाक्ष्य का अभाव

टिप्पणी

दिखायी देता है। 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एंड एथिक्स' में ग्रियर्सन ने भी उपरोक्त प्रथम बारह ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

5.5 रामचरितमानस

रामचरितमानस अवधी भाषा में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा 16वीं सदी में रचित प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस ग्रंथ को अवधी साहित्य (हिंदी साहित्य) की एक महान कृति माना जाता है। इसे सामान्यत: 'तुलसी रामायण' या 'तुलसीकृत रामायण' भी कहा जाता है। रामचरितमानस भारतीय संस्कृति में एक विशेष स्थान रखता है। रामचरितमानस की लोकप्रियता अद्वितीय है। उत्तर भारत में 'रामायण' के रूप में बहुत से लोगों द्वारा प्रतिदिन पढ़ा जाता है। शरद नवरात्रि में इसके सुन्दर काण्ड का पाठ पूरे नौ दिन किया जाता है। रामायण मण्डलों द्वारा मंगलवार और शनिवार को इसके सुंदरकांड का पाठ किया जाता है।

रामचरितमानस के नायक राम हैं जिनको एक मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में दर्शाया गया है जोकि अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी हरि नारायण भगवान के अवतार हैं जबकि महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण में राम को एक आदर्श चरित्र मानव के रूप में दिखाया गया है। सम्पूर्ण मानव समाज ये सिखाता है कि जीवन को किस प्रकार जिया जाय भले ही उसमे कितने भी विघ्न हों। तुलसी के राम सर्वशक्तिमान होते हुए भी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। गोस्वामी जी ने रामचरित का अनुपम शैली में दोहों, चौपाइयों, सोरठों तथा छंद का अश्रय लेकर वर्णन किया है।

रामचरितमानस गोस्वामी तुलसीदास द्वारा लिखा गया महाकाव्य है, जैसा कि स्वयं गोस्वामी जी ने रामचरित मानस के बालकाण्ड में लिखा है कि उन्होंने रामचिरत मानस की रचना का आरंभ अयोध्या में विक्रम संवत् 1631 (1574 ईस्वी) को रामनवमी के दिन (मंगलवार) किया था। गीताप्रेस गोरखपुर के संपादक हनुमान प्रसाद पोद्दार के अनुसार रामचरितमानस को लिखने में गोस्वामी तुलसीदास जी को 2 वर्ष 7 माह 26 दिन का समय लगा था और उन्होंने इसे संवत् 1633 (1576 ईस्वी) के मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में राम विवाह के दिन पूर्ण किया था। इस महाकाव्य की भाषा अवधी है। श्रीरामचरितमानस का कथानक रामायण से लिया गया है। रामचरितमानस लोक ग्रन्थ है और इसे उत्तर भारत में बड़े भक्तिभाव से पढ़ा जाता है। इसके बाद विनय पत्रिका उनका एक अन्य महत्त्वपूर्ण काव्य है। महाकाव्य श्रीरामचरितमानस को विश्व के 100 सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय काव्यों में 46वाँ स्थान दिया गया।

रामचरितमानस में गोस्वामी जी ने रामचन्द्र के निर्मल एवं चरित्र का वर्णन किया है। महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित संस्कृत रामायण को रामचरितमानस का आधार माना जाता है। यद्यपि रामायण और रामचरितमानस दोनों में ही राम के चरित्र का वर्णन है परन्तु दोनों ही महाकाव्यों के रचने वाले कवियों की वर्णन शैली में उल्लेखनीय अन्तर है। जहाँ वाल्मीकि ने रामायण में राम को केवल एक सांसारिक व्यक्ति के रूप में दर्शाया है, वहीं गोस्वामी जी ने रामचरितमानस में राम को भगवान विष्णु का अवतार माना है।

5.6 रामचरितमानस में सात काण्ड (अध्याय)

रामचरितमानस को गोस्वामी जी ने सात काण्डों में विभक्त किया है। इन सात काण्डों के नाम हैं–

1. बालकाण्ड
2. अयोध्याकाण्ड
3. अरण्यकाण्ड
4. किष्किन्धाकाण्ड

तुलसीदास: रामचरितमानस (उत्तरकांड)

टिप्पणी

5. सुन्दरकाण्ड
6. लंकाकाण्ड (युद्धकाण्ड)
7. उत्तरकाण्ड

छन्दों की संख्या के अनुसार बालकाण्ड और किष्किन्धाकाण्ड क्रमशः सबसे बड़े और छोटे काण्ड हैं। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में अवधी के अलंकारों का बहुत सुन्दर प्रयोग किया है विशेषकर अनुप्रास अलंकार का। रामचरितमानस में प्रत्येक हिंदू को अनन्य आस्था है और इसे हिन्दुओं का पवित्र ग्रन्थ माना जाता है।

5.7 संक्षिप्त रामचरितमानस कथा

यह बात उस समय की है जब मनु और सतरूपा परमत्रम की तपस्या कर रहे थे। कई वर्ष तपस्या करने के बाद शंकरजी ने स्वयं पार्वती से कहा कि ब्रह्मा, विष्णु और मैं कई बार मनु सतरूपा के पास वर देने के लिये आये ("बिधि हरि हर तप देखि अपारा, मनु समीप आये बहु बारा") और कहा कि वर तुम माँगना चाहते हो माँग लो; पर मनु सतरूपा को तो पुत्र रूप में स्वयं परमब्रह्म को ही माँगना था, फिर ये कैसे उनसे यानी शंकर, ब्रह्मा और विष्णु से वर माँगते? हमारे प्रभू राम तो सर्वज्ञ हैं। वे भक्त के हृदय की अभिलाषा को स्वतः ही जान लेते हैं। जब 23 हजार वर्ष और बीत गये तो प्रभु राम के द्वारा आकाशवाणी होती है–

प्रभु सर्वग्य दास निज जानी, गति अनन्य तापस नृप रानी।
माँगु माँगु बरु भइ नभ बानी, परम गँभीर कृपामृत सानी॥

इस आकाशवाणी को जब मनु सतरूपा सुनते हैं तो उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है और जब स्वयं परमब्रह्म राम प्रकट होते हैं तो उनकी स्तुति करते हुए मनु और सतरूपा कहते हैं–

"सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू, बिधि हरि हर बंदित पद रेनू।
सेवत सुलभ सकल सुखदायक, प्रणताल सचराचर नायक॥"

अर्थात् जिनके चरणों की वंदना विधि, हरि और हर यानी ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों ही करते हैं, तथा जिनके स्वरूप की प्रशंसा सगुण और निर्गुण दोनों करते हैं: उनसे वे क्या वर माँगें? इस बात का उल्लेख करके तुलसीदास ने उन लोगों को भी राम की ही आराधना करने की सलाह दी है जो केवल निराकार को ही परमब्रह्म मानते हैं।

रामचरितमानस में भले रामकथा हो, किन्तु कवि का मूल उद्देश्य राम के चरित्र के माध्यम से नैतिकता एवं सदाचार की शिक्षा देना रहा है। रामचरितमानस भारतीय संस्कृति का वाहक महाकाव्य ही नहीं अपितु विश्वजनीत आचारशास्त्र का बोधक महान ग्रन्थ भी है। यह मानव धर्म के सिद्धान्तों के प्रयोगात्मक पक्ष का आदर्श रूप प्रस्तुत करने वाला ग्रन्थ है। यह विभिन्न पुराण निगमागम सम्मत, लोकशास्त्र काव्यावेक्षणजन्य स्वानुभूति पुष्ट प्रतिभा चाक्षुप विषयीकृत जागतिक एवं पारमार्थिक तत्वों का सम्यक् निरूपण करता है। गोस्वामी जी ने स्वयं कहा है–

नाना पुराण निगमागम सम्मत यद्नामायणे निगदितं क्वचिदन्योपि
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ भाषा निबंमति मंजुलमातनोति॥

अर्थात यह ग्रन्थ नाना पुराण, निगमागम, रामायण तथा कुछ अन्य ग्रन्थों से लेकर रचा गया है और तुलसी ने अपने अन्तः सुख के लिये रघुनाथ की गाथा कही है। सामान्य धर्म, विशिष्ट धर्म तथा आपकद्धर्म के विभिन्न रूपों की अवतारणा इसकी विशेषता है। पितृधर्म, पुत्रधर्म, मातृधर्म, गुरुधर्म, शिष्यधर्म,

तुलसीदासः रामचरितमानस (उत्तरकांड)

टिप्पणी

भ्रातृधर्म, मित्रधर्म, पतिधर्म, पत्नीधर्म, शत्रुधर्म प्रभृति जागतिक सम्बन्धों के विश्लेषण के साथ ही साथ सेवक-सेव्य, पूजक-पूज्य, एवं आराधक-आराध्य के आचरणीय कर्तव्यों का सांगोपांग वर्णन इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है। इसीलिए स्त्री-पुरुष आवृद्ध-बाल-युवा निर्धन, धनी, शिक्षित, अशिक्षित, गृहस्थ, संन्यासी सभी इस ग्रन्थ रत्न का आदरपूर्वक परायण करते हैं। देखिए–

सुमति कुमति सब कें उर रहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं।।
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।।

इसी प्रकार, राजधर्म पर कहते हैं–

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होड़ बेगिहीं नास।।

वस्तुतः रामचरितमानस में भक्ति, साहित्य, दर्शन सब कुछ है। तुलसीदास की लोकप्रियता का कारण यह है कि उन्होंने अपनी कविता में अपने देखे हुए जीवन का बहुत गहरा और व्यापक चित्रण किया है। रामचरितमानस तुलसीदासजी का सुदृढ़ कीर्ति स्तम्भ है जिसके कारण वे संसार मे श्रेष्ठ कवि के रूप में जाने जाते हैं। मानस का कथाशिल्प, काव्यरूप, अलंकार संयोजना, छंद नियोजना और उसका प्रयोगात्मक सौंदर्य, लोक-संस्कृति तथा जीवन-मूल्यों का मनोवैज्ञानिक पक्ष अपने श्रेष्ठतम रूप में है। स्वामी तुलसीदास कृत महाकाव्य श्रीरामचरितमानस मूल अवधी भाषा में है।

5.8 उत्तरकाण्ड के चयनित भाग की व्याख्या

उत्तरकाण्ड में राज्यभिषेक से काकभुशुण्डि तक के घटनाग्रम आते हैं–

रहा एक दिन अवधिकर अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृस तन राम बियोग।।

भावार्थ – श्री रामजी के लौटने की अवधि का एक ही दिन बाकी रह गया, अतएव नगर के लोग बहुत आतुर (अधीर) हो रहे हैं। राम के वियोग में दुबले हुए स्त्री-पुरुष जहाँ-तहाँ सोच विचार कर रहे हैं (कि क्या बात है श्री रामजी क्यों नहीं आए)।

सगुन होहिं सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगवन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर।।

भावार्थ – इतने में सब सुंदर शकुन होने लगे और सबके मन प्रसन्न हो गए। नगर भी चारों ओर से रमणीक हो गया। मानो ये सब के सब चिह्न प्रभु के (शुभ) आगमन को जता रहे हैं।

कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ।
आयउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोइ।।

भावार्थ –कौसल्या आदि सब माताओं के मन में ऐसा आनंद हो रहा है जैसे अभी कोई कहना ही चाहता है कि सीताजी और लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्री रामचंद्रजी आ गए।

भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार।।

भावार्थ – भरतजी की दाहिनी आँख और दाहिनी भुजा बार-बार फड़क रही है। इसे शुभ शकुन जानकर उनके मन में अत्यंत हर्ष हुआ और वे विचार करने लगे–

चौपाई – रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा।।
कारन कवन नथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ।।1।।

तुलसीदास: रामचरितमानस (उत्तरकांड)

टिप्पणी

भावार्थ –प्राणों की आधार रूप अवधि काएक ही दिन शेष रह गया। यह सोचते ही भरतजी के मन में अपार दु:ख हुआ। क्या कारण हुआ कि नाथ नहीं आए? प्रभु ने कुटिल जानकर मुझे कहीं भुला तो नहीं दिया?।।1।।

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी।।
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा।।2।।

भावार्थ –अहा हा! लक्ष्मण बड़े धन्य एवं बड़भागी हैं, जो श्री रामचंद्रजी के चरणारविन्द के प्रेमी हैं (अर्थात् उनसे अलग नहीं हुए)। मुझे तो प्रभु ने कपटी ओर कुटिल पहचान लिया, इसी से नाथ ने मुझे साथ नहीं लिया।।2।।

जौं करनी समुझे प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी।।
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ।।3।।

भावार्थ –(बात भी ठीक ही है, क्योंकि) यदि प्रभु मेरी करनी पर ध्यान दें तो सौ करोड़ (असंख्य) कल्पों तक भी मेरा निस्तार (छुटकारा) नहीं हो सकता (परंतु आशा इतनी ही है कि), प्रभु सेवक का अवगुण कभी नहीं मानते। वे दीनबंधु हैं और अत्यंत ही कोमल स्वभाव के हैं।।3।।

मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई।।
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना।।4।।

भावार्थ –अतएव मेरे हृदय में ऐसा पक्का भरोसा है कि श्री रामजी अवश्य मिलेंगे, (क्योंकि) मुझे शकुन बड़े शुभ हो रहे हैं, किंतु अवधि बीत जाने पर यदि मेरे प्राण रह गए तो जगत् में मेरे समान नीच कौन होगा?।।4।।

दोहा – राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पबनसुत आइ गयउ जनु पोत।।क।।

भावार्थ – श्री रामजी के विरह समुद्र में भरतजी का मन डूब रहा था, उसी समय पवनपुत्र हनुमान जी ब्राह्मण का रूप धरकर इस प्रकार आ गए, मानो (उन्हें डूबने से बचाने के लिए) नाव आ गई हो।।1(क)।।

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।।
राम राम रघुपति जपत स्त्रवत नयन जलजात।। ख।।

भावार्थ –हनुमानजी ने दुर्बल शरीर भरतजी को जटाओं का मुकुट बनाए, राम! राम! रघुपति! जपते और कमल के समान नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं) जल बहाते कुश के आसन पर बैठे देखा।।1(ख)।।

चौपाई – देखत हनुमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जल बरषेउ।।
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ श्रवन सुधा सम बानी।।1।।

भावार्थ –उन्हें देखते ही हनुमानजी अत्यंत हर्षित हुए। उनका शरीर पुलकित हो गया, नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बरसने लगा। मन में बहुत प्रकार से सुख मानकर वे कानों के लिए अमृत के समान वाणी बोले–।।1।।

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती।।
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देब मुनि त्राता।।2।।

भावार्थ –जिनके विरह में आप दिन-रात सोच करते (घुलते) रहते हैं और जिनके गुण समूहों की पंक्तियों को आप निरंतर रटते रहते हैं, वे ही रघुकुल के तिलक, सज्जनों को सु:ख देने वाले और देवताओं तथा मुनियों के रक्षक श्री रामजी सकुशल आ गए।।2।।

टिप्पणी

रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत।।
सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूषा।।3।।

भावार्थ –शत्रु को रण में जीतकर सीताजी और लक्ष्मणजी सहित प्रभु आ रहे हैं, देवता उनका सुंदर यश गा रहे हैं। ये वचन सुनते ही (भरतजी को) सारे दु:ख भूल गए। जैसे प्यासा आदमी अमृत पाकर प्यास के दु:ख को भूल जाए।।3।।

को तुम्ह तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए।।
मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना।।4।।

भावार्थ –भरतजी ने पूछा– हे तात! तुम कौन हो और कहाँ से आए हो? (जो) तुमने मुझको (ये) परम प्रिय (अत्यंत आनंद देने वाले) वचन सुनाए। (हनुमानजी ने कहा) हे कृपानिधान! सुनिए, मैं पवन का पुत्र और जाति का वानर हूँ, मेरा नाम हनुमान है।।।4।।

दीनबंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर।।
मिलत प्रेम नहिं हृदयं समाता। नयन स्त्रवतजल पुलकित गाता।।5।।

भावार्थ – मैं दीनों के बंधु श्री रघुनाथजी का दास हूँ। यह सुनते ही भरतजी उठकर आदरपूर्वक हनुमानजी से गले मिले। मिलते समय प्रेम हृदय में नहीं समाता। नेत्रों से (आनंद और प्रेम के आँसुओं का) जल बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया।।5।।

कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजुमोहि राम पिरीते।।
बार बार बूझी कुसलाता। तो कहुँ देउँ काह सुन भ्राता।।6।।

भावार्थ –(भरतजी ने कहा–) हे हनुमान! तुम्हारे दर्शन से मेरे समस्त दु:ख समाप्त हो गए (दु:खों का अंत हो गया)। (तुम्हारे रूप में) आज मुझे प्यारे रामजी ही मिल गए। भरतजी ने बार-बार कुशल पूछी (और कहा-) हे भाई! सुनो, (इस शुभ संवाद के बदले में) तुम्हें क्या दूँ?।।6।।

एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं।।
नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही।।7।।

भावार्थ – इस संदेश के समान (इसके बदले में देने लायक पदार्थ) जगत् में कुछ भी नहीं है, मैंने यह विचार कर देख लिया है। (इसलिए) हे तात! मैं तुमसे किसी प्रकार भी उक्ण नहीं हो सकता। अब मुझे प्रभु का चरित्र (हाल) सुनाओ।।7।।

तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा।।
श्कहु कपि कबहुँ कृपाल गोसाई। सुमिरहिं मोहि दास की नाई।।8।।

भावार्थ –तब हनुमानजी ने भरतजी के चरणों में मस्तक नवाकर श्री रघुनाथजी की सारी गुणगाथा कही। (भरतजी ने पूछा-) हे हनुमान्! कहो, कृपालु स्वामी श्री रामचंद्रजी कभी मुझे अपने दास की तरह याद भी करते हैं?।।8।।

छंद – निज दास ज्यों रघुबंसभूषन कबहुँ मम सुमिरन करयो।
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलकि तन चरनन्हि परयो।।
रघुबीर निज मुख जासु गुन गन कहत अग जग नाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन सिंधु सो।।

भावार्थ –रघुवंश के भूषण श्री रामजी क्या कभी अपने दास की भाँति मेरा स्मरण करते रहे हैं? भरतजी के अत्यंत नम्र वचन सुनकर हनुमानजी पुलकित शरीर होकर उनके चरणों पर गिर पड़े (और मन में विचारने लगे कि) जो चराचर के स्वामी हैं, वे श्री रघुवीर अपने श्रीमुख से जिनके गुणसमूहों का वर्णन

करते हैं, वे भरतजी ऐसे विनम्र, परम पवित्र और सदगुणों के समुद्र क्यों न हों?

दोहा – राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि हरष न हृदयँ समात।।2क।।

भावार्थ – हनुमानजी ने कहा – हे नाथ! आप श्री रामजी को प्राणों के समान प्रिय हैं, हे तात! मेरा वचन सत्य है। यह सुनकर भरतजी बार-बार मिलते हैं, हृदय में हर्ष समाता नहीं है।।2(क)।।

सोरठा – भरत चरन सिरु नाइ तुरित गयउ कपि राम पहिं।
कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि।।2ख।।

भावार्थ – फिर भरतजी के चरणों में सिर नवाकर हनुमानजी तुरंत ही श्री राम जी के पास (लौट) गए और जाकर उन्होंने सब कुशल कही, तब प्रभु हर्षित होकर विमान पर चढ़कर चले।।2(ख)।।

चौपाई – हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहि सुनाए।।
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई।।1।।

भावार्थ – इधर भरतजी भी हर्षित होकर अयोध्यापुरी में आए और उन्होंने गुरुजी को सब समाचार सुनाया। फिर राजमहल में खबर जनाई कि श्री रघुनाथजी कुशलपूर्वक नगर को आ रहे हैं।।1।।

सुनत सकल जननीं उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं।।
समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए।।2।।

भावार्थ –खबर सुनते ही सब माताएँ उठ दौड़ीं। भरतजी ने प्रभु की कुशल कहकर सबको समझाया। नगर निवासियों ने यह समाचार पाया, तो स्त्री-पुरुष सभी हर्षित होकर दौड़े।।2।।

दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगल मूला।।
भरि भरि हेम थार भामिनी। गावत चलिं सिंधुरगामिनी।।।।8।।

भावार्थ – (श्री रामजी के स्वागत के लिए) दही, दूब, गोरोचन, फल, फूल और मंगल के मूल नवीन तुलसीदास आदि वस्तुएँ सोने की थाली में भर-भरकर हथिनी की सी चाल वाली सौभाग्यवती स्त्रियाँ (उन्हें लेकर) गाती हुई चलीं।।3।।

जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं।।
एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई।।।।4।।

भावार्थ –जो जैसे हैं (जहाँ जिस दशा में है) वे वैसे ही (वहीं से उसी दशा में) उठ दौड़ते हैं। (देर हो जाने के डर से) बालकों को कोई साथ नहीं लाते। एक-दूसरे से पूछते हैं– भाई! तुमने दयालु श्री रघुनाथजी को देखा है?।।4।।

अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी।।
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा। भई सरजू अति निर्मल नीरा।।5।।

भावार्थ –प्रभु को आते जानकर अवधपुरी संपूर्ण शोभाओं की खान हो गई। तीनों प्रकार की सुंदर वायु बहने लगी। सरयूजी अति निर्मल जल वाली हो गईं। (अर्थात् सरयूजी का जल अत्यंत निर्मल हो गया)।।5।।

दोहा– हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपानिकेत।।8 क।।

भावार्थ –गुरु वशिष्ठजी, कुटुम्बी, छोटे भाई शत्रुघ्न तथा ब्राह्मणों के समूह के साथ हर्षित होकर भरतजी अत्यंत प्रेमपूर्ण मन से कृपाधाम श्री रामजी के सामने अर्थात् उनकी अगवानी के लिए चले।।8 (क)।।

बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।

टिप्पणी

देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान।।3 ख।।

भावार्थ – बहुत-सी स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़ीं आकाश में विमान देख रही हैं और उसे देखकर हर्षित होकर मीठे स्वर में सुंदर मंगल गीत गा रही हैं।3 (ख)।।

राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान।
बढ़यो कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान।।3 ग।।

भावार्थ –श्री रघुनाथजी पूर्णिमा के चंद्रमा हैं तथा अवधपुर समुद्र है, जो उस पूर्णचंद्र को देखकर हर्षित हो रहा है और शोर करता हुआ बढ़ रहा है (इधर-उधर दौड़ती हुई) स्त्रियाँ उसकी तरंगों के समान लगती हैं।।3 (ग)।।

चौपाई – इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर।।
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा।।।।

भावार्थ – यहाँ (विमान पर से) सूर्य कुल रूपी कमल को प्रफुल्लित करने वाले सूर्य श्री राम जी वानरों को मनोहर नगर दिखला रहे हैं। (वे कहते हैं-) हे सुग्रीव! हे अंगद! हे लंकापति विभीषण! सुना। यह पुरी पवित्र है और यह देश सुंदर है। ।।1।।

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद पुरान बिदित जगु जाना।।
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ काऊ।।2।।

भावार्थ – यद्यपि सबने वैकुण्ठ की बड़ाई की है– यह वेद-पुराणों में प्रसिद्ध है और जगत् जानता है, परंतु अवधपुरी के समान मुझे वह भी प्रिय नहीं है। यह बात (भेद) कोई-कोई (बिरले ही) जानते हैं।।2।।

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि।।
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा।।3।।

भावार्थ –यह सुहावनी पुरी मेरी जन्मभूमि है। इसके उत्तर दिशा में जीवों को पवित्र करने वाली सरयू नदी बहती है, जिसमें स्नान करने से मनुष्य बिना ही परिश्रम मेरे समीप निवास (सामीप्य मुक्ति) पा जाते हैं।।।।3।।

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुख रासी।।
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी। धन्य अवध जो राम बखानी।।4।।

भावार्थ – यहाँ के निवासी मुझे बहुत ही प्रिय हैं। यह पुरी सुख की राशि और मेरे परमधाम को देने वाली है। प्रभु की वाणी सुनकर सब वानर हर्षित हुए (और कहने लगे कि) जिस अवध की स्वयं श्री रामजी ने बड़ाई की, वह (अवश्य ही) धन्य है।।4।।

श्री रामजी का स्वागत, भरत मिलाप, सबका मिलनानन्द

दोहा– आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान।।4 क।।

भावार्थ –कृपा सागर भगवान श्री रामचंद्रजी ने सब लोगों को आते देखा, तो प्रभु ने विमान को नगर के समीप उतरने की प्रेरणा की। तब वह पृथ्वी पर उतरा।।4 (क)।।

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु।।4 ख।।

भावार्थ –विमान से उतरकर प्रभु ने पुष्पक विमान से कहा कि तुम अब कुबेर के पास जाओ। श्री रामचंद्रजी की प्रेरणा से वह चला, उसे (अपने स्वामी के पास जाने का) हर्ष है और प्रभु श्री रामचंद्रजी

से अलग होने का अत्यंत दु:ख भी।।4 (ख)।।।

चौपाई– आए भरत संग सब लोगा। कृस तन श्री, रघुबीर बियोगा।।
बामदेव बसिष्ट मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक।।1।।

भावार्थ –भरतजी के साथ सब लोग आए। श्री रघुवीर के वियोग से सबके शरीर दुबले हो रहे हैं। प्रभु ने वामदेव, वशिष्ठ आदि मुनिश्रेष्ठों को देखा, तो उन्होंने धनुष-बाण पृथ्वी पर रखकर-।।1।।

धाइ धरे गुर चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह।।
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरें कुसल तुम्हारिहिं दाया।।2।।

भावार्थ –छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित दौड़कर गुरुजी के चरणकमल पकड़ लिए, उनके रोम-रोम अत्यंत पुलकित हो रहे हैं। मुनिराज वशिष्ठजी ने (उठाकर) उन्हें गले लगाकर कुशल पूछी। (प्रभु ने कहा-) आप ही की दया में हमारी कुशल है।।।2।।

सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा।।
गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज।।3।।

भावार्थ –धर्म की धुरी धारण करने वाले रघुकुल के स्वामी श्री रामजी ने सब ब्राह्मणों से मिलकर उन्हें मस्तक नवाया। फिर भरतजी ने प्रभु के वे चरणकमल पकड़े जिन्हें देवता, मुनि, शंकरजी और ब्रह्माजी (भी) नमस्कार करते हैं।।3।।

परे भूमि नहिं उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए।।
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े।।4।।

भावार्थ –भरतजी पृथ्वी पर पड़े हैं, उठाए उठते नहीं। तब कृपासिंधु श्री रामजी ने उन्हें जबर्दस्ती उठाकर हृदय से लगा लिया। (उनके) साँवले शरीर पर रोएँ खड़े हों गए। नवीन कमल के समान नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं के) जल की बाढ़ आ गई।।4।।

छंद– राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुअन धनी।।
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कहीं
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही।।1।।

भावार्थ –कमल के समान नेत्रों से जल बह रहा है। सुंदर शरीर में पुलकावली (अत्यंत) शोभा दे रही है। त्रिलोकी के स्वामी प्रभु श्री रामजी छोटे भाई भरतजी को अत्यंत प्रेम से हृदय से लगाकर मिले। भाई से मिलते समय प्रभु जैसे शोभित हो रहे हैं, उसकी उपमा मुझसे कहीं नहीं जाती। मानो प्रेम और श्रृंगार शरीर धारण करके मिले और श्रेष्ठ शोभा को प्राप्त हुए।।1।।

बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई।।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई।।
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो।।2।।

भावार्थ –कृपानिधान श्री रामजी भरतजी से कुशल पूछते हैं, परंतु आनंदवश भरतजी के मुख से वचन शीघ्र नहीं निकलते। (शिवजी ने कहा-) हे पार्वती! सुनो, वह सुख (जो उस समय भरतजी को मिल रहा था) वचन और मन से परे है, उसे वही जानता है जो उसे पाता है। (भरतजी ने कहा-) हे कोसलनाथ! आपने आर्त्त (दु:खी) जानकर दास को दर्शन दिए, इससे अब कुशल है। विरह समुद्र में डूबते हुए मुझको कृपानिधान ने हाथ पकड़कर बचा लिया।।।।2।।

टिप्पणी

दोहा– पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदयँ लगाइ।
लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ।5।।

भावार्थ –फिर प्रभु हर्षित होकर शत्रुघ्ननी को हृदय से लगाकर उनसे मिले। तब लक्ष्मणजी और भरतजी दोनों भाई परम प्रेम से मिले।।5।।

चौपाई– भरतानुज लक्मिन पुनि भेंटे। दुसह बिरह संभव दुख मेटे।।
सीता चरन भरत सिरु नावा। अनुज समेत परम सुख पावा।।।।

भावार्थ –फिर लक्ष्मणजी शत्रुघ्नजी से गले लगकर मिले और इस प्रकार विरह से उत्पन्न दु:सह दु:ख का नाश किया। फिर भाई शत्रुघ्ननी सहित भरतजी ने सीताजी के चरणों में सिर नवाया और परम सुख प्राप्त किया।।।

प्रमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी।।2।।

भावार्थ –प्रभु को देखकर अयोध्यावासी सब हर्षित हुए। वियोग से उत्पन्न सब दु:ख नष्ट हो गए। सब लोगों को प्रेम विह्वल (और मिलने के लिए अत्यंत आतुर) देखकर खर के शत्रु कृपालु श्री रामजी ने एक चमत्कार किया।।2।।

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला।।
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नर नारि बिसोकी।।3।।

भावार्थ –उसी समय कृपालु श्री रामजी असंख्य रूपों में प्रकट हो गए और सबसे (एक ही साथ) यथायोग्य मिले। श्री रघुवीर ने कृपा की दृष्टि से देखकर सब नर-नारियों को शोक से रहित कर दिया।।3।।

छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहूँ न जाना।।
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा। आगें चले सील गुन धामा।।4।।

भावार्थ – भगवान क्षण मात्र में सबसे मिल लिए। है उमा! यह रहस्य किसी ने नहीं जाना। इस प्रकार शील और गुणों के धाम श्री रामजी सबको सुखी करके आगे बढ़े।।4।।

कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई।।5।।

भावार्थ – कौसल्या आदि माताएँ ऐसे दौड़ीं मानो नई व्यायी हुई गायें अपने बछड़ों को देखकर दौड़ी हों।।5।।

छंद – जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गई।
दिन अंत पुर रुख स्त्रवत थन हुंकार करि धावत भईं।।
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहुबिधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोगभव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे।।

भावार्थ – मानो नई व्यायी हुई गायें अपने छोटे बछड़ों को छोड़ परवश होकर वन में चरने गई हों और दिन का अंत होने पर (बछड़ों से मिलने के लिए) हुँकार करके थन से दूध गिराती हुई नगर की ओर दौड़ी हों। ने अत्यंत प्रेम से सब माताओं से मिलकर उनसे बहुत प्रकार के कोमल वचन कहे। वियोग से उत्पन्न भयानक विपत्ति दूर हो गई और सबने (भगवान से मिलकर और उनके वचन सुनकर) अगणित सुख और हर्ष प्राप्त किए।

दोहा – भेंटेउ तनय सुमित्राँ राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कैकई हृदयँ बहुत सकुचानि।।6 (क)।।

भावार्थ –सुमित्राजी अपने पुत्र लक्ष्मणजी की श्री रामजी के चरणों में प्रीति जानकर उनसे मिलीं। श्री

टिप्पणी

रामजी से मिलते समय कैकेयीजी हृदय में बहुत सकुचाई॥6(क)॥

लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ॥6 (ख)॥
चौपाई – सासुन्ह सबनि मिली बैदेही। चरनन्हि लाग हरषु अति तेही॥
देहिं असीस बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता॥1॥

भावार्थ – जानकीजी सब सासुओं से मिलीं और उनके चरणों में लगकर उन्हें अत्यंत हर्ष हुआ। सासुएँ कुशल पूछकर आशीष दे रही हैं कि तुम्हारा सुहाग अचल हो॥1॥

सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं। मंगल जानि नयन जल रोकहिं॥
कनक थार आरती उतारहिं। बार बार प्रभु गात निहारहिं॥2॥

भावार्थ –सब माताएँ श्री रघुनाथजी का कमल सा मुखड़ा देख रही हैं। (नेत्रों से प्रेम के आँसू उमड़े आते हैं, परंतु) मंगल का समय जानकर वे आँसुओं के जल को नेत्रों में ही रोके रखती हैं। सोने के थाल से आरती उतारती हैं और बार-बार प्रभु के श्री अंगों की ओर देखती हैं॥2॥

नाना भाँति निछावरि करहीं। परमानंद हरष उर भरहीं॥
कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि। चितबति कृपासिंधु रनधीरहि॥8॥

भावार्थ –अनेकों प्रकार से निछावरें करती हैं और हृदय में परमानंद तथा हर्ष भर रही हैं। कौशल्याजी बार-बार कृपा के समुद्र और रणधीर श्री रघुवीर को देख रही हैं॥॥3॥

हृदय बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा॥
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे॥4॥

भावार्थ – वे बार-बार हृदय में विचारती हैं कि इन्होंने लंकापति रावण को कैसे मारा? मेरे ये दोनों बच्चे बड़े ही सुकुमार हैं और राक्षस तो बड़े भारी योद्धा और महान् बली थे॥4॥

दोहा– लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकति मातु।
परमानंद मगन मन पुनि पुनि पुलकित गातु॥7॥

भावार्थ – लक्ष्मणजी और सीताजी सहित प्रभु श्री रामचंद्रजी को माता देख रही हैं। उनका मन परमानंद में मग्न है और शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है॥7॥

चौपाई– लंकापति कपीस नल नीला। जामवंत अंगद सुभसीला॥
हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा॥1॥

भावार्थ –लंकापति विभीषण, वानरराज सुग्रीव, नल, नील, जाम्बवंत और अंगद तथा हनुमानजी आदि सभी उत्तम स्वभाव वाले वीर वानरों ने मनुष्यों के मनोहर शरीर धारण कर लिए॥1॥

भरत सनेह सील ब्रत नेमा। सादर सब बरनहिं अति प्रेमा॥
देखि नगरबासिन्ह कै रीती। सकल सराहहिं प्रभु पद प्रीती॥2॥
पुनि रघुपति रब सखा बोलाए। मुनि पद लागहु सकल सिखाए॥
गुर बसिष्ट कुलपूजय हमारे। इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे॥3॥

भावार्थ –फिर श्री रघुनाथजी ने सब सखाओं को बुलाया और सबको सिखाया कि मुनि के चरणों में लगे। ये गुरु वशिष्ठजी हमारे कुलभर के पूज्य हैं। इन्हीं की कृपा से रण में राक्षस मारे गए हैं॥3॥

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहूँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥4॥

टिप्पणी

भावार्थ –(फिर गुरुजी से कहा-) हे मुनि! सुनिए! ये सब मेरे सखा हैं। ये संग्राम रूपी समुद्र में मेरे लिए बेड़े (जहाज) के समान हुए। मेरे हित के लिए इन्होंने अपने जन्म तक हार दिए (अपने प्राणों तक को होम दिया)। ये मुझे भरत से भी अधिक प्रिय हैं।।4।।

सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। निमिष निमिष उपजत सुख नए।।5।।

भावार्थ –प्रभु के वचन सुनकर सब प्रेम और आनंद में मग्न हो गए। इस प्रकार पल पल में उन्हें नए-नए सुख उत्पन्न हो रहे हैं।।5।।

दोहा– कौसल्या के चरनन्हि पुनी तिन्ह नायउ माथ।
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ।।8 क।।

भावार्थ –फिर उन लोगों ने कौसल्याजी के चरणों में मस्तक नवाए। कौसल्याजी ने हर्षित होकर आशीषें दीं (और कहा-) तुम मुझे रघुनाथ के समान प्यारे हो।।8 (क)।।

सुमन बृष्टि नभ संकुल भवन चले सुखकंद।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नगर नारि नर बृंद।।8 ख।।

भावार्थ –आनन्दकन्द श्री रामजी अपने महल को चले, आकाश फूलों की वृष्टि से छा गया। नगर के स्त्री-पुरुषों के समूह अटारियों पर चढ़कर उनके दर्शन कर रहे हैं।।8 (ख)।।

चौपाई – कंचन कलस बिचित्र सँवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे।।
बंदनवार पताका केतू। सबन्हि बनाए मंगल हेतू।।1।।

भावार्थ –सोने के कलशों को विचित्र रीति से (मणि-रत्नादि से) अलंकृत कर और सजाकर सब लोगों ने अपने-अपने दरवाजों पर रख लिया। सभी लोगों ने मंगल के लिए बंदनवार, ध्वजा और पताकाएँ लगाईं।।।।

बीथीं सकल सुगंध सिंचाई। गजमनि रचि बहु चौक पुराई।
नाना भाँति सुमंगल साजे। हरषि नगर निसान बहु बाजे।।2।।

भावार्थ – सारी गलियाँ सुगंधित द्रवों से सिंचाई गईं। गजमुक्ताओं से रचकर बहुत सी चौकें पुराई गईं। अनेकों प्रकार के सुंदर मंगल साज सजाएं गए और हर्षपूर्वक नगर में बहुत से डंके बजने लगे।।2।।

जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं। देहिं असीस हरष उर भरहीं।।
कंचन थार आरतीं नाना। जुबतीं सजें करहिं सुभ गाना।।3।।

भावार्थ –स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ निछावर कर रही हैं और हृदय में हर्षित होकर आशीर्वाद देती हैं। बहुत-सी युवती (सौभाग्यवती) स्त्रियाँ सोने के थालों में अनेकों प्रकार की आरती सजाकर मंगलगान कर रही हैं।।3।।

करहिं आरती आरतिहर कें। रघुकुल कमल बिपिन दिनकर कें।।
पुर सोभा संपति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना।।4।।

भावार्थ –वे आर्तिहर (दु:खों को हरने वाले) और सूर्यकुल रूपी कमलवन को प्रफुल्लित करने वाले सूर्य श्री रामजी की आरती कर रही हैं। नगर की शोभा, संपत्ति और कल्याण का वेद, शेषजी और सरस्वतीजी वर्णन करते हैं–।।4।।

तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं। उमा तासु गुन नर किमि कहहीं।।5।।

भावार्थ –परंतु वे भी यह चरित्र देखकर ठगे से रह जाते हैं (स्तम्भित हो रहते हैं)। (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! तब भला मनुष्य उनके गुणों को कैसे कह सकते हैं।।5।।

टिप्पणी

दोहा– नारि कुमुदिनीं अवध सर रघुपति बिरह दिनेस।
अस्त भएँ बिगसत भई निरखि राम राकेस।।9क।।

भावार्थ – स्त्रियाँ कुमुदनी हैं, अयोध्या सरोवर है और श्री रघुनाथजी का विरह सूर्य है (इस विरह सूर्य के ताप से वे मुरझा गई थीं) अब उस विरह रूपी सूर्य के अस्त होने पर श्री राम रूपी पूर्णचन्द्र को निखकर वे खिल उठीं।।9 (क)।।

होहिं सगुन सुभ बिबिधि बिधि बाजहिं गगन निसान।
पुर नर नारि सनाथ करि भवन चले भगवान।।9ख।।

भावार्थ –अनेक प्रकार के शुभ शकुन हो रहे हैं, आकाश में नगाड़े बज रहे हैं। नगर के पुरुषों और स्त्रियों को सनाथ (दर्शन द्वारा कृतार्थ) करके भगवान- श्री रामचंद्रजी महल को चले।।9(ख)।।

चौपाई – प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी।।
ताहि प्रबाधि बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा।।1।।

भावार्थ –(शिवजी कहते हैं-) हे भवानी! प्रभु ने जान लिया कि माता कैकेयी लज्जित हो गई हैं (इसलिए), वे पहले उन्हीं के महल को गए और उन्हें समझा-बुझाकर बहुत सुख दिया। फिर श्री हरि ने अपने महल को गमन किया।।1।।

कृपासिंधु जब मंदिर गए। पुर नर नारि सुखी सब भए।।
गुर बसिष्ट द्विज लिए बुलाई। आजु सुघरी सुदिन समुदाई।।2।।

भावार्थ – कृपा के समुद्र श्री रामजी जब अपने महल को गए, तब नगर के स्त्री-पुरुष सब सुखी हुए। गुरु वशिष्ठजी ने ब्राह्मणों को बुला लिया और कहा आज शुभ घड़ी, सुंदर दिन आदि सभी शुभ योग हैं।।2।।

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचंद्र बैठहिं सिंघासन।।
मुनि बसिष्ट के बचन सुहाए। सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए।।3।।

भावार्थ –आप सब ब्राह्मण हर्षित होकर आज्ञा दीजिए, जिसमें श्री रामचंदजी सिंहासन पर विराजमान हों। वशिष्ठ मुनि के सुहावने वचन सुनते ही सब ब्राह्मणों को बहुत ही अच्छा लगा।।3।।

कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका। जग अभिराम राम अभिषेका।।
अब मुनिबर बिलंब नहिं कीजै। महाराज कहँ तिलक करीजै।।4।।

भावार्थ – वे सब अनेकों ब्राह्मण कोमल वचन कहने लगे कि श्री रामजी का राज्याभिषेक संपूर्ण जगत को आनंद देने वाला है। हे मुनिश्रेष् अब विलंब न कीजिए और महाराज का तिलक शीघ्र कीजिए।।4।।

दोहा – तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ हरषाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ।।10क।।

भावार्थ –तब मुनि ने सुमन्त्रजी से कहा, वे सुनते ही हर्षित होकर चले। उन्होंने तुरंत ही जाकर अनेकों रथ, घोड़े और हाथी सजाए।।0(क)।।

जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रव्य मगाइ।
हरष समेत बसिष्ट पद पुनि सिरु नायउ आइ।।10ख।।

भावार्थ –और जहाँ-तहाँ (सूचना देने वाले) दूतों को भेजकर मांगलिक वस्तुएँ मँगाकर फिर हर्ष के साथ आकर वशिष्ठजी के चरणों में सिर नवाया।।10(ख)।।

चौपाई – अवधपुरी अति रुचिर बनाई। देवन्ह सुमन बृष्टि झारि लाई।।
राम कहा सेवकन्ह बुलाई। प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई।।।।

टिप्पणी

भावार्थ –अवधपुरी बहुत ही सुंदर सजाई गई। देवताओं ने पुष्पों की वर्षा की झड़ी लगा दी। श्री रामचंद्रजी ने सेवकों को बुलाकर कहा कि तुम लोग जाकर पहले मेरे सखाओं को स्नान कराओ।।1।।

सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए। सुग्रीवादि तुरत अन्हवाए।।
पुनि करुनानिधि भरतु हँकारे। निज कर राम जटा निरुआरे।।2।।

भावार्थ –भगवान् के वचन सुनते ही सेवक जहाँ-तहाँ दौड़े और तुरंत ही उन्होंने सुग्रीवादि को स्नान कराया। फिर करुणानिधान श्री रामजी ने भरतजी को बुलाया और उनकी जटाओं को अपने हाथों से सुलझाया।।2।।

अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई। भगत बछल कृपाल रघुराई।।
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। सेष कोटि सत सकहिं न गाई।।3।।

भावार्थ – तदनन्तर भक्त वत्सल कृपालु प्रभु श्री रघुनाथजी ने तीनों भाइयों को स्नान कराया। भरतजी का भाग्य और प्रभु की कोमलता का वर्णन अरबों शेषजी भी नहीं कर सकते।।।3।।

पुनि निज जटा राम बिबराए। गुर अनुसासन मागि नहाए।।
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे। अंग अनंग देखि सत लाजे।।4।।

भावार्थ – फिर श्री रामजी ने अपनी जटाएँ खोलीं और गुरुजी की आज्ञा माँगकर स्नान किया। स्नान करके प्रभु ने आभूषण धारण किए। उनके (सुशोभित) अंगों को देखकर सैकड़ों (असंख्य) कामदेव लजा गए।।4।।

दोहा – सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जन तुरत कराइ।
दिब्य बसन बर भूषन अँग अँग सजे बनाए।।11क।।

भावार्थ – (इधर) सासुओं ने जानकीजी को आदर के साथ तुरंत ही स्नान कराके उनके अंग-अंग में दिव्य वस्त्र और श्रेष्ठ आभूषण भली-भाँति सजा दिए (पहना दिए)।।11 (क)।।

राम बाम दिसि सोभति रमा रूप गुन खानि।
देखि मातु सब हरषीं जन्म सुफल निज जानि।।11ख।।

भावार्थ – श्री राम के बायीं ओर रूप और गुणों की खान रमा (श्री जानकीजी) शोभित हो रही हैं। उन्हें देखकर सब माताएँ अपना जन्म (जीवन) सफल समझकर हर्षित हुईं।।11।। (ख)।।

सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सिव मुनि बृंद।
चढ़ि विमान आए सब सुर देखन सुखकंद।।11ग।।

भावार्थ – (काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे पक्षीराज गरुड़जी! सुनिए, उस समय ब्रह्माजी, शिवजी और मुनियों के समूह तथा विमानों पर चढ़कर सब देवता आनंदकंद भगवान के दर्शन करने के लिए आए।।11(ग)।।

चौपाई – प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिब्य सिंघासन मागा।।
रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई।।1।।

भावार्थ – प्रभु को देखकर मुनि वशिष्ठजी के मन में प्रेम भर आया। उन्होंने तुरंत ही दिव्य सिंहासन मँगवाया, जिसका तेज सूर्य के समान था। उसका सौंदर्य वर्णन नहीं किया जा सकता। ब्राह्मणों को सिर नवाकर श्री रामचंद्रजी उस पर विराज गए।।1।।

जनकसुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई।।
बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे।।2।।

टिप्पणी

भावार्थ – श्री जानकीजी के सहित रघुनाथजी को देखकरमुनियों का समुदाय अत्यंत ही हर्षित हुआ। तब ब्राह्मणों ने वेदमंत्रों का उच्चारण किया। आकाश में देवता और मुनि 'जय, जो, जय हो' ऐसी पुकार करने लगे।।2।।

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा।।
सुत बिलोकि हरषीं महतारी। बार-बार आरती उतारी।।3।।

भावार्थ – सबसे पहले मुनि वशिष्ठजी ने तिलक किया। फिर उन्होंने सब ब्राह्मणों को (तिलक करने की) आज्ञा दी। पुत्र को राजसिंहासन पर देखकर माताएँ हर्षित हुईं और उन्होंने बार-बार आरती उतारी।।3।।

बिप्रन्ह दान बिबिधि बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे।।
सिंघासन पर त्रिभुअन साईं। देखि सुरन्ह दुंदुर्भी बजाईं।।4।।

भावार्थ – उन्होंने ब्राह्मणों को अनेकों प्रकार के दान दिए और संपूर्ण याचकों को अयाचक बना दिया (मालामाल कर दिया)। त्रिभुवन के स्वामी श्री रामचंद्रजी को (अयोध्या के) सिंहासन पर (विराजित) देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाए।।4।।

छंद – नभ दुंदुभीं बाजहिं बिपुल गंधर्व किंनर गावहीं।
नाचहिं अपछरा बृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं।।
भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते।
गहें छत्र चामर ब्यजन धनु असिचर्म सक्ति बिराजते।।1।।

भावार्थ – आकाश में बहुत-से नगाड़े बज रहे हैं। गन्धर्व और किन्नर गा रहे हैं। अप्सराओं के झुंड के झुंड नाच रहे हैं। देवता और मुनि परमानंद प्राप्त कर रहे हैं। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी, विभीषण, अंगद, हनुमान और सुग्रीव आदि सहित क्रमशः छत्र, चँवर, पंखा, धनुष, तलवार, ढाल और शक्ति लिए हुए सुशोभित हैं।।2।।

श्री सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई।
नव अंबुधर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई।।
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे।
अंभोज नयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे।।2।।

भावार्थ – श्री सीताजी सहित सूर्यवंश के विभूषण श्री रामजी के शरीर में अनेकों कामदेवों की छवि शोभा दे रही है। नवीन जलयुक्त मेघों के समान सुंदर श्याम शरीर पर पीताम्बर देवताओं के मन को भी मोहित कर रहा है। मुकुट, बाजूबंद आदि विचित्र आभूषण अंग-अंग में सजे हुए हैं। कमल के समान नेत्र हैं, चौड़ी छाती है और लंबी भुजाएँ हैं जो उनके दर्शन करते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं।।।2।।

दोहा – वह सोभा समाज सुख कहत न बनई खगेस।
बरनहिं सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस।।12क।।

भावार्थ – हे पक्षीराज गरुड़जी! वह शोभा, वह समाज और वह सुख मुझसे कहते नहीं बनता। सरस्वतीजी, शेषजी और वेद निरंतर उसका वर्णन करते हैं, और उसका रस (आनंद) महादेवजी ही जानते हैं।।।।2(क)।।

भिन्न-भिन्न अस्तुति करि गए सुर निज निज धाम।
बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्रीराम।।12ख।।

भावार्थ – सब देवता अलग-अलग स्तुति करके अपने-अपने लोक को चले गए। तब भाटों का रूप

टिप्पणी

धारण करके चारों वेद वहाँ आए जहाँ श्री रामजी थे।।12 (ख)।।

प्रभु सर्बग्य कीन्ह अति आदर कृपानिधान।
लखेउ न काहूँ मरम कछु लगे करन गुन गान।।12ग।।

भावार्थ – कृपानिधान सर्वज्ञ प्रभु ने (उन्हें पहचानकर) उनका बहुत ही आदर किया। इसका भेद किसी ने कुछ भी नहीं जाना। वेद गुणगान करने लगे।।12(ग)।।

छंद – जय सगुन निर्गुन रूप अनूप भूप सिरोमने।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुज बल हने।।
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे।
जय प्रनतपल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे।।1।।

भावार्थ – सगुण और निर्गुण रूप! हे अनुपम रूप-लावण्ययुक्त! हे राजाओं के शिरोमणि! आपकी जय हो। आपने रावण आदि प्रचंड, प्रबल और दुष्ट निशाचरों को अपनी भुजाओं के बल से मार डाला। आपने मनुष्य अवतार लेकर संसार के भार को नष्ट करके अत्यंत कठोर दुखों को भस्म कर दिया। हे दयालु! हे शरणागत की रक्षा करने वाले प्रभू! आपकी जय हो। मैं शक्ति (सीताजी) सहित शक्तिमान आपको नमस्कार करता हूँ।।1।।

तब बिषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे।।
जे नाथ रि करुना बिलोकि त्रिबिधि दुख ते निर्बहे।
भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे।।2।।

भावार्थ – हे हरे! आपकी दुस्तर माया के वशीभूत होने के कारण देवता, राक्षस, नग, मनुष्य और चर, अचर सभी काल कर्म और गुणों से भरे हुए (उनके वशीभूत हुए) दिन-रात अनंत भव (आवागमन) के मार्ग में भटक रहे हैं। हे नाथ! इनमें से जिनको आपने कृपा करके (कृपादृष्टि) से देख लिया, वे (माया जनित) तीनों प्रकार के दुखों से छूट गए। हे जन्म-मरण के श्रम को काटने में कुशल श्री रामजी! हमारी रक्षा कीजिए। हम आपको नमस्कार करते हैं।।2।।

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।।
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे।।3।।

भावार्थ – जिन्होंने मिथ्या ज्ञान के अभिमान में विशेष रूप से मतवाले होकर जन्म-मृत्यु (के भय) को हरने वाली आपकी भक्ति का आदर नहीं किया, हे हरि! उन्हें देव-दुर्लभ (देवताओं को भी बड़ी कठिनता से प्राप्त होने वाले, ब्रह्मा आदि के) पद को पाकर भी हम उस पद से नीचे गिरने देखते हैं (परंतु), जो सब आशाओं को छोड़कर आप पर विश्वास करके आपके दास ही रहते हैं, वे केवल आपका नाम ही जपकर बिना ही परिश्रम भवसागर से तर जाते हैं। हे नाथ! ऐसे आपका हम स्मरण करते हैं।।3।।

जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी।
नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलाक पावनि सुरसरी।।
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे।।4।।

भावार्थ – जो चरण शिवजी और ब्रह्माजी के द्वारा पूज्य हैं, तथा जिन चरणों की कल्याणमयी रज

टिप्पणी

का स्पर्श पाकर (शिला बनी हुई) गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या तर गई, जिन चरणों के नख से मुनियों द्वारा वन्दित, त्रैलोक्य को पवित्र करने वाली देवनदी गंगाजी निकलीं और ध्वजा, वज्र अंकुश और कमल, इन चिह्नों से युक्त जिन चरणों में वन में फिरते समय काँटे चुभ जाने से गड्ढे पड़ गए हैं, हे मुकुन्द! हे राम! हे रमापति! हम आपके उन्हीं दोनों चरणकमलों को निम्य भजते रहते हैं।।4।।

अब्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
ाट कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने।।
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे।।5।।

भावार्थ – वेद शास्त्रों ने कहा है कि जिसका मूल अव्यक्त (प्रकृति) है, जो (प्रवाह रूप से) अनादि हैं, जिसके चार त्वचाएँ, छह तने, पच्चीस शाखाएँ और अनेकों पत्ते और बहुत से फूल हैं, जिसमें कड़वे और मीठे दो प्रकार के फल लगे हैं, जिस पर एक ही बेल है, जो उसी के आश्रित रहती है, जिसमें नित्य नए पत्ते और फूल निकलते रहते हैं, ऐसे संसार वृक्ष स्वरूप (विश्व रूप में प्रकट) आपको हम नमस्कार करते हैं।।5।।

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनप ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं।।
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मागहीं।
मन बचन कर्म विकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं।।6।।

भावार्थ – ब्रह्म अजन्मा है, अद्वैत है, केवल अनुभव से ही जाना जाता है और मन से परे हैं– (जो इस प्रकार कहकर उस) ब्रह्म का ध्यान करते हैं, वे ऐसा कहा करें और जाना करें, किंतु हे नाथ! हम तो नित्य आपका सगुण यश ही गाते हैं। हे करुणा के धाम प्रभो! हे सद्गुणों की खान! हे देव! हम यह वर माँगते हैं कि मन, वचन और कर्म से विकारों को त्यागकर आपके चरणों में ही प्रेम करें।।6।।

दोहा – सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार।
अंतर्धान भए पुनि गए ब्रह्म आगार।।13क।।

भावार्थ – वेदों ने सबके देखते यह श्रेष्ठ विनती की। फिर वे अंतर्धान हो गए और ब्रह्मलोक को चले गए।13(क)।।

बैनतेय सुनु संभु तब आए जहँ रघुबीर।
बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर।।13ख।।

भावार्थ – काकभुशुण्डिजी कहते हैं – हे गरुड़जी। सुनिए, तब शिवजी वहाँ आए जहाँ श्री रघुवीर थे और गदगद वाणी से स्तुति करने लगे। उनका शरीर पुलकावली से पूर्ण हो गया–।।13(ख)।।

छंद – जय राम रमारमनं समनं। भवताप भयाकुल पाहि जनं।।
अवधेस सुरेस रमेस बिभो। सरनागत मागत पाहि प्रभो।।1।।

भावार्थ – हे राम! हे रामारमण (लक्ष्मीकांत)! हे जन्म-मरण के संताप का नाश करने वाले! आपकी जय हो, आवागमन के भय से व्याकुल इस सेवक की रक्षा कीजिए। हे अवधपति! हे देवताओं के स्वामी! हे रमापति! हे विभो! मैं शरणागत आपसे यही माँगता हूँ कि हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिए।।1।।

दससीस बिनासन बीस भुजा। कृत दूरि महा महि भूरि रुजा।।
रजनीचर बृंद पतंग रहे। सर पावक तेज प्रचंड दहे।।2।।

टिप्पणी

भावार्थ – हे दस सिर और बीस भुजाओं वाले रावण का विनाश करके पृथ्वी के सब महान रोगों (कष्टों) को दूर करने वाले श्री रामजी! राक्षस समूह रूपी जो पतंगे थे, वे सब आपके बाण रूपी अग्नि के प्रचंड तेज से भस्म हो गए।।2।।

महि मंडल मंडन चारुतरं। धृत सायक चाप निषंग बरं।
मद मोह महा ममता रजनी। तम पुंज दिवाकर तेज अनी।।3।।

भावार्थ – आप पृथ्वी मंडल के अत्यंत सुंदर आभूषण हैं, आप श्रेष्ठ बाण, धनुष और तरकस धारण किए हुए हैं। महान् मद, मोह और ममता रूपी रात्रि के अंधकार समूह का नाश करने के लिए आप सूर्य के तेजोमय किरण समूह हैं।।3।।

मनजात किरात निपात किए। मृग लोग कुभोग सरेन हिए।।
हति नाथ अनाथनि पाहि हरे। बिषया बन पावँर भूलि परे।।4।।

भावार्थ – कामदेव रूपी भील ने मनुष्य रूपी हिरनों के हृदय से कुभोग रूपी बाण मारकर उन्हें गिरा दिया है। हे नाथ! हे (पाप-ताप का हरण करने वाले) हरे! उसे मारकर विषय रूपी वन में भूल जड़े हुए इन पामर अनाथ जीवों की रक्षा कीजिए।।4।।

बहु रोग बियोगन्हि लोग हुए। भवदंघ्रि निरादर के फल ए।।
भव सिंधु अगाध परे नर ते। पद पंकज प्रेम न जे करते।।5।।

भावार्थ – लो बहुत से रोगों और वियोगों (दु:खों) से मारे हुए हैं। ये सब आपके चरणों के निरादर के फल हैं। जो मनुष्य आपके चरणकमलों में प्रेम नहीं करते, वे अथाह भवसागर में पड़े हैं।।5।।

अति दीन मलीन दुखी नितहीं। जिन्ह कें पद पंकज प्रीति नहीं।
अवलंब भवंत कथा जिन्ह कें। प्रिय संत अनंत सदा तिन्ह कें।।6।।

भावार्थ – जिन्हं आपके चरणकमलों में प्रीति नहीं है, वे नित्य ही अत्यंत दीन, मलिन (उदास) और दुखी रहते हैं और जिन्हें आपकी लीला कथा का आधार है, उनको संत और भगवान सदा प्रिय लगने लगते हैं।।6।।

नहिं राग न लोभ न मान सदा। तिन्ह कें सम बैभव वा बिपदा।।
एहि ते तव सेवक होत मुदा। मुनि त्यागत जोग भरोस सदा।।7।।

भावार्थ – उनमें न राग (आसक्ति) है, न लोभ, न मान है, न मद। उनको संपत्ति सुख और विपत्ति (दुख) समान है। इसी से मुनि लोग योग (साधन) का भरोसा सदा के लिए त्याग देते हैं और प्रसन्नता के साथ आपके सेवक बन जाते हैं।।7।।

करि प्रेम निरंतर नेम लिएँ। पद पंकज सेवत सुद्ध हिएँ।।
सम मानि निरादर आदरही। सब संतु सुखी बिचरंति मही।।8।।

भावार्थ – वे प्रेमपूर्वक नियम लेकर निरंतर शुद्ध हृदय से आपके चरणकमलों की सेवा करते रहते है और निरादर और आदर को समान मानकर वे सब संत सुखी होकर पृथ्वी पर विचरते हैं।।8।।

मुनि मानस पंकज भृंग भजे। रघुबीर महा रनधीर अजे।।
तव नाम जपामि नमामि हरी। भव रोग महागद मान अरी।।9।।

भावार्थ – हे मुनियों के मन रूपी कमल के भ्रमर! हे महान् रणधीर एवं अजेय श्री रघुवीर! मैं आपको भेजता हूँ (आपकी शरण ग्रहण करता हूँ) हे हरि! आपका नाम जपता हूँ और आपको नमस्कार करता हूँ। आप जन्म-मरण रूपी रोग की महान् औषध और अभिमान के शत्रु हैं।।9।।

गुन सील कृपा परमायतनं। प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं॥
रघुनंद निकंदय द्वंद्वघनं। महिपाल बिलोकय दीन जनं॥10॥

भावार्थ – आप गुण, शील और कृपा के परम स्थान हैं। आप लक्ष्मीपति हैं, मैं आपको निरंतर प्रणाम करता हूँ। हे रघुनंदन! (आप जन्म-मरण, सुख-दुख, राग-द्वेषादि) द्वंद्व समूहों का नाश कीजिए। हे पृथ्वी का पालन करने वाले राजन्। इस दीन जन की ओर भी दृष्टि डालिए।।10।।

दोहा – बार-बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥14क॥

भावार्थ – मैं आपसे बार-बार यही वरदान माँगता हूँ कि मुझे आपके चरणकमलों की अचल भक्ति और आपके भक्तों का सत्संग सदा प्राप्त हो। हे लक्ष्मीपते! हर्षित होकर मुझे यही दीजिए।

बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास॥14ख॥

भावार्थ – श्री रामचंद्रजी के गुणों का वर्णन करके उमापति महादेवजी हर्षित होकर कैलास को चले गए। तब प्रभु ने वानरों को सब प्रकार से सुख देने वाले डेरे दिलवाए।।14(ख)।।

चौपाई – सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिबिध ताप भव भय दावनी॥
महाराज कर सुभ अभिषेका। सुनत लहहिं नर बिरति बिबेका॥1॥

भावार्थ – हे गरुणजी! सुनिए यह कथा (सबको) पवित्र करने वाली है, (दैहिक, दैविक, भौतिक) तीनों प्रकार के तापों का और जन्म-मृत्यु के भय का नाश करने वाली है। महाराज श्री रामचंद्रजी के कल्याणमय राज्याभिषेक का चरित्र (निष्कामभाव से) सुनकर मनुष्य वैराग्य और ज्ञान प्राप्त करते हैं।।1।।

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना बिधि पावहिं॥
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अंतराल रघुपति पुर जाहीं॥2॥

भावार्थ – और जो मनुष्य सकामभाव से सुने और जो गाते हैं, वे अनेकों प्रकार के सुख और संपत्ति पाते हैं। वे जगत में देवदुर्लभ सुखों को भोगकर अंतकाल में श्री रघुनाथजी के परमधाम को जाते हैं।।2।।

सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई। लहहिं भगति गति संपति नई॥
खगपति राम कथा मैं बरनी। स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी॥3॥

भावार्थ – इसे जो जीवन्मुक्त, विरक्त और विषयी सुनते हैं, वे (क्रमशः) भक्ति, मुक्ति और नवीन संपत्ति (नित्य नए भोग) पाते हैं। हे पक्षीराज गरुड़जी। मैंने अपनी बुद्धि की पहुँच के अनुसार रामकथा वर्णन की है, जो (जन्म-मरण) भय और दुख हरने वाली है।।3।।

बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी। मोह नदी कहँ सुंदर तरनी॥
नित नव मंगल कौसलपुरी। हरषित रहहिं लोग सब कुरी॥4॥

भावार्थ – यह वैराग्य, विवेक और भक्ति को दृढ़ करने वाली है तथा मोह रूपी नदी के (पार करने) लिए सुंदर नाव है। अवधपुरी में नित नए मंगलोत्सव होते हैं। सभी वर्गों के लोग हर्षित रहते हैं।।4।।

नित नइ प्रीति राम पद पंकज। सब कें जिन्हहि नमत सिव मुनि अज॥
मंगल बहु प्रकार पहिराए। द्विजन्ह दान नाना बिधि पाए॥5॥

भावार्थ – श्री रामजी के चरणकमलों में – जिन्हें श्री शिवजी, मुनिगण और ब्रह्माजी भी नमस्कार करते हैं, सबकी नित्य नवीन प्रीति है। भिक्षुकों को बहुत प्रकार के वस्त्राभूषण पहनाए गए और ब्राह्मणों ने नाना प्रकार के दान पाए।।5।।

टिप्पणी

दोहा – ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति।
जात न जाने दिवस तिन्ह गए मासशट बीति।।15।।

भावार्थ – वानर सब ब्रह्मानंद में मग्न हैं। प्रभु के चरणों में सबका प्रेम है। उन्होंने दिन जाते जाने ही नहीं और (बात की बात में) छह महीने बीत गए।।15।।

चौपाई – बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं। जिमि परद्रोह संत मन माहीं।
तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिरु नाए।।1।।

भावार्थ – उन लोगों को अपने घर भूल ही गए। (जाग्रत की तो बात ही क्या) उन्हें स्वप्न में भी घर की सुध (याद) नहीं आती, जैसे संतों के मन में दूसरों से द्रोह करने की बात कभी नहीं आती। तब श्री रघुनाथजी ने सब सखाओं को बुलाया। सबने आकर आदर सहित सिर नवाया।।1।।

परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे।।
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई।।2।।

भावार्थ – बड़े ही प्रेम से श्री रामजी ने उनको अपने पास बैठाया और भक्तों का सुख देने वाले कोमल वचन कहे – तुम लोगों ने मेरी बड़ी सेवा की है, मुँह पर किस प्रकार तुम्हारी बड़ाई करूँ?।।2।।

ताते मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे।।
अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही।।3।।

भावार्थ – मेरे हित के लिए तुम लोगों ने घरों को तथा सब प्रकार के सुखों को त्याग दिया। इससे तुम मुझे अत्यंत ही प्रिय लग रहे हो। छोटे भाई, राज्य, संपत्ति, जानकी, अपना शरीर, घर, कुटुम्ब और मित्र-।।3।।

सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना।।
सब कैं प्रिय सेवक यह नीति। मोरें अधिक दास पर प्रीती।।4।।

भावार्थ – ये सभी मुझे प्रिय है, परंतु तुम्हारे समान नहीं। मैं झूठ नहीं कहता, यह मेरा स्वभाव है। सेवक सभी को प्यारे लगते हैं, यह नीति (नियम) है। (पर) मेरा तो दास पर (स्वाभाविक ही) विशेष प्रेम है।।4।।

दोहा – अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम।।16।।

भावार्थ – हे सखागण! अब सब लोग घर जाओ, वहाँ दृढ़ नियम से मुझे भजते रहना। मुझे सदा सर्वव्यापक और सबका हित करने वाला जानकर अत्यंत प्रेम करना।।16।।

चौपाई – सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। को हम कहाँ बिसरि तन गए।
एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे।।1।।

भावार्थ – प्रभु के वचन सुनकर सब के सब प्रेममग्न हो गए। हम कौन हैं और कहाँ हैं? यह देह की सुध भी भूल गई। वे प्रभु के सामने हाथ जोड़कर टकटकी लगाए देखते ही रह गए। अत्यंत प्रेम के कारण कुछ कह नहीं सकते।।।1।।

परम प्रेम तिन्ह कर प्रभु देखा। कहा बिबिधि बिधि ग्यान बिसेषा।
प्रभु सन्मुख कछु न पारहिं। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं।।2।।

भावार्थ – प्रभु ने उनका अत्यंत प्रेम देखा, (तब) उन्हें अनेकों प्रकार से विशेष ज्ञान का उपदेश दिया। प्रभु के सम्मुख वे कुछ कह नहीं सकते। बार-बार प्रभु के चरणकमलों को देखते हैं।।2।।

टिप्पणी

तब प्रभु भूषन बसन मगाए। नाना रंग अनूप सुहाए।।
सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए।।3।।

भावार्थ – तब प्रभु ने अनेक रंगों के अनुपम और सुंदर गहने-कपड़े मँगवाए। सबसे पहले भरतजी ने अपने हाथ से सँवारकर सुग्रीव को वस्त्राभूषण पहनाए।।3।।

प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए। लंकापति रघुपति मन भाए।।
अंगद बैठ रहा नहिं डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला।।4।।

भावार्थ – फिर प्रभु की प्रेरणा से लक्ष्मणजी ने विभीषणजी को गहने-कपड़े पहनाए, जो श्री रघुनाथजी के मन को बहुत ही अच्छे लगे। अंगद बैठे ही रहे, वे अपनी जगह से हिले तक नहीं। उनका उत्कट प्रेम देखकर प्रभु ने उनको नहीं बुलाया।।4।।

दोहा – जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ।
हियँ धरि राम रुप सब चले नाइ पद माथ।।17क।।

भावार्थ – जाम्बवान् और नील आदि सबको श्री रघुनाथजी ने स्वयं भूषण-वस्त्र पहनाए। वे सब अपने हृदयों में श्री रामचंद्रजी के रूप को धारण करके उनके चरणों में मस्तक नवाकर चले।।17(क)।।

तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत बोलेउ बचन मनहुँ प्रेम रसबोरि।।17ख।।

भावार्थ – तब अंगद उठकर सिर नवाकर, नेत्रों में जल भरकर और हाथ जोड़कर अत्यंत विनम्र तथा मानो प्रेम के रस में डुबोए हुए (मधुर) वचन बोले-117(ख)।।

चौपाई – सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो।।
मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोंछें घाली।।1।।

भावार्थ – हे सर्वज्ञ! हे कृपा और सुख के समुंदर! हे दीनों पर दया करने वाले! हे आर्तों के बंधु! सुनिए! हे नाथ! मरते समय मेरा पिता बालि मुझे आपकी ही गोद में डाल गया था।।1।।

असरन सरन बिरदु संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी।।
मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता।।2।।

भावार्थ – अतः हे भक्तों के हितकारी! अपना अशरण-शरण विरद (बाना) याद करके मुझे त्यागिये नहीं। मेरे तो स्वामी, गुरु, पिता और माता सब कुछ आप ही हैं। आपके चरणकमलों को छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ?।।2।।

तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा।।
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना।।3।।

भावार्थ – हे महाराज! आप ही विचारकर कहिए, प्रभु (आप) को छोड़कर घर में मेरा क्या काम है? हे नाथ! इस ज्ञान, बुद्धि और बल से हीन बालक तथा दीन सेवक को शरण में रखिए।।3।।

नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलाकि भव तरिहउँ।।
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही।।4।।

भावार्थ – मैं घर की सब नीची से नीचे सेवा करूँगा और आपके चरणकमलों को देख-देखकर भवसागर से तर जाऊँगा। ऐसा कहकर वे श्री रामजी के चरणों में गिर पड़े और बोले – हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिए। हे नाथ! अब यह न कहिए कि तू घर जा।।4।।

दोहा – अंगद बचन बिनीत सुनि रघुपति करुना सींव।
प्रभु उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव।।18क।।

टिप्पणी

भावार्थ – अंगद के विनम्र वचन सुनकर करुणा की सीमा प्रभु श्री रघुनाथजी ने उनको उठाकर हृदय से लगा लिया। प्रभु के नेत्र कमलों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया।।18(क)।।

निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ।।18ख।।

भावार्थ – तब भगवान् ने अपने हृदय की माला, वस्त्र और मणि (रत्नों के आभूषण) बालि पुत्र अंगद को पहचानकर और बहुत प्रकार से समझाकर उनकी विदाई की।।18(ख)।।

चौपाई – भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता।।
अंगद हृदयं प्रेम नहिं थोरा। फिरि फिरि चितव राम कीं ओरा।।

भावार्थ – भक्त की करनी को याद करके भरतजी छोटे भाई शत्रुघ्नजी और लक्ष्मणजी सहित उनको पहुँचाने चले। अंगद के हृदय में थोड़ा प्रेम नहीं है (अर्थात् बहुत अधिक प्रेम है)। वे फिर फिरकर श्री रामजी की ओर देखते हैं।।1।।

बार बार कर दंड प्रनामा। मन अस रहन कहहिं मोहि रामा।।
राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि समिरि सोचत हँसि मिलनी।।2।।

भावार्थ – और बार-बार दंडवत प्रणाम करते हैं। मन में ऐसा आता है कि श्री रामजी मुझे रहने को कह दें। वे श्री रामजी के देखने की, बोलने की, चलने की तथा हँसकर मिलने की रीति को याद कर-करके सोचते हैं (दुखी होते हैं)।।2।।

प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाषी। चलेउ हृदयं पद पंकज राखी।।
अति आदर सब कपि पहुँचाए। भाइन्ह सहित भरत पुनि आए।।3।।

भावार्थ – किंतु प्रभु का रुख देखकर, बहुत से विनय वचन कहकर तथा हृदय में चरणकमलों को देखकर वे चले। अत्यंत आदर के साथ सब वानरों को पहुँचाकर भाइयों सहित भरतजी लौट आए।।3।।

तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भाँति बिनय कीन्हे हनुमाना।।
दिन दस करि रघुपति पद सेवा। पुनि तव चरन देखिहउँ देवा।।4।।

भावार्थ – तब हनुमान जी ने सुग्रीव के चरण पकड़कर अनेक प्रकार से विनती की ओर कहा – हे देव! दस (कुछ) दिन श्री रघुनाथजी की चरणसेवा करके फिर मैं आकर आपके चरणों के दर्शन करूँगा।।4।।

पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृप आगारा।।
अस कहि कपि सब चले तुरंता। अंगद कहइ सुनहु हनुमंता।।5।।

भावार्थ – (सुग्रीव ने कहा-) हे पवनकुमार! तुम पुण्य की राशि हो (जो भगवान ने तुमको अपनी सेवा में रख लिया)। जाकर कृपाधम श्री रामजी की सेवा करो। सब वानर ऐसा कहकर तुरंत चल पड़े। अंगद ने कहा – हे हनुमान! सुनो-।।5।।

दोहा – कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि।
बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि।।19क।।

भावार्थ – मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ, प्रभु से मेरी दंडवत् कहना और श्री रघुनाथजी को बार-बार मेरी याद कराते रहना।।19(क)।।

अस कहि चलेउ बालिसुत फिरि आयउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत।।19ख।।

टिप्पणी

भावार्थ – ऐसा कहकर बालि पुत्र अंगद चले, तब हनुमानजी लौट आए और आकर प्रभु से उनका प्रेम वर्णन किया। उसे सुनकर भगवान् प्रेमगन हो गए।।19(ख)।।

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि।।19ग।।

भावार्थ – (काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़जी! श्री रामजी का चित्त वज्र से भी अत्यंत कठोर और फूल से भी अत्यंत कोमल है। तब कहिए, वह किसकी समझ में आ सकता है?।।19(ग)।।

चौपाई – पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा।।
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू।।1।।

भावार्थ – फिर कृपालु श्री रामजी ने निषादराज को बुला लिया और उसे भूषण, वस्त्र प्रसाद में दिए (फिर कहा-) अब तुम भी घर जाओ, वहाँ मेरा स्मरण करते रहना और मन, वचन तथा कर्म से धर्म के अनुसार चलना।।1।।

तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता।।
बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी।।2।।

भावार्थ – तुम मेरे मित्र हो और भारत के समान भाई हो। अयोध्या में सदा आते-जाते रहना। यह वचन सुनते ही उसको भारी सुख उत्पन्न हुआ। नेत्रों में (आनंद और प्रेम के आँसुओं का) जल भरकर वह चरणों में गिर पड़ा।।2।।

चरन नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा।।
रघुपति चरित देखि पुरबासी। पुनि पुनिकहहिं धन्य सुखरासी।।3।।

भावार्थ – फिर भगवान के चरणकमलों को हृदय में रखकर वह घर आया और आकर अपने कुटुम्बियों को उसने प्रभु का स्वभाव सुनाया। श्री रघुनाथजी का यह चरित्र देखकर अवधपुरवासी बार-बार कहते हैं कि सुख का राशि श्री रामचंद्रजी धन्य हैं।।3।।

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।।
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई।।4।।

भावार्थ – श्री रामचंद्रजी के राज्य पर प्रतिष्ठित होने पर तीनों लोक हर्षित हो गए, उनके सारे शोक जाते रहे। कोई किसी से बैर नहीं करता। श्री रामचंद्रजी के प्रताप से सबकी विषमता (आंतरिक भेदभाव) मिट गई।।4।।

दोहा – बरनाश्रम निज निज धरम नित बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग।।20।।

भावार्थ – सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर हुए सदा वेद मार्ग पर चलते हैं और सुख पाते हैं। उन्हें न किसी बात का भय है, न शोक है और न कोई रोग ही सताता है।।20।।

चौपाई – दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि व्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीति। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।1।।

भावार्थ – 'रामराज्य' में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी का नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बताई हुई नीति (मर्यादा) में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं।।1।।

टिप्पणी

चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अध नाहीं।।
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।।2।।

भावार्थ – धर्म अपने चारों चरणों (सत्य, शौच, दया और दान) से जगत् में परिपूर्ण हो रहा है, स्वप्न में भी कहीं पाप नहीं है। पुरुष और स्त्री सभी रामभक्ति के परायण हैं और सभी परम गति (मोक्ष) के अधिकारी हैं।।2।।

अल्पमृत्यु नहि कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।3।।

भावार्थ – छोटी अवस्था में मृत्यु नहीं होती, न किसी को कोई पीड़ा होती है। सभी के शरीर सुंदर और निरोग हैं। न कोई दरिद्र है, न दुखी है और न दीन ही है। न कोई मूर्ख है और न शुभ लक्षणों से हीन है।।3।।

सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानीं सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।4।।

भावार्थ – सभी दम्भरहित हैं, धर्मपरायण हैं और पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री सभी चतुर और गुणवान हैं। सभी गुणों का आदर करने वाले और पंडित हैं तथा सभी ज्ञानी हैं। सभी कृतज्ञ (दूसरे के लिए हुए उपकार को मानने वाले) हैं, कपट-चतुराई (धूर्तता) किसी में नहीं है।।4।।

दोहा – राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं।।21।।

भावार्थ – (काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे पक्षीराज गुरुड़जी! सुनिए। श्री राम के राज्य में जड़, चेतन सारे जगत् में काल, कर्म स्वभाव और गुणों से उत्पन्न हुए दुख किसी को भी नहीं होते (अर्थात् इनके बंधन में कोई नहीं है)।।21।।

चौपाई – भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।।
भुअन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू।।1।।

भावार्थ – अयोध्या में श्री रघुनाथजी सात समुद्रों की मेखला (करधनी) वाली पृथ्वी के एक मात्र राजा हैं। जिनके एक-एक रोम में अनेकों ब्रह्मांड हैं, उनके लिए सात द्वीपों की यह प्रभुता कुछ अधिक नहीं है।।1।।

सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनत घनेरी।।
सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी।। फिरि एहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी।।2।।

भावार्थ – बल्कि प्रभु की उस महिमा को समझ लेने पर तो यह कहने में (कि वे सात समुद्रों से घिसरी हुई सप्त द्वीपमयी पृथ्वी के एक छत्र सम्राट हैं) उनकी बड़ी हीनता होती है, परंतु हे गरुड़जी! जिन्होंने वह महिमा जान भी ली है, वे भी फिर इस लीला में बड़ा प्रेम मानते हैं।।2।।

सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिबर दमसीला।।
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा।।3।।

भावार्थ – क्योंकि उस महिमा को भी जानने का फल यह लीला (इस लीला का अनुभव) ही है, इन्द्रियों का दमन करने वाले श्रेष्ठ महामुनि ऐसा कहते हैं। राजराज्य की सुख संपत्ति का वर्णन शेषजी और सरस्वतीजी भी नहीं कर सकते।।3।।

सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी।।
एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बचन क्रम पति हितकारी।।4।।

टिप्पणी

भावार्थ – सभी नर-नारी उदार हैं, सभी परोपकारी हैं और ब्राह्मणों के चरणों के सेवक हैं। सभी पुरुष मात्र एक पत्नीव्रती हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी मन, वचन और कर्म से पति का हित करने वाली है।।4।।

दोहा – दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र के राज।।22।।

भावार्थ – श्री रामचंद्रजी के राज्य में दंड केवल संन्यासियों के हाथों में है और भेद नाचने वालों के नृत्य समाज में है और 'जीतो' शब्द केवल मन के जीतने के लिए ही सुनाई पड़ता है (अर्थात् राजनीति में शत्रुओं को जीतने तथा चोर-डाकुओं आदि को दमन करने के लिए साम, दाम, दंड और भेद– ये चार उपाय किए जाते हैं। रामराज्य में कोई शत्रु है ही नहीं, इसलिए 'जीतो' शब्द केवल मन के जीतने के लिए कहा जाता है। कोई अपराध करता ही नहीं, इसलिए दंड किसी को नहीं होता, दंड शब्द केवल संन्यासियों के हाथ में रहने वाले दंड के लिए ही रह गया है तथा सभी अनुकूल होने के कारण भेदनीति की आवश्यकता ही नहीं रह गई। भेद, शब्द केवल सुर-ताल के भेद के लिए ही कामों में आता है।)।।22।।

चौपाई – फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन।।
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।1।।

भावार्थ – वनों में वृक्ष सदा फूलते और फलते हैं। हाथी और सिंह (बैर भूलकर) एक साथ रहते हैं। पक्षी और पशु सभी ने स्वाभाविक बैर भुलाकर आपस में प्रेम बढ़ा लिया है।।।1।।

कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा।।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा।।2।।

भावार्थ – पक्षी कूजते (मीठी बोली बोलते) हैं, भाँति-भाँति के पशुओं के समूह वन में निर्भय विचारते और आनंद करते हैं। शीतल, मंद, सुगंधित पवन चलती रहती है। भौरे पुष्पों का रस लेकर चलते हुए गुंजार करते जाते हैं।।2।।

लता बिटप मागें मधु चवहीं। मनभावतों धेनु पय स्रवहीं।।
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी।।3।।

भावार्थ – बेलें और वृक्ष माँगने से ही मधु (मकरन्द) टपका देते हैं। गायें मनचाहा दूध देती हैं। धरती सदा खेती से भरी रहती है। त्रेता में सतयुग की करनी (स्थिति) हो गई।।3।।

प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी।।
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।4।।

भावार्थ – समस्त जगत के आत्मा भगवान को जगत का राजा जानकर पर्वतों ने अनेक प्रकार की मणियों की खानें प्रकट कर दीं। सब नदियाँ श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल और सुखप्रद स्वादिष्ट जल बहाने लगीं।।4।।

सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं।।
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा।।5।।

भावार्थ – समुद्र अपनी मर्यादा में रहते हैं। वे लहरों द्वारा किनारों पर रत्न डाल देते हैं, जिन्हें मनुष्य पा जाते हैं। सब तालाब कमलों से परिपूर्ण हैं। दसों दिशाओं के विभाग (अर्थात् सभी प्रदेश) अत्यंत प्रसन्न हैं।।5।।

दोहा – बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज।।23।।

टिप्पणी

भावार्थ – श्री रामचंद्रजी के राज्य में चंद्रमा अपनी (अमृतमयी) किरणों से पृथ्वी को पूर्ण कर देता है। सूर्य उतना ही तपता है, जितने की आवश्यकता होती है और मेघ माँगने से (जब जहाँ जितना चाहिए उतना ही) जल देते हैं।।23।।

चौपाई – कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे।।
श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर।।1।।

भावार्थ – प्रभु श्री रामजी ने करोड़ों अश्वमेघ यज्ञ किए और ब्राह्मणों को अनेकों दान दिए। श्री रामचंद्रजी वेदमार्ग के पालने वाले, धर्म की धुरी को धारण करने वाले, (प्रकृतिजन्य सत्व, रज और तम) तीनों गुणों से अतीत और भोगों (ऐश्वर्य) में इंद्र के समान हैं।।1।।

पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील बिनीता।।
जानति कृपासिंधु प्रभुताई।। सेवति चरन कमल मन लाई।।2।।

भावार्थ – शोभा की खान, सुशील और विनम्र सीताजी सदा पति के अनुकूल रहती हैं। वे कृपासागर श्री रामजी की प्रभुता (महिमा) को जानती हैं और मन लगाकर उनके चरणकमलों की सेवा करती हैं।।2।।

जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी।।
निज का गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई।।3।।

भावार्थ – यद्यपि घर में बहुत से (अपार) दास और दासियाँ हैं और वे सभी सेवा की विधि में कुशल हैं, तथापि (स्वामी की सेवा का महत्व जानने वाली) श्री सीताजी घर की सब सेवा अपने ही हाथों से करती हैं और श्री रामचंद्रजी की आज्ञा का अनुसरण करती हैं।।3।।

जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ।।
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं।।4।।

भावार्थ – कृपासागर श्री रामचंद्रजी जिस प्रकार से सुख मानते हैं, श्री जी वही करती हैं, क्योंकि वे सेवा की विधि को जानने वाली हैं। घर में कौसल्या आदि सभी सासुओं की सीताजी सेवा करती हैं, उन्हें किसी बात का अभिमान और मद नहीं है।।4।।

उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता। जगदंबा संततमनिंदिता।।5।।

भावार्थ – (शिवजी कहते हैं-) हे उमा जगज्जननी रमा (सीताजी) ब्रह्मा आदि देवताओं से वंदित और सदा अनिंदित (सर्वगुण संपन्न) हैं।।5।।

दोहा – जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ।।24।।

भावार्थ – देवता जिनका कृपाकटाक्ष चाहते हैं, परंतु वे उनकी ओर देखती भी नहीं, वे ही लक्ष्मीजी (जानकीजी) अपने (महामहिम) स्वभाव को छोड़कर श्री रामचंद्रजी के चरणारविन्द में प्रीति करती हैं।।24।।

चौपाई – सेवहिं सानकूल सब भाई। राम चरन रति अति अधिकाई।।
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहहिं।।1।।

भावार्थ – सब भाई अनुकूल रहकर उनकी सेवा करते हैं। श्री रामजी के चरणों में उनकी अत्यंत अधिक प्रीति है। वे सदा प्रभु का मुखारविन्द ही देखते रहते हैं कि कृपालु श्री रामजी कभी हमें कुछ सेवा करने को कहें।।1।।

टिप्पणी

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती।।
हरषित रहहिं नगर के लोग। करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा।।2।।

भावार्थ – श्री रामचंद्रजी भी भाइयों पर प्रेम करते हैं और उन्हें नाना प्रकार की नीतियाँ सिखलाते हैं। नगर के लोग हर्षित रहते हैं और सब प्रकार के देवदुर्लभ (देवताओं को भी कठिनता से प्राप्त होने योग्य) भोग भोगते हैं।।2।।

अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। श्री रघुबीर चरन रति चहहीं।।
दुइ सुत सुंदर सीताँ जाए। लव कुस बेद पुरानन्ह गाए।।3।।

भावार्थ – वे दिन-रात ब्रह्माजी को मनाते रहते हैं और (उनसे) रघुवीर के चरणों में प्रीति चाहते हैं। सीताजी के लव और कुश ये दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनका वेद-पुराणों ने वर्णन किया है।।3।।

दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर। हरि प्रतिबिंब मनहुँ अति सुंदर।।
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील घनेरे।।4।।

भावार्थ – वे दोनों ही विजयी (विख्यात योद्धा), नम्र और गुणों के धाम हैं और अत्यंत सुंदर हैं, मानो श्री हरि के प्रतिबिंब ही हों। दो-दो पुत्र सभी भाइयों के हुए, जो बड़े ही सुंदर, गुणवान और सुशील थे।।4।।

दोहा – ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानंद घन कर नर चरित उदार।।25।।

भावार्थ – जो (बौद्धिक) ज्ञान, वाणी और इंद्रियों से परे और अजन्मा है तथा माया, मन और गुणों के परे हैं, वही सच्चिदानन्दघन भगवान श्रेष्ठ नरलीला करते हैं।।25।।

चौपाई – प्रातकाल सरऊ करि मज्जन। बैठहिं सभाँ संग द्विज सज्जन।।
बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं।।1।।

भावार्थ – प्रात:काल सरयूजी में स्नान करके ब्राह्मणों और सज्जनों के साथ सभा में बैठते हैं। वशिष्ठजी वेद और पुराणों की कथाएँ वर्णन करते हैं और श्री रामजी सुनते हैं, यद्यपि वे सब जानते हैं।।1।।

अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं। देखि सकल जननीं सुख भरहीं।
भरत सत्रुहन दोनउ भाई। सहित पवनसुत उपबन जाई।।2।।

भावार्थ – वे भाइयों को साथ लेकर भोजन करते हैं। उन्हें देखकर सभी माताएँ आनंद से भर जाती हैं। भरतजी और शत्रुघ्नजी दोनों भाई हनुमानजी सहित उपवनों में जाकर।।2।।

बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा।।
सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं।।3।।

भावार्थ – वहाँ बैठकर श्री रामजी के गुणों की कथाएँ पूछते हैं और हनुमानजी अपनी सुंदर बुद्धि से उन गुणों में गोता लगाकर उनका वर्णन करते हैं। श्री रामचंद्रजी के निर्मल गुणों को सुनकर दोनों भाई अत्यंत सुख पाते हैं और विनय करके बार-बार कहलवाते हैं।।3।।

सब कें गृह गृह होहिं पुराना। राम चरित पावन बिधि नाना।।
नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवस निसि जात न जानहिं।।4।।

भावार्थ – सबके यहाँ घर-घर में पुराणों और अनेक प्रकार के पवित्र रामचरित्रों की कथा होती है। पुरुष और स्त्री सभी श्री रामचंद्रजी का गुणगान करते हैं और इस आनंद में दिन-रात का बीतना भी नहीं जान पाते।।4।।

टिप्पणी

दोहा – अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज।।26।।

भावार्थ – जहाँ भगवान श्री रामचंद्रजी स्वयं राजा होकर विराजमान हैं, उस अवधपुरी के निवासियों के सुख-संपत्ति के समुदाय का वर्णन हजारों शेषजी भी नहीं कर सकते।।26।।

चौपाई – नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा।।
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं।।1।।

भावार्थ – नारद आदि और सनक आदि मुनीश्वर सब कोसलराज श्री रामजी के दर्शन के लिए प्रतिदिन अयोध्या आते हैं और उस (दिव्य) नगर को देखकर वैराग्य भुला देते हैं।।1।।

जातरूप मनि रचित अटारीं। नाना रंग रुचिर गच ढारीं।।
पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर। रचे कँगूरा रंग रंग बर।।2।।

भावार्थ – (दिव्य) स्वर्ण और रत्नों से बनी हुई अटारियाँ हैं। उनमें (मणि-रत्नों की) अनेक रंगों की सुंदर ढली हुई फर्शें हैं। नगर के चारों और अत्यंत सुंदर परकोटा बना है, जिस पर सुंदर रंग-बिरंगे कँगूरे बने हैं।।2।।

नव ग्रह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई।।
लमहि बहु रंग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिबर मन नाचा।।3।।

भावार्थ – मानो नवग्रहों ने बड़ी भारी सेना बनाकर अमरावती को आकर घेर लिया हो। पृथ्वी (सड़कों) पर अनेकों रंगों के (दिव्य) काँचों (रत्नों) की गच बनाई (ढाली) गई है, जिसे देखकर श्रेष्ठ मुनियों के भी मन नाच उठते हैं।।3।।

धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत।।
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं।।4।।

भावार्थ – उज्जवल महल ऊपर आकाश को चूम (छू) रहे हैं। महलों पर के कलश (अपने दिव्य प्रकाश से) मानो सूर्य, चंद्रमा के प्रकाश की भी निंदा (तिरस्कार) करते हैं। (महलों में) बहुत सी मणियों से रचे हुए झरोखे सुशोभित हैं और घर-घर में मणियों के दीपक शोभा पा रहे हैं।।4।।

छंद – मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची।।
सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे।।

भावार्थ – घरों में मणियों के दीपक शोभा दे रहे हैं। मूँगों की बनी हुई देहलियाँ चमक रही हैं। मणियों (रत्नों) के खम्भे हैं। मरकतमणियों (पन्नों) से जड़ी हुई सोने की दीवारें ऐसी सुंदर हैं मानो ब्रह्मा ने खास तौर से बनाई हो। महल सुंदर, मनोहर और विशाल हैं। उनमें सुंदर स्फटिक के आँगन बने हैं। प्रत्येक द्वार पर बहुत से खरादे हुए हीरो से जड़े हुए सोने की किंवाड़ हैं।।

दोहा – चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ।
राम चरित जे निरख मुनि ते मन लेहिं चोराई।।27।।

भावार्थ – घर-घर में सुंदर चित्रशालाएँ हैं, जिनमें श्री रामचंद्रजी के चरित्र बड़ी सुंदरता के साथ सँवारकर अंकित किए हुए हैं। जिन्हें मुनि देखते हैं, तो वे उनके भी चित्त को चुरा लेते हैं।।27।।

चौपाई – सुमन बाटिका सबहिं लगाई। बिबिध भाँति करि जतन बनाई।।
लता ललित बहु जाति सुहाई। फूलहिं सदा बसंत कि नाईं।।1।।

टिप्पणी

भावार्थ – सभी लोगों ने भिन्न-भिन्न प्रकार की पुष्पों की वाटिकाएँ यत्न करके लगा रखी हैं, जिनमें बहुत जातियों की सुंदर और ललित लताएँ सदा बसंत की तरह फूलती रहती हैं।।1।।

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिबिधि सदा बह सुंदर।
नाना खग बालकन्हि जिआए। बोलत मधुर उड़ात सुहाए।।2।।

भावार्थ – धौरे मनोहर स्वर से गुंजार करते हैं। सदा तीनों प्रकार की सुंदर वायु बहती रहती है। बालकों ने बहुत से पक्षी पाल रखे हैं, जो मधुर बोली बोलते हैं और उड़ने में सुंदर लगते हैं।।2।।

मोर हंस सारस पारावत। भवननि पर सोभा अति पावत।।
जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं।।3।।

भावार्थ – मोर, हंस, सारस और कबूतर घरों के ऊपर बड़ी ही शोभा पाते हैं। वे पक्षी (मणियों की दीवारों में और छत में) जहाँ-तहाँ अपनी परछाई देखकर (वहाँ दूसरे पक्षी समझकर) बहुत प्रकार से मधुर बोली बोलते और नृत्य करते हैं।।3।।

सुक सारिका पढ़ावहिं बालक। कहहु राम रघुपति जनपालक।।
राज दुआर सकल बिधि चारू। बीथीं चौहट रुचिर बजारू।।4।।

भावार्थ – बालक तोता-मैना को पढ़ाते हैं कि कहो – 'राम', 'रघुपति', 'जनपालक'। राजद्वार सब प्रकार से सुंदर है। गलियाँ, चौराहे और बाजार सभी सुंदर हैं।।4।।

छंद – बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु बिनु गथ पाइए।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए।।
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरि सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे।।

भावार्थ – सुंदर बाजार है, जो वर्णन करते नहीं बनता, वहाँ वस्तुएँ बिना ही मूल्य मिलती हैं। जहाँ स्वयं लक्ष्मीपति राजा हों, वहाँ की संपत्ति का वर्णन कैसे किया जाए? बजाज (कपड़े का व्यापार करने वाले), सर्राफ (रुपए-पैसे का लेन-देन करने वाले) आदि वणिक (व्यापारी) बैठे हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो अनेक कुबेर हों, स्त्री, पुरुष बच्चे और बूढ़े जो भी हैं, सभी सुखी, सदाचारी और सुंदर हैं।।

दोहा – उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर।।28।।

भावार्थ – नगर के उत्तर दिशा में सरयूजी बह रही हैं, जिनका जल निर्मल और गहरा है। मनोहर घाट बँधे हुए हैं, किनारे पर जरा भी कीचड़ नहीं है।।28।।

चौपाई – दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा।।
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना।।1।।

भावार्थ – अलग कुछ दूरी पर वह सुंदर घाट है, जहाँ घोड़ों और हाथियों के ठट्ट जल पिया करते हैं। पानी भरने के लिए बहुत से (जनाने) घाट हैं, जो बड़े ही मनोहर हैं। वहाँ पुरुष स्नान नहीं करते।।1।।

राजघाट सब बिधि सुंदर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर।।
तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुँ दिसि तिन्ह के उपबन सुंदर।।2।।

भावार्थ – राजघाट सब प्रकार से सुंदर और श्रेष्ठ है, जहाँ चारों वर्णों के पुरुष स्नान करते हैं। सरयूजी के किनारे-किनारे देवताओं के मंदिर हैं, जिनके चारों ओर सुंदर उपवन (बगीचे) हैं।।2।।

कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहिं ग्यान रत मुनि संन्यासी।।
तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई।।3।।

टिप्पणी

भावार्थ – नदी के किनारे कहीं-कहीं विरक्त और ज्ञानपरायण मुनि और संन्यासी निवास करते हैं। सरयूजी के किनारे-किनारे सुंदर तुलसीजी के झुंड के झुंड बहुत से पेड़ मुनियों ने लगा रखे हैं।।3।।

पुर सोभा कछु बरनि न जाई। बाहेर नगर परम रुचिराई।।
देखत पुरी अखिल अध भागा। बन उपबन बापिका तड़ागा।।4।।

भावार्थ – नगर की शोभा तो कुछ कही नहीं जाती। नगर के बाहर भी परम सुंदरता है। श्री अयोध्यापुरी के दर्शन करते ही संपूर्ण पाप भाग जाते हैं। (वहाँ) वन, उपवन, बावलिया और तालाब सुशोभित हैं।।4।।

छंद – बापीं तड़ाग अनूत कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं।।
बहुत रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं।।

भावार्थ – अनुपम बावलियाँ, तालाब और मनोहर तथा विशाल कुएँ शोभा दे रहे हैं, जिनकी सुंदर (रत्नों की) सीढ़ियाँ और निर्मल जल देखकर देवता और मुनि तक मोहित हो जाते हैं। (तालाबों में) अनेक रंगों के कमल खिल रहे हैं, अनेकों पक्षी कूज रहे हैं और भौरे गुंजार कर रहे हैं। (परम) रमणीय बगीचे कोयल आदि पक्षियों की (सुंदर बोली से) मानो राह चलने वालों को बुला रहे हैं।

दोहा – रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ।।29।।

भावार्थ – स्वयं लक्ष्मीपति भगवान जहाँ राजा हों, उस नगर का कहीं वर्णन किया जा सकता है? अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ और समस्त सुख-संपत्तियाँ अयोध्या में छा रही हैं।।29।।

चौपाई – जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहइ सिखावहिं।।
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि। सोभा सील रूप गुन धामहि।।1।।

भावार्थ – लोग जहाँ-तहाँ श्री रघुनाथजी के गुण गाते हैं और बैठकर एक-दूसरे को यही सीख देते हैं कि शरणागत का पालन करने वाले श्री रामजी को भजो, शोभा, शील, रूप और गुणों के धाम श्री रघुनाथजी को भजो।।1।।

जलज बिलोचन स्यामल गातहि। पलक नयन इव सेवक त्रातहि।।
धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। संत कंज बन रबि रनधीरहि।।2।।

भावार्थ – कमलनयन और साँवले शरीर वाले को भजो। पलक जिस प्रकार नेत्रों की रक्षा करती हैं उसी प्रकार अपने सेवकों की रक्षा करने वाले को भजो। सुंदर बाण, धनुष और तरकस धारण करने वाले को भजो। संत रूपी कमलवन के (खिलाने को) सूर्य रूप रणधीर श्री रामजी को भजो।।2।।

काल कराल ब्याल खगराजहि। नमत राम अकाम ममता जहि।।
लोभ मोह मृगजूथ किरातहि। मनसिज करि हरि जन सुखदातहि।।3।।

भावार्थ – कालरूपी भयानक सर्प के भक्षण करने वाले श्री राम रूप गरुड़जी को भजो। निष्कामभाव से प्रणाम करते ही ममता का नाश कर देने वाले श्री रामजी को भजो। लोभ-मोह रूपी हरिनों के समूह के नाश करने वाले श्री राम किरात को भजो। कामदेव रूपी हाथी के लिए सिंह रूप तथा सेवकों को सुख देने वाले श्री राम को भजो।।3।।

संसय सोक निबिड़ तम भानुहि। दनुज गहन घन दहन कृसानुहि।।
जनकसुता समेत रघुबीरहि। कस न भजहु भंजन भव भीरहि।।4।।

भावार्थ – संशय और शोक रूपी घने अंधकार का नाश करने वाले श्री राम रूप सूर्य को भजो। राक्षस

रूपी घने वन को जलाने वाले श्री राम रूप अग्नि को भजो। जन्म-मृत्यु के भय को नाश करने वाले श्री जानकी समेत श्री रघुवीर को क्यों नहीं भजते?।।4।।

बहु बासना मासक हिम रासिहि। सदा एकरस अज अविबनासिहि।।
मनु रंजन भंजन महि भारहि। तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि।।5।।

भावार्थ – बहुत सी वासनाओं रूपी मच्छरों को नाश करने वाले श्री राम रूप हिमराशि (बर्फ के ढेर) को भजो। नित्य एकरस, अजन्मा और अविनाशी श्री रघुनाथी को भजो। मुनियों को आनंद देने वाले, पृथ्वी का भार उतारने वाले और तुलसीदास के उदार (दयालु) स्वामी श्री रामजी को भजो।।5।।

दोहा – एहिं बिधि नगर नारि नर करहिं राम गुन गान।
सानुकूल सब पर रहहिं संतत कृपानिधान।।30।।

भावार्थ – इस प्रकार नगर के स्त्री-पुरुष श्री रामजी का गुण-गान करते हैं और कृपानिधान श्री रामजी सदा सब पर अत्यंत प्रसन्न रहते हैं।।30।।

चौपाई – जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा।।
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका।।1।।

भावार्थ – (काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे पक्षीराज गरुड़जी! जब से रामप्रताप रूपी अत्यंत प्रचंड सूर्य उदित हुआ, तब से तीनों लोकों में पूर्ण प्रकाश भर गया है। इससे बहुतों को सुख और बहुतों के मन में शोक हुआ।।1।।

जिन्हहि सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अबिद्या निसा नसानी।।
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने।।2।।

भावार्थ – जिन-जिन को शोक हुआ, उन्हें मैं बखानकर कहता हूँ (सर्वत्र प्रकाश छा जाने से) पहले तो अविद्या रूपी रात्रि नष्ट हो गई। पाप रूपी उल्लू जहाँ-तहाँ छिप गए और काम-क्रोध रूपी कुमुद मुँद गए।।2।।

बिबिध कर्म गुन काल सुभाउ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ।।
मत्सर मान मोह चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा।।3।।

भावार्थ – भाँति-भाँति के (बंधनकारक) कर्म, गुण, काल और स्वभाव– ये चकोर हैं, जो (रामप्रताप रूपी सूर्य के प्रकाश में) कभी सुख नहीं पाते। मत्सर (डाह), मान, मोह और मद रूपी जो चोर हैं, उनका हुनर (कला) भी किसी ओर नहीं चल पाता।।3।।

धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना। ए पंकज बिकसे बिधि नाना।।
सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ए कोक अनेका।।4।।

भावार्थ – धर्म रूपी तालाब में ज्ञान, विज्ञान– ये अनेकों प्रकार के कमल खिल उठे। सुख, संतोष, वैराग्य और विवेक– ये अनेकों चकवे शोकरहित हो गए।।4।।

दोहा – यह प्रताप रबि जाकें उर जब करइ प्रकास।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास।।31।।

भावार्थ – यह श्री रामप्रताप रूपी सूर्य जिसके हृदय में जब प्रकाश करता है, तब जिनका वर्णन पीछे से किया गया है, वे (धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सुख, संतोष, वैराग्य और विवेक) बढ़ जाते हैं और जिनका वर्णन पहले किया गया है, वे (अविद्या, पाप, काम, क्रोध, कर्म, काल, गुण, स्वभाव आदि) नाश को प्राप्त होते (नष्ट हो जाते) हैं।।31।।

टिप्पणी

चौपाई – भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमारा।।
सुंदर उपबन देखन गए। सब तरु कुसुमित पल्लव नए।।1।।

भावार्थ – एक बार भाइयों सहित श्री रामचंद्रजी परम प्रिय हनुमानजी को साथ लेकर सुंदर उपवन देखने गए। वहाँ के सब वृक्ष फूले हुए और नए पत्तों से युक्त थे।।1।।

जानि समय सनकादिक आए। तेज पुंज गुन सील सुहाए।।
ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना।।2।।

भावार्थ – सुअवसर जानकर सनकादि मुनि आए, जो तेज के पुंज, सुंदर गुण और शील से युक्त तथा सदा ब्रह्मानंद में लवलीन रहते हैं। देखने में तो वे बालक लगते हैं, परंतु हैं बहुत समय के।।2।।

रूप धरें जनु चाहिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा।।
आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं।।3।।

भावार्थ – मानो चारों वेद ही बालक रूप धारण किए हों। वे मुनि समदर्शी और भेदरहित हैं। दिशाएँ ही उनके वस्त्र हैं। उनके एक ही व्यसन है कि जहाँ श्री रघुनाथजी की चरित्र कथा होती है, वहाँ जाकर वे उसे अवश्य हे हैं।।3।।

तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहूँ घटसंभव मुनिबर ग्यानी।।
राम कथा मुनिबर बहु बरनी। ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी।।4।।

भावार्थ – (शिवजी कहते हैं-) हे भवानी! सनकादि मुनि वहाँ गए थे (वहीं से चले आ रहे थे) जहाँ ज्ञानी मुनिश्रेष्ठ श्री अगस्त्यजी रहते थे। श्रेष्ठ मुनि ने श्री रामजी की बहुत सी कथाएँ वर्णन की थीं, जो ज्ञान उत्पन्न करने में उसी प्रकार समर्थ हैं, जैसे--अरणि लकड़ी से अग्नि उत्पन्न होती है।।4।।

दोहा – देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह।
स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहूँ दीन्ह।।32।।

भावार्थ – सनकादि मुनियों को आते देखकर श्री रामचंद्रजी ने हर्षित होकर दंडवत् किया और स्वागत (कुशल) पूछकर प्रभु ने (उनके) बैठने के लिए अपना पीताम्बर बिछा दिया।32।।

चौपाई – कीन्ह दंडवत तीनिउँ भाई। सहित पवनसुत सुख अधिकाई।।
मुनि रघुपति छबि अतुल बिलाकी। भए मगन मन सके न रोकी।।1।।

भावार्थ –फिर हनुमानजी सहित तीनों भाइयों ने दंडवत् की, सबको बड़ा सुख हुआ। मुनि श्री रघुनाथजी की अतुलनीय छबि देखकर उसी में मग्न हो गए। वे मन को रोक न सके।।1।।

स्यामल गात सरोरुह लोचन। सुंदरता मंदिर भव मोचन।।
एकटक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं।।2।।

भावार्थ – वे जन्म-मृत्यु (के चक्र) से छुड़ाने वाले, श्याम शरीर, कमलनयन, सुंदरता के धाम श्री रामजी को टकटकी लगाए देखते ही रह गए, पलक नहीं मारते और प्रभु हाथ जोड़े सिर नवा रहे हैं।।2।।

तिन्ह कै दसा देखि रघुबीरा। स्वत नयन जल पुलक सरीरा।।
कर गहि प्रभु मुनिबर बैठारे। परम मनोहर बचन उचारे।।3।।

भावार्थ – उनकी (प्रेम विह्वल) दशा देखकर (उन्हीं की भाँति) श्री रघुनाथजी के नेत्रो से भी (प्रेमाश्रुओं का) जल बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया। तदनन्तर प्रभु ने हाथ पकड़कर श्रेष्ठ मुनियों को बैठाया और परम मनोहर वचन कहे-।।3।।

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हें दरस जाहिं अघ खीसा।।
बड़े भाग पाइब सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा।।4।।

टिप्पणी

भावार्थ – हे मुनीश्वरो! सुनिए, आज मैं धन्य हूँ। आपके दर्शनों ही से (सारे) पाप नष्ट हो जाते हैं। बड़े ही भाग्य से सत्संग की प्राप्ति होती है, जिससे बिना ही परिश्रम जन्म-मृत्यु का चक्र नष्ट हो जाता है।।4।।

दोहा – संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ।।33।।

भावार्थ – संत का संग मोक्ष (भव बंधन से छूटने) का और कामी का संग जन्म-समृत्यु के बंधन में पड़ने का मार्ग है। संत, कवि और पंडित तथा वेद, पुराण (आदि) सभी सदग्रंथ ऐसा कहते हैं।।33।।

चौपाई – सुनि प्रभु बचन हरषि मुनि चारी। पुलकित तन अस्तुति अनुसारी।।
जय भगवंत अनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय।।1।।

भावार्थ – प्रभु के वचन सुनकर चारों मुनि हर्षित होकर, पुलकित शरीर से स्तुति करने लगे- हे भगवन्! आपकी जय हो। आप अंतरहित, विकाररहित, पापरहित, अनेक (सब रूपों में प्रकट), एक (अद्वितीय) और करुणामय हैं।।1।।

जय निर्गुन जय जय गुन सागर। सुख मंदिर सुंदर अति नागर।।
जय इंदिरा रमन जय भूधर। अनुपम अज अनादि सोभाकर।।2।।

भावार्थ – हे निर्गुण! आपकी जय हो। हे गुण के समुद्र! आपकी जय हो, जय हो। आप सुख के धाम, (अत्यंत) सुंदर और अति चतुर हैं। हे लक्ष्मीपति! आपकी जय हो। हे पृथ्वी के धारण करने वाले! आपकी जय हो। आप उपमारहित, अजन्मे, अनादि और शोभा की खान हैं।।2।।

ग्यान निधान अमान मानप्रद। पावन सुजस पुरान बेद बद।।
तग्य कृतग्य अग्यता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन।।3।।

भावार्थ – आप ज्ञान के भंडार, (स्वयं) मानरहित और (दूसरों को) मान देने वाले हैं। वेद और पुराण आपका पावन सुंदर सश गाते हैं। आप तत्त्व के जानने वाले, की हुई सेवा को मानने वाले अज्ञान का नाश करने वाले हैं। हे निरंजन (मायारहित)! आपके अनेकों (अनंत) नाम हैं और कोई नाम नहीं है (अर्थात् आप सब नामों के परे हैं)।।3।।

सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय। बससि सदा हम कहुँ परिपालय।
द्वंद बिपति भव फंद बिभंजय। हृदि बसि राम काम मद गंजय।।4।।

भावार्थ – आप सर्वरूप हैं, सब में व्याप्त हैं और सबके हृदय रूपी घर में सदा निवास करते हैं, (अत:) आप हमारा परिपालन कीजिए। (राग-द्वेष, अनुकूलता-प्रतिकूलता, जन्म-मृत्यु आदि) द्वंद्व, विपत्ति और जन्म-मृत्यु के जाल को काट दीजिए। हे रामजी! आप हमारे हृदय में बसकर काम और मद का नाश कर दीजिए।।4।।

दोहा – परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम।।34।।

भावार्थ – आप परमानंद स्वरूप, कृपा के धाम और मन की कामनाओं को परिपूर्ण करने वाले हैं। हे श्री रामजी! हमको अपनी अविचल प्रेमाभक्ति दीजिए।।34।।

चौपाई – देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिबिधि ताप भव दाप नसावनि।।
प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु। होड़ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरू।।1।।

भावार्थ – हे रघुनाथजी! आप हमें अपनी अत्यंत पवित्र करने वाली और तीनों प्रकार के तापों और जन्म-मरण के क्लेशों का नाश करने वाली भक्ति दीजिए। हे शरणागतों की कामना पूर्ण करने के लिए कामधेनु और कल्पवृक्ष रूप प्रभो! प्रसन्न होकर हमें यही वर दीजिए।।1।।

टिप्पणी

भव बारिधि कुंभज रघुनायक। सेवत सुलभ सकल सुख दायक।।
मन संभव दारू दुख दारय। दीनबंधु समता बिस्तारय।।2।।

भावार्थ – हे रघुनाथजी! आप जन्म-मृत्यु रूप समुद्र को सोखने के लिए अगस्त्य मुनि के समान है। आप सेवा करने में सुलभ हैं तथा सब सुखों के देने वाले हैं। हे दीनबंधो! मन से उत्पन्न दारुण दुखों का नाश कीजिए और (हम में) समदृष्टि का विस्तार कीजिए।।2।।

आस त्रास इरिषाद निवारक। बिनय बिबेक बिरति बिस्तारक।।
जैलि मनि मंडन धरनी। देहि भगति संसृति सरि तरनी।।83।।

भावार्थ – आप (विषयों की) आशा, भय और इर्ष्या आदि के निवारण करने वाले हैं तथा विनय, विवेक और वैराग्य के विस्तार करने वाले हैं। हे राजाओं के शिरोमणि एवं पृथ्वी के भूषण श्री रामजी! संसृति (जन्म-मृत्यु के प्रवाह) रूपी नदी के लिए नौका रूप अपनी भक्ति प्रदान कीजिए।।3।।

मुनि मन मानस हंस निरंतर। चरन कमल बंदित अज संकर।।
रघुकुल केतु सेतु श्रुति रच्छक। काल करम सुभाउ गुन भच्छक।।4।।

भावार्थ – हे मुनियों के मन रूपी मानसरोवर में निरंतर निवास करने वाले हंस! आपके चरणकमल ब्रह्माजी और शिवजी के द्वारा वंदित हैं। आप रघुकुल के केतु, वेदमर्यादा के रक्षक और काल, कर्म, स्वभाव तथा गुण (रूप बंधनों) के भक्षक (नाशक) हैं।।4।।

तारन तरन हरन सब दूषन। तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन।।5।।

भावार्थ – आप तरन-तारन (स्वयं तरे हुए और दूसरों को तारने बाले) तथा सब दोषों को हरने वाले हैं। तीनों लोकों के विभूषण आप ही तुलसीदास के स्वामी हैं।5।।

दोहा – बार-बार अस्तुति करे प्रेम सहित सिरू नाइ।
ब्रह्म भवन सनकादि गे अति अभीष्ट बर पाइ।।35।।

भावार्थ – प्रेम सहित बार-बार स्तुति करके और सिर नवाकर तथा अपना अत्यंत मनचाहा वर पाकर सनकादि मुनि ब्रह्मलोक को गए।।35।।

चौपाई – सनकादिक बिधि लोक सिधाए। भ्रातन्ह राम चरन सिर नाए।।
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं। चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं।।।।

भावार्थ – सनकादि मुनि ब्रह्मलोक को चले गए। तब भाइयों ने श्री रामजी के चरणों में सिर नवाया। सब भाई प्रभु से पूछते सकुचाते हैं। (इसलिए) सब हनुमानजी की ओर देख रहे हैं।।1।।

सुनी चहहिं प्रभु सुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी।।
अंतरजामी प्रभु सभ जाना। बूझत कहहु काह हनुमाना।।2।।

भावार्थ – वे प्रभु के श्रीमुख की वाणी सुनना चाहते हैं, जिसे सुनकर सारे भ्रमों का नाश हो जाता है। अंतरयामी प्रभु सब जान गए और पूछने लगे- कहो हनुमान! क्या बात है?।।2।।

जोरि पानि कह तब हनुमंता। सुनहु दीनदयाल भगवंता।।
नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं। प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं।।।।3।।

भावार्थ – तब हनुमानजी हाथ जोड़कर बोले – हे दीनदयाल भगवान! सुनिए। हे नाथ! भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं, पर प्रश्न करते मन में सकुचा रहे हैं।।3।।

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ।।
सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना। सुनहु नाथ प्रनतारति हरना।।4।।

टिप्पणी

दोहा – नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहुँ सोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारिहि कृपानंद संदोह।।36।।

भावार्थ – हे नाथ! न तो मुझे कुछ संदेह है और न स्वप्न में भी शोक और माह है। हे कृपा और आनंद के समूह! यह केवल आपकी ही कृपा का फल है।।36।।

चौपाई – करउँ कृपानिधि एक ढिठाई। मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई।।
संतन्ह कै महिमा रघुराई। बहुत बिधि बेद पुरानन्ह गाई।।।।

भावार्थ – तथापि हे कृपानिधान! मैं आप से एक धृष्टता करता हूँ। मैं सेवक हूँ. और आप सेवक को सुख देने वाले हैं (इससे मेरी दृष्टता को क्षमा कीजिए और मेरे प्रश्न का उत्तर देकर सुख दीजिए)। हे रघुनाथजी वेद-पुराणों ने संतों की महिमा बहुत प्रकार से गाई है।।1।।

श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि बड़ाई। तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई।।
सुना चहउँ प्रभु तिन्ह कर लच्छन। कृपासिंधु गुन ग्यान बिचच्छन।।2।।

भावार्थ – आपने भी अपने श्रीमुख से उनकी बड़ाई की है और उन पर प्रभु (आप) का प्रेम भी बहुत है। हे प्रभो! मैं उनके लक्षण सुनना चाहता हू। आप कृपा के समुद्र हैं और गुण तथा ज्ञान में अत्यंत निपुण हैं।।2।।

संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई।।
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित श्रुति पुरान बिख्याता।।3।।

भावार्थ – हे शरणागत का पालन करने वाले! संत और असंत के भेद अलग-अलग करके मुझको समझाकर कहिए। (श्री रामजी ने कहा-) हे भाई! संतों के लक्षण (गुण) असंख्य हैं, जो वेद और पुराणों में प्रसिद्ध हैं।।3।।

संत असंतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी।।
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई।।4।।

भावार्थ – संत और असंतों की करनी ऐसी है जैसे कुल्हाड़ी और चंदन का आचरण होता हैं। हे भाई! सुनो, कुल्हाड़ी चंदन को काटती है (क्योंकि उसका स्वभाव या काम ही वृक्षों को काटना है), किंतु चंदन अपने स्वभाववश अपना गुण देकर उसे (काटने वाली कुल्हाड़ी को) सुगंध से सुवासित कर देता है।।4।।

दोहा – ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड।।37।।

भावार्थ – इसी गुण के कारण चंदन देवताओं के सिरों पर चढ़ता है और जगत का प्रिय हो रहा है और कुल्हाड़ी के मुख को यह दंड मिलता है कि उसको आग में जलाकर फिर घन से पीटते हैं।।37।।

चौपाई – विषय अलंपट सील गुनाकार। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर।।
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी।।1।।

भावार्थ – संत विषयों में लंपट (लिप्त) नहीं होते, शील और सदगुणों की खान होते हैं, उन्हें पराया दुःख देखकर दुःख और सुख देखकर सुख होता है। वे (सबमें, सर्वत्र, सब समय) समता रखते हैं, उनके मन कोई उनका शत्रु नहीं है। वे मद से रहित और वैराग्यवान होते हैं। तथा लोभ, क्रोध, हर्ष और भय का त्याग किए हुए रहते हैं।।1।।

कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया।।
सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी।।2।।

टिप्पणी

भावार्थ – उनका चित्त बड़ा कोमल होता है। वे दीनों पर दया करते हैं तथा मन, वचन और कर्म से मेरी निष्कपट (विशुद्ध) भक्ति करते हैं। सबक। सम्मान देते हैं, पर स्वयं मानरहित होते हैं। हे भरत! वे प्राणी (संतजन) मेरे प्राणों के समान हैं।।2।।

बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन।।
सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री।।3।।

भावार्थ – उनको कोई कामना नहीं होती। वे मेरे नाम के परायण होते हैं। शांति, वैराग्य, विनय और प्रसन्नता के घर होते हैं। उनमें शीलता, सरलता, सबके प्रति मित्र भाव और ब्राह्मण के चरणों में प्रीति होती है, जो धर्मों को उत्पन्न करने वाली है।।3।।

ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर।।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं।।4।।

भावार्थ – हे तात! ये सब लक्षण जिसके हृदय में बसते हों, उसको सदा सच्चा संत जानना। जो शम (मन के निग्रह), दम (इंद्रियों के निग्रह), नियम और नीति से कभी विचलित नहीं होते और मुख से कभी कठोर वचन नहीं बोलते।।4।।

दोहा – निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज।।38।।

भावार्थ – जिन्हें निंदा और स्तुति (बड़ाई) दोनों समान हैं और मेरे चरणकमलों में जिनकी ममता है, वे गुणों के धाम और सुख की राशि संतजन मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं।।38।।

चौपाई – सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ।।
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई।।1।।

भावार्थ – अब असंतों दुष्टो का स्वभाव सुनो, कभी भूलकर भी उनकी संगति नहीं करनी चाहिए। उनका संग सदा दु:ख देने वाला होता है। जैसे हरहाई (बुरी जाति की) गाय कपिला (सीधी और दुधार) गाय को अपने संग से नष्ट कर डालती है।।।।

खलन्ह हृदय अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपत्ति देखी।।
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई।।2।।

भावार्थ – दुष्टों के हृदय में बहुत अधिक संताप रहता है। वे पराई संपत्ति (सुख) देखकर सदा जलते रहते हैं। वे जहाँ कही दूसरे की निंदा सुन पाते हैं, वहाँ ऐसे हर्षित होते हैं मानो रास्ते में पड़ी निधि (खजाना) पा ली हो।।2।।

काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन।।
बयरू अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों।।3।।

भावार्थ – वे काम, क्रोध, मद और लोभ के परायण तथा निर्दयी, कपटी, कुटिल और पापों के घर होते हैं। वे बिना ही कारण सब किसी से बैर किया करते हैं। जो भलाई करता है उसके साथ बुराई भी करते हैं।।3।।

झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना।
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा।।4।।

भावार्थ – उनका झूठा ही लेना और झूठा ही देना होता है। झूठा ही भोजन होता है और झूठा ही चबेना होता है। (अर्थात वे लेने-देने के व्यवहार में झूठ का आश्रय लेकर दूसरों का हक मार लेते हैं अथवा झूठी डींग हाँका करते हैं कि हमने लाखों रुपए ले लिए, करोड़ों का दान कर दिया। इसी प्रकार

टिप्पणी

खाते हैं चने की रोटी और कहते हैं कि आज खूब माल खाकर आए। अथवा चबेना चबाकर रह जाते हैं और कहते हैं हमें बढ़िया भोजन से वैराग्य है, इत्यादि। मतलब यह कि वे सभी बातों में झूठ ही बोला करते हैं।) जैसे मोर साँपों को भी खा जाता है। वैसे ही वे भी ऊपर से मीठे वचन बोलते हैं। (परंतु हृदय के बड़े ही निर्दयी होते हैं)।।4।।

दोहा – पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद।।39।।

भावार्थ – वे दूसरों से द्रोह करते हैं और पराई स्त्री, पराए धन तथा पराई निंदा में आसक्त रहते हैं। वे पामर और पापमय मनुष्य नर शरीर धारण किए हुए राक्षस ही हैं।।39।।

चौपाई – लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न।।
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई।।1।।

भावार्थ – लोभ ही उनका ओढ़ना और लोभ ही बिछौना होता है (अर्थात लोभ ही से वे सदा घिरे हुए रहते हैं)। वे पशुओं के समान आहार और मैथुन के ही परायण होते हैं, उन्हें यमपुर का भय नहीं लगता। यदि किसी की बढ़ाई सुन पाते हैं, तो वे ऐसी (दु:खभरी) साँस लेते हैं मानों उन्हें जूडी आ गई हो।।1।।

जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भए मानहुँ जग नृपती।।
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी।।2।।

भावार्थ – और जब किसी की विपत्ति देखते हैं, तब ऐसे सुखी होते हैं मानो जगतभर के राजा हो गए हों। वे स्वार्थपरायण, परिवार वालों के विरोधी, काम और लोभ के कारण लंपट और अत्यंत क्रोधी होते हैं।।2।।

मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं।।
करहिं मोह बस द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा।।3।।

भावार्थ – वे माता, पिता, गुरु और ब्राह्मण किसी को नहीं मानते। आप तो नष्ट हुए ही रहते हैं, (साथ ही अपने संग से) दूसरों को भी नष्ट करते हैं। मोहवश दूसरों से द्रोह करते हैं। उन्हें न संतों का संग अच्छा लगता है, न भगवान् की कथा ही सुहाती है।।3।।

अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी।।
बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा।।4।।

भावार्थ – वे अवगुणों के समुद्र, मन्दबुद्धि, कामी (रागयुक्त) , वेदों के निंदक और जबर्दस्ती पराए धन के स्वामी (लूटने वाले) होते हैं। वे दूसरों से द्रोह तो करते ही हैं, परंतु ब्राह्मण द्रोह विशेषता से करते हैं। उनके हृदय में दम्भ और कपट भरा रहता है, परंतु वे ऊपर से सुंदर वेष धारण किए रहते हैं।।4।।

दोहा – ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेताँ नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं।।40।।

भावार्थ – ऐसे नीच और दुष्ट मनुष्य सत्ययुग और त्रेता में नहीं होते। द्वापर में थोड़े से होंगे और कलियुग में तो इनके झुंड के झुंड होंगे।।40।।।

चौपाई – पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।
निर्नय सकल पुरान बेद करपुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर।।1।।

भावार्थ – हे भाई! दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दु:ख पहुँचाने के समान कोई नीचता (पाप) नहीं है। हे तात! समस्त पुराणों और बेदों का यह निर्णय (निश्चित सिद्धांत) मैंने तुमसे कहा है, इस बात को पण्डित लोग जानते हैं।।।।

टिप्पणी

नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।
लकरहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वार्थ रत परलोक नसाना।।2।।

भावार्थ – मनुष्य का शरीर धारण करके जो लोग दूसरों को दु:ख पहुँचाते हैं, उनको जन्म-मृत्यु के महान संकट सहने पड़ते हैं। मनुष्य मोहवश स्वार्थपरायण होकर अनेकों पाप करते हैं, इसी से उनका परलोक नष्ट हुआ रहता है।।2।।

कालरूप तिन्ह कहूँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फलदाता।।
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि संसृत दुख जाने।।3।।

भावार्थ – हे भाई! मैं उनके लिए कालरूप (भयंकर) हूँ और उनके अच्छे और बुरे कर्मो का (यथायोग्य) फल देने वाला हूँ। ऐसा विचार कर जो लोग परम चतुर हैं वे संसार (के प्रवाह) को दु:ख रूप जानकर मुझे ही भजते हैं।।3।।

त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक।।
संत असंतन्ह के गुण भाषे। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे।।4।।

भावार्थ – इसी से वे शुभ और अशुभ फल देने वाले कर्मों को त्यागकर देवता, मनुष्य और मुनियों के नायक मुझको भजते हैं। (इस प्रकार) मैंने संतों और असंतों के गुण कहे। जिन लोगों ने इन गुणों को समझ रखा है, वे जन्म-मरण के चक्कर में नहीं पड़ते।।4।।

5.9 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **रामचरितमानस के काण्डों के नाम लिखिए।।**
2. **उत्तरकाण्ड में वेदों ने राम की स्तुति करते हुए उन्हें संसार रूपी वृक्ष बताया है। इस संसार रूपी वृक्ष की क्या विशेषताएँ हैं?**
3. **संत और असंत के तुलसीदास ने क्या लक्षण बताए हैं?**
4. **तुलसीदास ने उत्तरकाण्ड में रामराज्य वर्णन की क्या विशेषताएँ बताई हैं?**
5. **तुलसी की भक्ति पद्धति पर प्रकाश डालिए।**

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. **रामचरितमानस का संक्षिप्त परिचय दीजिए।**
2. **तुलसीदास जी का जीवन परिचय सक्षेंप में लिखें।**
3. **तुलसीदास की रचनाओं का उल्लेख करें।**
4. **नीचे दी गई चौपाई को पूरा कर इसका भावार्थ लिखें -**
   "सुमन बाटिका सबहिं लगाई । बिबित ------।।
   ----------। फूलहिं सदा बंसद कि नाई।।"
5. **दिए गए छंद का भावार्थ - लिखें।**
   नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।
   लकरहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वार्थ रत परलोक नसाना।

♦♦♦♦♦

References and Suggested Reading

lnHk iLrd

1- dchjok.kh µfrokjh ikjlukFk] vuhrk idk'ku] ub lMd] fnYyhA

2- dchj ¼thou vkj n'ku½ µpMd jke fuokl] ukxjh ipkfj.kh lHkk] okjk.klhA

3- dchj&,d vu'khyu µoek jkededkj] lkfgR; Hkou] bykgkckdnA

4 dchjok.kh&Kkuker µvkpk; jkekut ljLorh] eukt ifCyd'ku] fnYyhA

5 ljlkxj µljnkl ÑrA

6 lj dh dk0; dyk µxkre euekgu] Hkkjrh; efUnjA

7 ljnkl d in µxIrk lt;] jktk ikdV cDl] fnYyhA

-8 jkepfjrekul&lkfgR;d eY;kdu µik.M; l/kdj] jk/kÑ".ku idk'ku] fnYyhA

9 xkLokeh rylhnkl µehuk efuf'k[kk] iHkkr idk'kuA

10 rylh nkl µf'kolju jke] ,l-jke] onke cDlA

11 fgUnh d ikphu ifrfuf/k dfo & Mk- }kfjdk ilkn

Internet Links

https://www.youtube.com/watch?v=R8xLdsmzZCY

https://www.youtube.com/watch?v=C_rh74zruns

https://www.youtube.com/watch?v=uhIEUC3ruM0

https://www.youtube.com/watch?v=TThYkNg_INk

https://www.youtube.com/watch?v=YeWeXtyWDQU

Related Research Articles

Bhakti kavy ki Bhoomika- Dr.Premshankar

- Hindi ke Pracheen Pratinidhi Kavi – Dwarika Prasad Saxena
- Jaisi Granthavali (Introduction) – Ramachandra Shukla
- Jaisi ka Padmavat – Govind Trigunayat
- Kabir – Hazari Prasad Dwivedi

• Sagun Bhakti Kavya ke Darshanik Sroth – R.C.Dev

• Sant Kabir – Dr.Ramkumar Varma

• Surdas – Ramachandra Shukla

• Sur Sahitya : Navmoolyankan – Chandrabhan Ravat

• Sufi Kavya Vimarsha – Dr.Shyam Manohar Pandey

• Uttar Bharath ki Sant Parampara – Parashuram Chaturvedi

• Tulasi Sahitya : Badalta Pratimaan - Chandrabhan Ravat